जंजीर खींचें गाड़ी रोकें

१९७९

एस० चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा०) लि०

रामनगर, नई दिल्ली-110055

एस० चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा०) लि०
मुख्य कार्यालय रामनगर, नई दिल्ली-110055
शोरूम : 4/16-B, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002
शाखाएँ

अमीनाबाद पार्क, लखनऊ-226001
285/J, विपिन बिहारी गांगुली स्ट्रीट, कलकत्ता-700012
सुलतान बाजार, हैदराबाद-500195
103/5 वालचन्द हीराचन्द मार्ग बम्बई-400001
खजांची रोड पटना 800004
माई हीरां गेट जालन्धर 144008
152, अन्ना सलाए, मद्रास 600002
ब्लैकी हाउस, 3, गांधी सागर ईस्ट, नागपुर 440002
पान बाजार, गोहाटी-781001
के० पी० सी० सी० बिल्डिंग, रेस कोर्स रोड, बंगलोर-560009
613-7, एम० जी० रोड, एर्नाकुलम कोचीन-682035

द्वितीय संस्करण 1988

एस० चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा०) लि०, रामनगर, नई दिल्ली-110055 द्वारा प्रकाशित तथा राजेन्द्र रवी द्र प्रिंटर्स (प्रा०) लि०, रामनगर, नई दिल्ली-110055 द्वारा मुद्रित ।

तुभ्यमेव समर्पये

कई लोग पूछते रहते हैं कि एक उद्योगपति, व्यवस्थापक एवं अमीर होने के बावजूद मुझमें पढने-लिखने की प्रवृत्ति आई कहा से ? संवेदनशीलता गरीबी-जन्य अभाव में अथवा वैधव्य के सूनेपन में ही मिले, इस धारणा का मैं समर्थक नहीं हू। जिस व्यक्ति को अपने जीवन में आगे बढना है, वह केवल अपनी समृद्धि का पोषक व अपनी चचल मनोदशा के इशारे पर शोषक बन कर कुछ भी हासिल नहीं कर सकता।

मानव व अन्य प्राणी-समूहों में आहार, निद्रा भय व मैथुन समान रूप से दावेदार हैं। मानव की विशेषता यह है कि वह जन्म के समय नितान्त निरीह व परवश है और चाहे तो इसी एक जीवन में चन्द्रमा को छू ले और जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-यश-अपयश के थपेडों से ऊपर उठ जाय। पशु-पक्षी पहले दिन से ही अपने जीवन योग्य संस्कारों व सम्बल को लिए ही आगे बढता है, वह केवल शारीरिक उत्कर्ष कर सकता है, दैवीय व आत्मीय नहीं। यह अन्तर केवल मानव को 'विवेक' नाम की थाती के रूप में मिला है। पर हम में से कितने लोग ससार के सुख साधन व क्षणिक भोगों से ऊपर उठ पाते है ?

'मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये"—प्रभु स्वय स्वीकार करते है कि हजारो लाखो में कोई-सा बिरला आत्मसिद्धि की ओर आमुख होता है। हम मानव देह लेकर समझने लगते है कि जीवन की कला व विज्ञान क्या सीखना है, वह तो हम मिली हो हुई है ! सीखना तो सासारिक कलाबाजियां को है, जिनमें सिद्धि व कुशलता प्राप्त कर नाम, यश, वैभव व सुख भोग करें।

"आढ्योऽभिजनवानस्मि, कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया"—मैं रईस हू, उच्च-कुल में जन्म लिया है, मुझ समान (दूसरा) कौन है ? इस प्रकार का अहभाव कमी-बेशी सब में लिपटा रहता है, चाहे कोई प्रधानमन्त्री हो अथवा गाव का पटवारी। विनाश के कगार के लिए यह सबसे सशक्त शस्त्र है। तुर्रा यह कि शीशे में अपना असली स्वरूप हमे दीखता नहीं।

इसीलिए हम कभी जीवन की गाडी की जजीर खीच सकते नहीं, मनन व चिन्तन के लिए कि मैं कहा जा रहा हू ? कैसा मेरा जीवन है ? यह दुख-सुख क्या है ? क्या मैं दुनिया को वास्तव में बदल सकता हू ?

दुनिया को त्रेता मे श्रीराम व द्वापर मे श्रीकृष्ण नही बदल पाए, हम लोग किस खेत की मूली है ? हा, अपने आप को केवल बदला जा सकता है ताकि हम साक्षी भाव के नजरिए से दुनिया को शेक्सपियर के नाटक के मच की तरह देखें और उस पर होते कथानक का आनन्द ले सकें।

इसी धारणा के इर्द-गिर्द रोजमर्रे के जीवन के कुछ कथानक पिछले कुछ वर्षों मे पत्र पत्रिकाओ मे प्रकाशित हुए थे। कई मित्रो के आग्रह के फलस्वरूप ये पुस्तक के रूप म प्रस्तुत हैं। "सरिता", 'धर्मयुग", "नवभारत टाइम्स", 'वामा", 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान" आदि का लेखक आभारी है जिन्होंने इनके पुनर्प्रकाशन की सहमति दी है। मेर दीर्घकालीन मित्र स्व० रामावतार चेतन व श्री कन्हैयालाल नन्दन का विशेष आभारी हू जिन्होने इस प्रसव वेदना मे बराबर सहारा दिया।

किसी एक भी व्यक्ति के जीवन मे मायूसी, अन्धकार व बेबसी हट सके, तो यह प्रयास सार्थक होगा।

लेखक

ए-12 कपूर महल,
नेताजी सुभाष रोड,
बम्बई-400020

॥ ओ३म् ॥

"उस रगीन आतिशबाजी का क्या करूं जो क्षणिक अठखेलिया दिखाकर लुप्त हो जाती है ? मेरा माटी का दिया भला है जो कि अधेरे मे प्रकाश व दिशा-बोध देता है।"

मेरे जीवन मे यत्किंचित् प्रकाश देने वाले गुरुदेव स्वामी पार्थसारथी जी को यह कृति समर्पित है ।

— लेखक

विषय-सूची

1

मारवाड़ी समाज के नए दौर

पिछली सदियो मे मेरे मित्र प्रभुदयाल के लम्बे आग्रह के कारण उनके एक मात्र पुत्र आलोक के विवाह मे कलकत्ता जाना पडा। वैसे शादी विवाह, मेले-ठेलो मे जाने मे मेरी बिल्कुल रुचि नही है, पर कभी-कभी परिस्थितियो वश शामिल होना पडता है। मित्र से बहुत बरसो का साथ है—स्कूल मे हम लोग एक क्लास के फेर से साथ पढे, कालेज अलग-अलग गए, फिर व्यापार के क्षेत्र मे वापस सम्पर्क बढ गया। प्रभु को शुरू से ही दिखावे, तडक-भडक आदि का शौक था, इसीलिए घर के बगल मे ही सिडनम कालेज के होते हुए भी वह अपनी ब्यूक गाडी मे आता, हाजिरी देकर यथाशीघ्र दोस्तो को लेकर जुहू चाट या खपोली बटाटा बडा खाने चला जाता। उसके पिता बम्बई मे चर्चगेट स्थित बिल्डिंग के मालिक थे, आए दिन मिनिस्टरो, जजो, गवर्नरो, विदेशियो के मान-सम्मान हेतु घर मे शानदार पार्टिया होती, कभी-कभी मैं भी बुलाया जाता। 1951-52 की बम्बई की प्रसिद्ध कपडा मिलो की लम्बी हडताल मे पुलिस द्वारा उनके कर्मचारियो को बुरी तरह लाठी चार्ज मे मार खानी पडी। वे मजदूरो को पाच रुपए का बढावा भी देने को तैयार न थे, भले ही घर का मासिक खर्च उन दिनो मे भी बीस-पचीस हजार का हो। प्रभु ऐसे ही वातावरण मे बडा हुआ, अत दूसरो के प्रति उसके हृदय मे संवेदना कहा से होती ?

ऊपर से तुर्रा यह कि मिल की वार्षिक बैलेन्स शीट मे कभी भी शेयर होल्डरो को मुनाफा देखने को नही मिला। बाकी सभी मिलो मे व्यापार की परिस्थिति के मुताबिक उन दिनो मासिक लाभ पाच से आठ लाख का होना, पर प्रभु के पिता हमेशा वार्षिक मीटिंगो मे कभी रूई के दाम, कभी बढती कीमतें तो कभी मजदूरो का हवाला देकर तरह-तरह के बहाने बनाते। सारे कपडा जगत मे मोटे तौर पर पता था कि वे साल मे पचास-साठ लाख रुपया मिल से निकालते थे। मशीनो की देखरेख या नवीनीकरण के लिए उनके अध्याय मे स्थान नहीं था।

खैर, प्रभु के लड़के की मगनी कलकत्ते के बड़े चाय-बागान के मालिक की लड़की से हुई। मगाई म बीस लाख का माल-मत्ता आया था, जिसका दिखावा बड़े चाव से उसके परिवार न अपने नजदीकी दो-तीन सौ परिवारों को बुलाकर किया। वर के लिए "पाथे फिलिप' की सोने-हीरे की रिस्ट घडी, डियोर' का सोने का पेन सेट, हीरा के कुर्ते व बटन दस कैरेट की अगूठी लन्दन मे मगाए सूट के 6-सेट, फ्रेंच परफ्यूम---न जाने क्या-क्या लाया गया था। सो मगनी मे यह ठाठ तो फिर विवाह अपने ढग का अनूठा ही होगा, इसी भावना से बारात के प्राय सभी सदस्य (करीब 105) बड़े चाव से शरीक हो रहे थे। इस बारात मे जिसका नम्बर लग गया, मानो सामाजिक प्रतिष्ठा का पासपोर्ट मिल गया हो।

कलकत्ते तक की हवाई-यात्रा सवा दो घटो की बड़ी सुखद व आरामदेह रही। सभी बारातियों को दस-दस सीटो की एयर-कण्डीशड बसो मे एयरपोर्ट ले जाया गया। बजाज भवन की आर्ट गैलरी मे नरीमान पाइण्ट पर सब एकत्रित हुए, वहा केशर, बादाम-पिस्तो इलायची युक्त दूध, गर्मियो मे फ्रीजर म रखे हापुस आम, नमकीन आदि से यात्रा शुरू हुई। बारात की चेकिंग व सिक्यूरिटी इतने कड़े कायदे-कानूनो के बावजूद वायु सेवा मत्री से अच्छी जान पहचान के कारण साधारण व एक अलग काउण्टर पर हुई। प्लेन मे नाश्ता प्रभुदयाल के यहा कानपुर व बनारस से बुलाए हलवाइयो ने बनाकर सुन्दर एक्रिलिक के डब्बो मे सजा-सजाया मिला। हर डब्बे पर बाराती का नाम व विवाह के प्रसग का उल्लेख था। कलकत्ते मे पार्क होटल समूचा रिजर्व कराया गया था, अत सबको अपने-अपने रूम नम्बर व साथी का नाम दे दिया गया। दमदम हवाई अड्डे पर फिर से मथुरा से गुथी मालाए, बनारस के घोटने वालो द्वारा ठण्डाई, विड़ियो, सिगापुर से आर्किड के फूल आदि से सत्कार हुआ। एयरपोर्ट पर सभी देशी-विदेशी अन्य यात्री/ पर्यटक इस मजमे को बड़ी उत्सुकता मिश्रित भावनाओ से देख रहे थे।

होटल पहुचते ही फिर से खाने-पीने व मनुहार के दौर शुरू हुए। किसी कमरे मे विदेशी शराब/शैम्पेन का दौर चल रहा था, तो किसी म दस हजार रुपयो की तीन पत्ती या रम्मी। सभी बाथरूमो मे इम्पोर्टेड साबुन, शैम्पू, तेल, यू डी कालोन आदि थे। दाढी बनाने हेतु 10-12 नाइयो को बुलाया गया था, मोची अलग थे, जूते पालिश व धोबी इस्त्री के लिए। लिहाजा न भूतो न भविष्यति' किस्म की शादी हुई। न इन्कम टैक्स वालो का भय, न सामाजिक आक्रोश का। सुना कि बारात आदि को लेकर ऊपर से नीचे का मिलाते हुए एक करोड़ रुपयो का इस एक विवाह मे खर्च हुआ।

उपरोक्त 'सत्य' घटना कोई नितान्त काल्पनिक नही है। साल मे 2/4 इस स्तर की शादियां अब बम्बई-कलकत्ते के मारवाड़ियो मे होने लगी हैं। महीनो

इस दखा-देखी व दिखावे की चर्चा होती है। रुग्न वाले इसमे अपनी प्रतिष्ठा समझते हैं, भाग लेने वाले खरानी भाग्यशाली।

ऐसे ही कारनामो से हमारा मारवाडी समाज आज बरसो से भारत भर मे बदनाम है। कभी उडीसा मे तो कभी बगाल मे, कभी आसाम मे तो कभी बिहार मे, दो-चार बरसो मे स्थानीय गरीब लोग वहा रहने वाले मारवाडियो के खिलाफ दगा-फसाद व लूट-खसोट करते है। एक तो स्वय स्थानीय राजस्थानी शुरू से गाव-गाव मे सूदखोरी व रकम का लेनदेन करते हैं। कर्ज लेने वाला आदमी गरीब तो होता ही है, समय पर तीन से पाच प्रति माह के ब्याज को कौन चुका सकता है ? तो उनके जेवर/बर्तन/जमीन पर कब्जा किया जाता है। वैसे भी महाराष्ट्र व दक्षिण भारत को छोड मारवाडी समाज स्थानीय जन-जीवन, भाषा, सस्कृति, रीति-रिवाज मे सहजता से शामिल नही होता। इस-लिए भारत भर मे ईर्ष्या व इस प्रकार के बेहूदे लेन-देन के कारण हम लोग बदनाम हैं।

न तो इतर समाज और न ही हमारे धनाढ्य यह समझने की कोशिश करते हैं कि और लोगो की तरह मारवाडी समाज (वणिक वर्ग) अधिकाश गरीब है। अन मुट्ठीभर लोग जिस प्रकार दिखावे का अनर्गल प्रयोग भोक्तृत्वभाव के आधार पर करते हैं, उससे गरीब मध्यम वर्ग पिस जाता है। आज तो मध्यम समाज मे एक लाख से कम विवाह होना दुश्वार है। बेचारे नौकरी या दुकानदारी वाले लोग एक-एक शादी मे एक-एक लाख रुपये लाए कहा से ? पहले विवाह का कर्ज चुक पाता नही कि दूसरा तैयार है। और नही तो मायरा (लडकी की सतान की शादी के अवसर पर दी गई भेंट) खडा है।

जब भी कोई नया मौलवी बनता है, तो शुरु-शुरू मे कुरान का जोर व जोश मे पाठ करता है। मारवाडी समाज मे, खासकर बम्बई /कलकत्ते मे कई परिवारो के पास पिछले 10/15 वर्षों मे खूब दौलत बनी है। सो नवजवान वर्ग अब टी० वी०/वीडिओ, सजावट का तस्करी माल, सगमरमर, एयर कडीशन, स्काच, पान-मसाला व 600 नम्बर का जर्दा आदि ही नही, वरन् उच्छृखलता, जुआ एव तन-मन के अनेक व्यजनो मे डूबता उतराता है। आधुनिकता के तौर पर ड्रग्स व अबाध यौनवृत्ति चल पडी है, विवाह व परिवार की कोई जवाबदारी इस आधी-तूफान में पास ही नही फटकती। पति किसी और के साथ रगरेलिया पार्क होटल मे करता है तो पत्नी किसी और के साथ। न्यू मार्केट या ए० सी० मार्केट मे कभी चले जाइए, मारवाडी सेठानिया रोज मदिर जाने की तरह सौ-सौ के नोटो की गड्डी लिए भारी बोझिल शरीर को मटका-मटका कर दुकानो की समृद्धि के यज्ञ मे आहुति देती हैं।

यह तामस चलेगा एकाध पीढी और—पर इस दरम्यान समाज का क्या होगा इसकी कल्पना से ही जी घबराता है।

2

आखिर मैं भी इंसान हूं

मानव जाति व पशु-पक्षियों में एक ही बड़ा अन्तर है। पशु-पक्षी अपने तमाम संस्कार व गुण जन्म के समय ही पा जाते हैं, बाद में तो केवल उनके बल व शरीर का विकास होता है। मनुष्य केवल बीज रूप में संस्कार व सामर्थ्य लिए आता है, यह उसके विकास का उद्गम है, वह अपने मनोबल से आसमान के चाद-तारों को छू आता है, उसकी सीमाएं जन्म पर नहीं बंधती। नींद, भूख, भय, मैथुन आदि दोनों वर्गों में समान रूप में पाए जाते हैं। फर्क यही है कि हम विवेक व बुद्धि के जरिए, भले-बुरे के बीहड़ जगलों के बीच अपने नए-नए रास्ते बना बुद्ध, महावीर, विवेकानन्द व गांधी बन सकते हैं। कुत्ता मालिक की केडिलेक में रेशमी गद्दे पर सुबह शाम सैर कर भी आए और घर में एयर-कंडीशन बिस्तर पर भी सोए, तो भी कुत्ता ही रहेगा। उसकी नस्ल में गांधी व गोडसे का फासला कभी नहीं होगा, चाहे उसे कितने ही इनाम "डाग-शो" में क्यों न मिले हों।

परिस्थितियों को अपने अनुकूल बना, ज्ञान व धैर्य का साथ लेकर आगे बढ़ने वाली प्रवृति को "एडाप्टेशन" कहते हैं और जन्मजात थाती को "हेरिडिटी"। 15-दिन के बबूल, पीपल व आम के नन्हें पौधे आगे जाकर क्या कलेवर लेंगे, उसके बारे में ज्योतिषी से पूछना नहीं पड़ता। पर होनहार बालक के "चीकने पात" देखकर भी उसके भविष्य के बारे में केवल धुंधली कल्पना ही की जा सकती है, वह खूंखार डाकू बनेगा अथवा वाल्मीकि, यह तो अन्य परिस्थितियों के अलावा अधिकांश उसी के हाथ है। हम अपनी आंख खोलकर रखें तो गंतव्य पर देर-सवेर जरूर पहुंचेंगे। इसी भावना का नाम धृति है, इसी मार्ग का नाम ज्ञान।

मानवेतर अन्य प्राणी केवल अपने जीवन स्वार्थ के लिए जी सकते हैं। अधिक से अधिक पशु-पक्षी अपने बच्चों की परवरिश उस अल्प समय तक

करेंगे, जब तक वह दुनिया म आत्मनिर्भर न हो जाय। मानव समाज के कई गुण, समूह व वर्ण है पर ये सारे के सारे भेद केवल एक आसरे को लेकर चलते है वह है स्वार्थ"। विश्व की रचना व उसके खेल वैसे तो उलझे व रहस्यमय लगते है पर उसका गति चक्र एक विशेष सनातन नियम के आधार पर चलता है। सूर्य समय पर उदय होगा, नियमित अस्त भी। हवा म नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, आक्सीजन आदि जितने हैं, उतने ही बन रहेंगे। दो कण हाइड्रोजन एव एक आक्सीजन मिला दें तो एक कण पानी की बूद बनगी ही। उसी तरह से सर्दी, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा आदि ऋतुए अपने-अपने समय पर आएगी ही, और ब्रह्माड के स्तर पर जो नियम व गुण है, वे इकाई पर भी। तभी एक दिन भर के दौरान बसत, ग्रीष्म व शीत की साइकिल चलती रहती है।

विश्व म चार तरह के वर्ग है खनिज, वनस्पति, पशु-पक्षी व मानव। इन सबके अलग-अलग गुण हैं जो स्वार्थ व सामर्थ्य से जुडे हुए है। यही चार वर्गीकरण मानव जाति के किए जा सकते है।

खनिज जाति या वर्ण का मनुष्य वह है जो नितान्त स्वार्थी और केवल अपन लिए जीता है। जिस वस्तु के भोग से उसके मन व शरीर की तृप्ति हो उसे हथिया कर तामसिक वृत्ति के कारण वह कुभकर्ण की तरह सोता है। उसके जीवन मे स्वय के परिवार के लिए भी कोई जगह नही है। मजदूर महीन भर बाद 400/ तनख्वाह लेकर घर की ओर आए रास्ते मे दारू की बोतल पर 15/ खर्च कर दे, चाहे उन रुपया से बच्चा का दूध व दवा आ सके, बाकी पैसे कर्जदारो को देकर घर मे बीवी को मार-पीट के बाद महीने भर के लिए 100/ या 150/- दे दे उसे हम क्या कहेंगे ?

वनस्पति जाति के मनुष्य अपने अलावा अपने निजी परिवार के क्षेम कल्याण तक पहुचते हैं। उनका मानस परिवार की सीमाओ से बाहर निकलता ही नही। ज्यो ही कोई परिस्थिति या मौका ऐसा आ पडे कि उनकी सुख सुविधा मे जरा भी बाधा आए, चाहे पडोसी की जरूरत हो अथवा विधवा बहन घर आना चाहे, वे कभी इसके लिए मन से तैयार नही होते। अत तमाम जिन्दगी उनकी कोशिश यही रहती है कि सारी दुनिया उनके कहने से चले, सारे जलसे उनके व उनके परिवार के लिए हो। ऐसा कभी होगा नही, सो उसी व्यग्र ऊहापोह मे डूबते-उतराते जिन्दगी काटते हैं। पहचाना हम लोगो न अपने को इस जमात मे ?

इसके बाद पशु-पक्षी जगत म चलें। ये लोग अपने परिवार की परिधि से बाहर निकल अपनी जाति, धर्म, सम्प्रदाय तक जाते हैं। जातीय सगठनो, मठ मदिरो व सामाजिक सस्थाओं मे लगाव व उनके लिए यथाशक्ति दान भी

करेंगे, बशर्ते उनका नाम सगमरमर की शिला पर खुदा रहे। पर जहा अपने सम्प्रदाय, धर्म आदि से अलग मामला हो, चाहे हिन्दुओ का मुसलमानो से या हरिजनों का सवर्णों से, फौरन तनाव आक्रोश व मन-मुटाव हो जाता है। ऐसे मामलों मे दोनो दलो के वातावरण म इतना सघर्ष रहता है कि किसी भी मामूली घटना पर फ्यूज जल जाता है। दगे-फसाद हाते है, कत्ले आम होना है बर्बादी होती है। भारत की ही नही, समूचे मध्य-पूर्वी अरब-यहूदी प्रदेशा मे यही असहिष्णुता सबसे बुनियादी समस्या है जो पशुओ के स्तर पर नाच किया करती है।

अब आइए मानवनुमा मानव म। इन लोगो का चरित्र व मनोबल ऊपर के सभी वर्गों में अधिक उदार व उदात्त है। ये अपने राष्ट्र एव कभी-कभी समूचे मानव समुदाय के प्रति सहानुभूति रखते है और उनके विकास का भरसक प्रयत्न करते हैं। पर जहा अपने मन की सीमा से पार कोई समस्या खडी हुई जैसे भारत पाकिस्तान म चीन-रूस म ईरान-इराक म अथवा इजरायल लीबिया म, फौरन बिना विचारे अस्त्र निकल जाते है, जरा-सी बात मे देश अपनी नाक-कटी व हेठी समझन लगते हैं और इस मनोदशा मे सैकडो निर्दोष जानें जाने के अलावा अरबो रुपए गरीब देशो के बर्बाद हो जाते है।

इसके अलावा ये लोग मानव-मात्र के प्रति सद्भावना भले रख सकें, पर अपने स्वाद के लिए इतर प्राणियो जैसे गाय के बछडे, मुर्गी, मछली, आदि बेबाक खाते हैं, अपनी पत्नियो के लिए कच्ची उम्र के जानवरो की खाल खिचवा कोट, जूते, पर्स आदि खरीदत हैं दौलत क लिए जगल के जगल साफ करवा दिए जाते है, इत्यादि।

पाचवी श्रेणी देव पुरुषो की है जो अत्यन्त अल्प मात्रा म करोडो-अरबो की जनसख्या में इक्के-दुक्के मिलते है। ये "सर्वभूतहिते रता हैं, इन्हें जीव व भूत का अन्तर नहीं मिला, सभी के लिए अगाध व अपार प्रेम है। ये जीवन के वास्तविक मूल्यो को जानते है एव नितान्त सात्विकता से जीते है। इनमे स्वार्थ की बू भी नही है। समय की पुकार से ये लोग कभी जीसस क्राइस्ट बनते है, तो कभी बुद्ध, विवेकानन्द बनत हैं या गाधी कबीर बनते हैं, तो कभी आदि शकराचार्य। सभी ये बिरले है।

मानव जीवन की सबसे बडी थाती यही है कि हम जहा हो, वहा से ऊपर उठने का प्रयत्न करें। पहले ही दर्शित है कि मानवेतर कोई भी प्राणी इस सामर्थ्य से परे है, चाहे गाय हो अथवा सिंह।

जीवन भर हम अपनी कमजोरिया को यह कह कर कि "आखिर मैं भी तो इसान ही ह" छिपाने व अपने मन से समझौता करते हैं। पिछली बार

ममलमानो ने शिवरात्रि पर हुडदग मचाया, आखिर हम भी इ मान है, हाथ मे चूडी नही पहनी है, इस बार मोहर्रम पर मजा चखा दिया। उसने मुझे गाली दी, मैं उस पर चढ बैठा। रोज पति के ताने सुनते सुनत आखिर मै आदमी हू, वह पत्नी आत्महत्या के लिए तैयार हो जाती है। उसने भरी सभा मे मेरी आलोचना की—मैं भी कलम का धनी हू, देखना उसकी कैसी धज्जी उडाता हू। हम सब अपने-अपने ससार मे ही नजर दौडाए तो सभी का ऐसे अनगिनत उदाहरण मिल जायेंगे।

मनुष्य एक दृढ विश्वास एव मनोबल के मच पर अपने चरित्र का विकास कर सकता है, वह है—जो कल्पना व विचार हमारे मन मे घूमत रहेगे, उसी के अनुसार हम अपने को बना पाएगे। सस्कृत मे "ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति" और अग्रेजी मे "एज यू थिंक सो यू बिकम" आदि कहावतें सदियो से प्रचलित है। मेरे एक मित्र के 65 वर्षीय चाचा है। जब भी कोई प्रसग छिडता है, वे तपाक से कहते हैं "औरो को क्या मालूम ? मेरे तो समस्याए ही समस्याए हैं। एक स निकलू तो दूसरी धर दबोचती है।" वास्तव मे है भी वही। वे जिन्दगी के हर उतार-चढाव को अपनी निराशापूर्ण ऐनक से देखते हैं। उनके जीवन म कभी कोई मुस्कान आई ही नही। उसी तरह दफ्तर या घर की समस्याओ के बोझ से आजकल लोग शराब पीने लगते है या पराई स्त्री के सुख-भोग मे लग जाते हैं। भावना यही है—आखिर हम भी तो इसान है।"

मकसद मानव जीवन का यह नही है कि अन्याय व अत्याचार को चुपचाप सहें और कुछ न करें। पर बुद्धि-विवेकपूर्ण जीवन वही है जो पहले तो ऐसी ईर्ष्या-द्वेषमय परिस्थिति आने ही न दे और आए तो उसे गभीरता व तटस्थता के चश्मे से देखे न कि अह के। बात-बात मे यदि हमारी इज्जत को ठेस लगती है, चौबीसो घटे हम इतने आक्रोश मे भरे रहते है कि जरा-सी चिनगारी पर विस्फोट हो जाता है, अपना पराया का गणित हमारा इतना सीमित है, तो ऐसी परिस्थितिया आएगी ही। तब मनुष्य मे व जानवर मे अन्तर क्या है ? जानवर अपने से कमजोर को डरा-धमकाकर उसके मुह की रोटी छीन लेता है, एक दूसरे को खा जाता है, यही तो है आज आम चरित्र व चाल-चलन। अगली बार आप अपने को इन्सान कहें तो ध्यान मे सोच लें कि किस प्रकार के इसान है और कौन से दर्जे के।

करेंगे, बशर्ते उनका नाम संगमरमर की शिला पर खुदा रहे। पर जहां अपने सम्प्रदाय, धर्म आदि से अलग मामला हो, चाहे हिन्दुओं का मुसलमानों से या हरिजनों का सवर्णों से, फौरन तनाव, आक्रोश व मन-मुटाव हो जाता है। ऐसे मामलों में दोनों दलों के वातावरण में इतना संघर्ष रहता है कि किसी भी मामूली घटना पर फ्यूज जल जाता है। दंगे-फसाद होते है, कत्ले आम होता है बर्बादी होती है। भारत की ही नहीं, समूचे मध्य-पूर्वी अरब-यहूदी प्रदेश में यही असहिष्णुता सबसे बुनियादी समस्या है, जो पशुओं के स्तर पर नाच किया करती है।

अब आइए मानवनुमा मानव में। इन लोगों का चरित्र व मनोबल ऊपर के सभी वर्गों से अधिक उदार व उदात्त है। ये अपने राष्ट्र एवं कभी-कभी समूचे मानव समुदाय के प्रति सहानुभूति रखते हैं और उनके विकास का भरसक प्रयत्न करते हैं। पर जहां अपने मन की सीमा से पार कोई समस्या खड़ी हुई जैसे भारत-पाकिस्तान में, चीन-रूस में, ईरान-इराक में अथवा इजरायल लीबिया में, फौरन बिना विचारे अस्त्र निकल आते हैं, जरा-सी बात में देश अपनी नाक-कटी व हेठी समझने लगते हैं और इस मनोदशा में सैंकड़ों निर्दोष जानें जाने के अलावा अच्छो खए गरीब देशों के बर्बाद हो जाते हैं।

इसके अलावा ये लोग मानव-मात्र के प्रति सद्‌भावना भले रख सकें, पर अपने स्वाद के लिए इतर प्राणियों जैसे गाय के बछड़े, मुर्गी, मछली, आदि बेवार खाते हैं, अपनी पत्नियों के लिए बच्चों उम्र के जानवरों की खाल खिंचवा कोट, जूते, पर्स आदि खरीदते हैं दौलत के लिए जंगल के जंगल साफ करवा दिए जाते हैं, इत्यादि।

पांचवीं श्रेणी देव पुरुषों की है, जो अत्यन्त अल्प मात्रा में करोड़ों-अरबों की जनसंख्या में इक्के-दुक्के मिलते हैं। ये "सर्वभूतहिते रता" हैं, इन्हें जीव व भूत का अन्तर नहीं मिला, सभी के लिए अगाध व अपार प्रेम है। ये जीवन के वास्तविक मूल्यों को जानते हैं एवं नितान्त सात्विकता से जीते हैं। इनमें स्वार्थ की बू भी नहीं है। समय की पुकार से ये लोग कभी जीसस क्राइस्ट बनते हैं, तो कभी बुद्ध, विवेकानन्द बनते हैं या गांधी, कबीर बनते हैं, तो कभी आदि शंकराचार्य। सभी ये विरले हैं।

मानव जीवन की सबसे बड़ी खामी यही है कि हम जहां हों, वहां से ऊपर उठने का प्रयत्न करें। पहले ही दर्शित है कि मानवेतर कोई भी प्राणी इस सामर्थ्य से परे है, चाहे गाय हो अथवा सिंह।

जीवन भर हम अपनी असमर्थताओं को सह कर कह कि "आखिर मैं भी तो इन्सान ही हूं" कहकर व अपने मन में समझौता करते हैं। पिछली बार

मुसलमानो ने शिवरात्रि पर हुडदग मचाया, आखिर हम भी इ सान है, हाथ मे चूडी नही पहनी है, इस बार मोहर्रम पर मजा चखा दिया। उसने मुझे गाली दी, मैं उस पर चढ बैठा। रोज पति के ताने सुनते सुनते आखिर मैं आदमी हू, कह पत्नी आत्महत्या के लिए तैयार हो जाती है। उसने भरी सभा मे मेरी आलोचना की—मैं भी कलम का धनी हू, देखना उसकी कैसी धज्जी उडाता हूं। हम सब अपने-अपने ससार मे ही नजर दौडाए तो सभी को ऐसे अनगिनत उदाहरण मिल जायेंगे।

मनुष्य एक दृढ विश्वास एव मनोबल के मच पर अपने चरित्र का विकास कर सकता है, वह है—जो कल्पना व विचार हमारे मन मे घूमते रहेगे, उसी के अनुसार हम अपने को बना पाएगे। सस्कृत मे "ब्रह्मवेद ब्रह्मं व भवनि" और अग्रेजी मे "एज यू थिंक सो यू बिकम" आदि कहावतें सदियो मे प्रचलित है। मेरे एक मित्र के 65 वर्षीय चाचा हैं। जब भी कोई प्रसग छिडता है, वे तपाक से कहते है "औरो को क्या मालूम ? मेरे तो समस्याए ही समस्याए हैं। एक से निकलू तो दूसरी धर दबोचती है।" वास्तव मे है भी वही। वे जिन्दगी के हर उतार-चढ़ाव को अपनी निराशापूर्ण ऐनक से देखते हैं। उनके जीवन मे कभी कोई मुस्कान आई ही नही। उसी तरह दफ्तर या घर की समस्याओं के बोझ से आजकल लोग शराब पीने लगते है या पराई स्त्री के सुख-भोग मे लग जाते हैं। भावना यही है—आखिर हम भी तो इ सान हैं।"

मकसद मानव जीवन का यह नही है कि अन्याय व अत्याचार को चुपचाप सहें और कुछ न करें। पर बुद्धि-विवेकपूर्ण जीवन वही है जो पहले तो ऐसी ईर्ष्या-द्वेषमय परिस्थिति आने ही न दे और आए तो उसे गभीरता व तटस्थता के चश्मे से देखे न कि अह के। बात-बात मे यदि हमारी इज्जत को ठेस लगती है चौबीसो घटे हम इतने आक्रोश मे भरे रहते हैं कि जरा-सी चिनगारी पर विस्फोट हो जाता है, अपना पराया का गणित हमारा इतना सीमित है, तो ऐसी परिस्थितिया आएगी ही। तब मनुष्य मे व जानवर मे अन्तर क्या है ? जानवर अपने से कमजोर को डरा-धमकाकर उसके मुह की रोटी छीन लेता है, एक दूसरे को खा जाता है, यही तो है आज आम चरित्र व चाल-चलन। अगली बार आप अपने को इन्सान कहें तो ध्यान मे सोच लें कि किस प्रकार के इ सान है और कौन से दर्जे के।

3

गाड़ी छूटने के बाद

1967-70 के दौरान, जब मैं लोकसभा का सदस्य था, देश मे ट्रैक्टरो की बहुत कमी थी। पंजाब-हरियाणा मे सफल हरित क्रान्ति को देख-सुन, राजस्थान के बड़े काश्तकार भी अब ट्रैक्टरो की धुन मे इधर से उधर चक्कर लगा रहे थे। ट्रैक्टर का सीमित उत्पादन था, अत बहुत से तथाकथित लघु उद्योगो की देखा-देखी जिस किसान को 3-4 वर्षो बाद ट्रैक्टर का अलाटमेट मिल जाता, वह सबसे पहले उसे बाजार मे बेच 25-30,000/- ब्लैक मे सीधे करने की सोचता।

हमारे प्रदेश मे बड़े किसानो मे जाटो का बोलबाला है। मैं न जाट हू न राजपूत, अत दोनो ने ही मुझे चुन लिया था, वर्ना नागौर जिले मे मुझ जैसे बनिए का क्या काम कि उसे चुनाव मे लाखो वोट मिल जाए। शादी-विवाह व रोटी-बेटी के लेन-देन मे भी खेत मे कुआ, बिजली व ट्रैक्टर होना, तो चौखले (चारो ओर) मे उस परिवार की इज्जत-आबरू होती। इतना जानते हुए नाथूराम बाबा (हमारे प्रदेश का बड़ा काश्तकार) ट्रैक्टर को बुक कराए डेढ साल होने के बावजूद उसे घर मे लाने की जल्दबाजी मे था और प्राय हर महीने मेरी ड्योढी पर मुड़ी हुई पर्ची लेकर पड़ा रहता। कई दफे समझाने पर भी वह नही मानता कि नम्बर आने पर ही मिल सकेगा। पर "वैशाख मे पोती का ब्याह माड दिया है, अभी मिले तो काम आए" के सामने मुझे हारकर घुटने टेकने पड़े। उन दिनो अन्ना साहेब शिण्दे राज्य कृषि मत्री थे, दिल्ली मे उनसे प्रार्थना प्रायरिटी का अलाटमेट नाथूबाबा लेकर ही माना—राम-राम कर जान छूटी।

अन्ना साहब ने पर्ची दे तो दी, पर कुछ दिन पूर्व हुए मेरे ही लोकसभा के प्रश्न की याद दिलाई, जब मैंने भरी सभा मे पूछा था कि यह ट्रैक्टर की प्रायरिटी क्या होती है? हमे रेल, हवाई जहाज, जान बचाऊ दवा आदि का समझ

मे आता है, क्यो न ट्रस्टरो को नम्बर वार दिया जाय ? शिण्देजी ने गोल माल उत्तर दिया पर आज मुस्कराकर कहा "अब पता चला आउट ओफ टर्न क्यो दिया जाता है ?" मैं चुप रहा, जीवन की यथार्थता जो ठहरी।

बम्बई मे दो स्कूलो एव दो-तीन कॉलेजो से मेरा प्रत्यक्ष परोक्ष सम्पर्क होने के नाते साल मे मार्च से जून तक हर साल जान आफत मे रहती है। बडे-बडे सम्भ्रान्त अफसर व अन्य नागरिक, जाने कहा-कहा से शोध कर किसी सुपरिचित की चिट्ठी या उसे साथ लेकर आते हैं ताकि घर के पोते-नाती, बेटे-बेटी को एडमिशन मिल जाए।

मेरे सेक्रेटरी को हिदायत है कि ऐसे प्रसगो मे नम्रतापूर्वक मिलने के इच्छुक लोगो को बता दे कि मैं केवल उन संस्थाओ की व्यवस्था समितियो का एक साधारण सदस्य हू, और दाखिला केवल हेडमास्टर/प्रिंसिपल ही कर सकते हैं। पर आने वाले लोग तो अत्यधिक चतुर हैं, वे केवल 'कर्टसी काल' या 'पर्सनल' विषय पर मिलना चाहते हैं, लिहाजा नही चाहते हुए भी ऐसे मित्र मण्डल आ ही जाते हैं।

'एक काम था, इसीलिए... ."

मैं मन मे सोच लेता हूँ कि बिना काम तो आज के व्यस्त व स्वार्थी जीवन मे कौन आएगा ?

"हा-हा, कहिए .. .."

बात यह है कि आपके स्कूल मे फलान बच्चे को भर्ती कराना है। उसका टैस्ट है, पर हमने सुना है कि वहा बिना सिफारिशी चिट्ठी के जगह मिलती ही नही।

परोक्ष मे मैं सोचता हूँ कि ऐसी भी क्या सस्था जिसमे गुणो की जाच किए बगैर, सिफारिश से ही काम चले। पर वैसी हकीकत तो है नही, अत प्रत्यक्ष मे .

"देखिए, हेडमास्टरजी ने अब स्कूल का कार्यभार सभाला, तब एक शर्त पर कि शिक्षा के मामले मे व्यवस्थापिका समिति कभी भी दखल न करे। यह रही उस करारनामे की प्रति। इस मामले मे हम लोग विवश हैं।"

बहुत समझाने पर भी आगन्तुक को सतोष नहीं होता।

"फिर जनवरी महीने मे टेस्ट लेने की घोषणा सभी प्रमुख दैनिक पत्रो मे प्रकाशित की गई थी। अब आप अप्रैल मे आए हैं, जबकि फार्म भर सब बच्चो के टेस्ट हो चुके हैं, स्कूल का कार्यालय गर्मियो की छुट्टी मे बद होने वाला है। अब कैसे हो ?"

"आप तो केवल चिट्ठी दे दें, बाकी हम सब कर लेंगे। जनवरी की सूचना तो पढ़ी नहीं, नहीं तो अब इधर-उधर फिरने की जरूरत नहीं पड़ती।"

खैर न मेरी चिट्ठी कटती है, न कोई खुश होता है। गाड़ी छूटने के बाद सब चाहते हैं कि उनके लिए न केवल रोकी जाय, पर अन्य किसी जायज यात्री को उतारकर उन्हें बैठाया जाय।

महाबलेश्वर का क्लब रहने, खाने-पीने व खेल-कूद की सुविधाओं के लिए वहां श्रेष्ठ स्थान है। हम लोग हर क्रिसमस में नियमित रूप से वहां जाते हैं। क्लब की मैनेजिंग कमिटी का भी सदस्य हूं। मित्र समाज को पता है, नहीं है तो भी खोज लेते हैं। हर वर्ष मई के प्रथम आठ-दस दिनों में फोन चिट्ठियां आती हैं।

'हमारे जीजी-जीजाजी कानपुर से आ रहे हैं। महाबलेश्वर जाने की इच्छा है। दो कमरे तो आप 8-10 दिनों के लिए करा ही दें। हमने सुना है कि वहां आपकी बात टाली नहीं जाती।"

अब कौन कहे कि कमरे केवल 20-25 है, वे भी सदस्य-गण मई-जून के लिए जनवरी में ही बुक करा लेते हैं और सर्दियों के लिए सितम्बर तक। पर जीजाजी ने तो अभी प्रोग्राम बनाया है।

इज्जत का सवाल है।

ऐसी इज्जत कैसे सवारी जाय ?

बजाज इंस्टिट्यूट बम्बई विश्वविद्यालय के अन्तर्गत मैनेजमेंट के कोर्स की सर्वश्रेष्ठ संस्था है। उन दिनों मैं वहां पार्ट-टाइम प्राध्यापक था। करीब 80 सीटों के लिए 10-12000 आवेदन-पत्र भारत व विदेशों से आते। इनके चुनने व दाखिले की सुनियोजित विस्तृत शृंखला बनी हुई थी जिसमें कम्प्यूटर के अलावा तरह-तरह के टेस्ट व इन्टरव्यू होते हैं। कहीं कोई दबाव या पक्षपात की गुंजाइश नहीं। फिर भी केवल 7-8 वर्षों के अध्यापन के बावजूद अब तक दर्जनों लोग फिर उसी अदा में आ जाते हैं

'हमारे लड़के का नाम लिस्ट में आया नहीं। हमने सुना है कि आपकी वहां अच्छी जान-पहचान है .. .. ।"

एक बार तो मजेदार वाक्या हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय हवाई सेवाओं में टिकट व सीट विश्व-व्यापी कम्प्यूटर के आधार पर होता है। मेरे मित्र की पत्नी का फोन आया

"हम लोग आज रात लन्दन जा रहे हैं। कुवैत एअरवेज में बड़ी मुश्किल में सीटें हुई हैं, पर स्विस एयर से जाने की इच्छा है। सुना है आप यहां स्टेशन मैनेजर को जानते हैं। उसमें हो जाय, तो मजा आए।"

मैं न केवल मैनेजर को जानता हू, पर यह भी अच्छी तरह जानता हूँ कि उसके हाथ मे कुछ नही है । हमारी तरह रेल/इण्डियन एयरलाइन्स का वी० आइ० पी० कोटा तो है नही । स्विटजरलैंड के राष्ट्रपति या मत्री को भी लाइन मे टिकट लेनी पडती है, उन्हें कैसे समझाऊ ? और वे नाराज ऊपर मे कि इतना 'छोटा-सा' काम बताया, वह भी नही किया ।

हम लोगो मे जीवन के कायदे-कानून व व्यवस्था के अनुकूल जीने की धारणा कब आएगी ?

अतिथियो के आने से बम्बई मे और कोई अडचन हो न हो, सबसे बडी दुविधा यह है कि अक्सर ये लोग बिना सूचना सामान लिए टैक्सी मे घर आ जाते हैं । उनमे से सबसे बडे महानुभाव आकर सम्पर्क करते हैं

' तिरुपति जा रहे थे, सोचा बम्बई होते हुए चलें—आप लोगो स मिलना भी हो जाएगा . . . ।"

मैं कहता हू

"अच्छा किया । कौन-कौन आए है, कहा ठहरे है ?"

' नीचे टैक्सी मे है । रुकने का तो इन्तजाम. ।"

कुछ देर की प्रसव-वेदना के बाद मैं

"हा तो सामान लेकर ऊपर आइए । चाय-पानी करिए, तब तक कही व्यवस्था करता हूँ ।"

मेहमान परिवार के चारो सदस्य आते हैं । प्रक्षालन/चाय पानी के दौरान घर के पास के होटल मे एक कमरा करा देता हू । दो चार दिन सुबह-शाम समय उनके साथ 'आनन्द' से काटता हू । पर इशारे मे दो बार पूछने पर भी उनके मन मे यह बात नही जम पाती कि बम्बई से रेल की टिकटें 10/12 दिनो पहले नही मिलती । बहरहाल एक दिन दफनर आकर कहते हैं

"हा तो सोमवार की टिकटें रेणीगुण्टा तक करा दीजिए" आज शुक्रवार है ।

"इतनी जल्दी तो सामान्य तरीके से सीटें होगी नही । हा 50/-60/- अलग से देने पर सभव है ।"

"अरे ! आप बम्बई निवासी होकर भी ब्लैक देना पडेगा ?"

"देखता हू आदमी भेजकर ।"

लिहाजा मेरा नुमाइन्दा आर० ए० सी० (रिजर्वेशन अगेन्स्ट कैन्सलेशन) के बाबू से चार टिकट के 260/— अलग से देकर टिकटें लाता है । ब्लैक का

उनसे मागने का कोई प्रश्न ही नही । मेहमान सतोष की मुद्रा मे विदा होते हैं । शालीनता मे हम सब को अलवर का न्योता दे जाते हैं

"बहुत वर्षो मे आप लोग आए नही ।" खैर......।

मेरे दिवगत चाचाजी अक्सर कहा करते थे·

' एक नन्नो सौ दु ख टाले" किसी को पहले ही प्रश्न के उत्तर मे ना का जवाब दे दो, मुसीबत आए ही नही । मेरी भी पता नही क्या कमजोरी है, मुह से 'ना' निकलता ही नही फिर चाहे जितनी परेशानी हो ।

4

आइये, मोटापा व चर्बी दूर करें

देश के सर्वमान्य विरोधी पक्ष के नेता स्व० पीलू मोदी मेरे अभिन्न मित्र थे। उनके जैसी तीक्ष्ण, विलक्षण बुद्धि और बेमैल मन मैंने अपने जीवन मे नही देखा। इन्ही गुणो व चरित्र के कारण वे अजातशत्रु थे, पाच मिनट पहले राज्य सभा-लोकसभा मे भीषण तार्किक द्वन्द्व कर सामने वाले मन्त्री को परास्त कर उसी के साथ गले मे हाथ डाल सेण्ट्रल हाल मे काफी पीने ठहाका मारने की दैवीय शक्ति उन्ही म थी। उनका स्वभाव विनोदी था कहा करते सभी मोटे लोगो को भगवान एक अतिरिक्त शक्ति देता है इसलिए वे लोग कभी मायूस व निराश नही होते। पीलू का औसत वजन 100 किलो रहा करता, मेरे अलावा कोई भी, इस पक्ष को उनके साथ उजागर कर, वजन कम कराने मे सफल नही हुआ। जिस दिन बाथरूम से 99 किलो की साख मे मुस्कराते निकलते, तो चिल्ला कर मुझे बुलाते कि देखो मैं दो अको मे समा गया हू, अब वापस तीन (99 बनाम 100) के घर म नही जाने देना।

उनके हृदय व दिल को देखकर देश के मूर्धन्य डाक्टर कहा करते कि ये दोनो 17-वर्ष की उम्र के हैं और एक दिन, बिना चेतावनी व आघात के चलते चलते एकाएक बद हो जाएगा। हुआ भी यही—तारीख 29 जनवरी, 83 को प्रातःकाल उनके बगल मे सोई हुई पत्नी को भी नही पता चला कि रात को किस समय वे सदा के लिए सो गए।

पीलू को खाने-पीने व रईसी ढ ग से जीने की आदत थी। साल मे साढे ग्यारह महीने निरकुश रहते, 15-दिन बगलोर स्थित जिन्दल प्राकृतिक चिकित्सालय मे फाकामस्ती करते। इस प्रकार गीता के अत्यश्नत और अनश्नत (खूब खाना या उपवास करना) के विरोध मे दी गई सीख की अनदेखी करते।

मेरे दिवगत पिताजी की भव्यता कुछ और थी। उनका लबा चौडा व्यक्तित्व होने के नाते एव चेहरे पर दिव्य तेज के कारण उनका वजन किसी को दीखता नही था। उनका भी वजन 80-90 किलो के दरम्यान रहता होगा, हालाकि ठीक आकडे किसी को भी पता नही। अपने भाग-दौड जीवन की व्यस्तता के कारण बगलौर मे दिसम्बर 1962 मे उनको हृदय का भारी दौरा आया, जिसके पश्चात् शेष जीवन भर उन्होने खाने पीने मे व दैनिक कार्यक्रम मे अत्यधिक सावधानी रखी और वजन भी 10-15 किलो कम रखा। इस दौरे के करीब 10-11 वर्ष के बाद तक वे सक्रिय व सजग रहे।

आजकल तो चारो तरफ "मोटापा" व "फिगर" सबके दिमाग मे अहर्निश घूमते हैं। पश्चिमी देशो मे तो इसका इलाज अब बहुत बडे धन्धे के रूप मे हो गया है। वहा लोग व्यायाम करें न करें बाकी सारा जीवन यत्र-तत्र मय हो गया है। आप वहा नरम बिस्तर से वातानुकूलित फ्लैट या मकान मे सगीतमय अलार्म के जरिये उठकर 10-मिनट मे बिजली द्वारा चलित ब्रश, शौच व फौव्वारे का स्नान समाप्त करते है। उतने मे स्वचालित केटली मे काफी तैयार, गिरते-पडते काफी पी, टोस्ट का टुकडा मुह मे डाल मोटर मे अपनी बैग सीट पर फेंक बटन दबा गैरेज का दरवाजा खोलते हैं और दफ्तर की ओर चल देते है। बडे शहरो मे करीब एक घटे की यात्रा कर पहुचते ही फिर मशीन से काफी, फाइल-टैलीफोन-टेलेक्स मे खो जाते हैं। 12-बजे भोजन का समय, फिर जल्दी से कोने वाले ड्रगस्टोर मे कॉफी-सेण्डविच या हाट डोग, वापस दफ्तर मे भाग कर······। वरिष्ठ अधिकारी इस समय डेढ-दो घटो का लच 2-3 मार्टिनी के साथ, दोपहर भर आलस (मद्य के कारण) और शाम को फिर शहरी कोलाहल से जूझते घर। कई लोग 5-6 बजे के बीच रेस्त्रा मे रात्रि का डिनर और तब घर लौटते हैं। रात को पार्टी, शराब, सिगरेट गाजा, सैक्स और वही ढर्रा दूसरे दिन फिर······। नींद की गोली से सोते है, दिन मे 1-2 गोली "पिक मी अप" की, 2-3 एसिडिटी के लिए, एक मस्तिष्क को उथल-पुथल से बचाने ····· इत्यादि।

उनके चौबीस घटो की खुराक मे कई गलतिया की जाती हैं। एक तो भागते-भागते बिना चबाए निगला जाता है, दूसरे खुराक मे सतुलन नही होता। प्रोटीन लाल मास के जरिए खाते हैं, हरी पत्तिया, सब्जिया, फल, दूध आदि नदारद। अब इन्ही विकृतियो के कारण मोटापा व कोलेस्टरोल आ दबोचता है, क्योंकि शारीरिक परिश्रम या व्यायाम तो होना नही, दिन भर चिन्ता-कलह। टेन्शन के कारण अल्सर, ब्लड प्रेशर, चिड़चिड़ापन व उनींदी के शिकार रहते हैं।

अब कालेस्टरोल (जिससे दिल का दौरा पडता है) एक हौआ हो गया है। डाक्टर 150 मि०ग्रा० तक तो सामान्य मानते है, उससे ऊपर (40 वर्ष की उम्र के बाद) 260 के ऊपर हार्ट अटेक की सभावना बहुत बढ जाती है। अमेरिका मे भोजन के 40 प्रतिशत मोटापे के तत्व खाए जाते हैं, एक अडे मे ही 290 मि० ग्राम० कालेस्टरोल होना है, बाकी मास व दूध के पदार्थो (क्रीम, चीज, मक्खन आदि) मे तो अबाधगति से ये तत्व शरीर म जाकर अपना अड्डा बना लेते है। अब नमक की तरह, डिब्बो, शीशियो या टिना पर भाज्य पदार्थो म कालेस्टरोल' की मात्रा लिखी रहती है, नाकि आप अपना गणित स्वय कर सकें।

पश्चिमी देशो मे इन रोगो से मुक्ति के लिए अब अत्यधिक मात्रा म डाक्टरो व खुराक के विशेपज्ञो की सलाहानुसार लोग मास खाना छोड शाकाहारी वृत्ति अपना रहे हैं। जगह-जगह आपको चोकर समेत आटे की डबलरोटी, रासायनिक खाद के बगैर उगाए गए फल-सब्जी, तरह-तरह के सलाद, उगे हुए गेहू व चने आदि स्पेशल खाने के भण्डारो मे मिलेंगे।

25 से 50 वर्ष के पुरुषो को सामान्यत 2700-2800 कैलोरी की आवश्यकना रहती है और इसी उम्र की महिलाओ को 2000। प्रोटीन/विटामिन इस लेख के विपय मे नही आते क्योकि मोटापा या चर्बी खाद्य पदार्थो मे अधिकतर होते हैं, उन्ही पर ध्यान देना चाहिए।

अमेरिका की बहुमान्य सस्था (स्वास्थ्य व भोजन के तत्व सम्बन्धी) बिल रोजर्स इ स्टीट्यूट ने कई वर्षों के बाद सलाह दी है कि चर्बीयुक्त भोज्य सामग्री एव चीनी बहुत ही कम मात्रा मे लेनी चाहिए। यदि मास खाना भी हो तो बिना हड्डी के पका हुआ (तला नही) दो या तीन औंस मे राज अधिक नही, उतना ही चिकन का अश। इसके साथ दाल, बीन्स इत्यादि एक कप व खूब सारी सब्जी व फल। दूध के तमाम पदार्थ जैसे मक्खन, चीज (पनीर) आदि कम एव दही, छाछ व ताजे छेने के रूप मे अधिक लेने चाहिए। मक्खन व घी के बदले नए पकाने के तेल जिनमे चर्बी न हो। सब्जियों मे खूब हरी, पत्ते वाली सब्जी, थोकवाले फल जैसे सेव, खरबूजे, नासपाती आदि। वे मैदा या सामान्य डबलरोटी के बदले चोकर युक्त रोटी की सलाह देते है, भारत मे यदि केवल चोकर से बने फुलके या रोटी खाई जाय, तो पचने व शक्ति मे ये बेजोड हैं।

इसके मुकाबले हमारी शहरी दैनन्दिनी देखें। सुबह उठते ही चाय (इसके बजाय खूब गर्म पानी का गिलास पीए), दफ्तर जाते समय शाकाहारी लोग तले समोसे या मैदे के नमकीन खाते हैं (दक्षिण भारत की इडली नाश्ते के लिए श्रेष्ठ है), दफ्तर मे ठण्डी चपाती व आलू की सब्जी, ठण्डी दाल

न सफेद चावल (चावल बिना पानी के निकाले पकाए), घर आते ही ब्रेड या और कोई तली चीज जैसे चिवडा, दाल-मोठ, भेल आदि व चाय और 8 30/9 00 बजे जल्दी से असंतुलित भोजन। फलो का नाम नही है। (केला खरबूजा कोई महगे नही हैं) चिकन होगा तो मक्खनी खूब गहरा तला व मिर्च-मसाले युक्त।

सबसे अधिक भारतीय भोजन म सार्वजनिक स्तर पर नुकसान पजाबी रस्त्राओ ने किया है जो रूमाली रोटी, चिकन मक्खनी, कबाब, पनीर मसाला आदि को हमारे देश के प्रतिनिधि के रूप मे यही नही सारी दुनिया मे प्रसारित किया है। न तो पजाबी घरा म ऐसा नुकसानदेह खाना बनता है (न शहरो म न गावो मे) न ही स्वाद व मिर्च मसाले के लिए चटखारे क लिए इसे खाना चाहिए। इस तरीके से बन भोजन मे न कोई गुण है न ही यह स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त है।

कुछ अकाट्य नियम हमें पालन होग। अच्छी मात्रा मे कच्चे सलाद, हरी सब्जिया, दाल, दही, छाछ साबुत आटे की मोटी रोटी, बिना पालिश के चावल, हरे व भुने चने आदि भोजन मे लेने होगे। साथ ही नियमित व्यायाम, चिन्तामुक्त जीवन व नियमित कार्यकलाप। कई लोग कहते हैं कि एक ही तो जीवन मिला है, क्यो न मौज मजा कर लें—खाने पीने मे ? वे यह नही जानते कि जवानी के 15-20 वर्षों मे चाहे सो कर लो, 45-50 की उम्र से वापस भुगतान जो देना पडेगा, उस अफसोस व धोखे की कोई सीमा नही होगी।

पहले केवल बनिए व लाला लोग ही तोद वाले होते थे, आजकल तो शहरी सिक्ख, साधु-सत, पुलिस व सेना के कर्मचारी भी इसे पाले दीखते हैं।

तात्पर्य यह है कि उम्र तो भले भगवान ने जो दी हो, पर हम अपने हाथो अपनी पाचन शक्ति, भोजन मे मिलने वाला पोषण आदि नष्ट कर रहे है। घर-घर मे डाक्टरो की दवा। इन रोगो मे उत्पन्न डायरिया व चिकने मल की दवा उनके पास नही है। हम न योग कर पाते है न ही भोग।

है—"गु जा गहहि परसमणि छाडि"। वह उक्ति हम मे से प्रत्येक पर चरितार्थ होती है।

हम स्थायी मूल्यो को भूलकर तत्काल सुख को ही परम लक्ष्य बना चुके हैं। जरा-सा बुखार, सर्दी-खासी क्या हुई, हमे तो एन्टीबाईटिक चाहिए एव निर्जन गाव वालो को भी सुई। उसके बिना शीघ्र उपाय शान्ति नही। प्रात काल उठकर व्यायाम अथवा शुद्ध हवा मे घूमने के बजाए पलग की गुदडी मे पडे रहना किसे नही सुहाता ? परीक्षा मे सम्भावित प्रश्नो को गाइडो व ट्यूटरो से रटने से पास हो जाए, तो पाठ्य-पुस्तकें कौन पढेगा ? पाच रुपए के नोट से हमारा काम हो जाए तो नागरिक अधिकारो की रक्षा की माया-फोड कौन करे ? नौकरी के दफ्तर मे तो शरीर की उपस्थिति से काम चल जाता है, दिमाग भले ही मटर-गश्ती या शेयर बाजार के सौदो मे लगा रहे, अपना क्या बिगडता है ? भेल-चाट, जायकेदार कचौडी-पूरी, मिर्च-मसाले की तली हुई वस्तुओ के खाने से जो चट पट करता स्वाद आता है, उसके फलस्वरूप नाक व आख मे पानी भरने का मजा आता है, तो पौष्टिक पदार्थों का क्या मतलब ?

हमे परमिट मे मिला न्यूजप्रिंट, लोहा या अन्य अप्राप्य वस्तुए बाजार मे बेच कर अच्छी खासी ब्लैक की रकम मिल जाए तो किसे अखबार या उद्योग चलाना है ? इस लिस्ट को हम अपने आप सौ गुना फलित कर सकते हैं।

जापानी बोने पौधे (बोन्जाई) रह तो सैंकडो वर्ष सकते हैं, पर उनकी जडें गहरी नही होने दी जाती। वही छिछोरापन हम सबने सीख लिया है। जब तक रोग पहचान मे न आए, निदान कैसे हो ?

दुनिया के मेले मे हम अपनी स्थिति एक खोए या बिछुडे बच्चे की तरह पाते हैं, जो अपनी बुद्धि का आश्रय न ले रोने लगता है या निरीह भटकने लगता है। हर घटना चक्र मे हम अपना बनाम पराए का रुख जाने-अनजाने ले लेते हैं, तटस्थता या सम्यक् बुद्धि का आश्रय नही। भारत मे अनादिकाल से "साक्षी" भाव को प्राथमिकता दी हुई है, ताकि हम इस दलदल मे न फस उसे दूर से देखते रहें, जैसे शेक्सपीयर इस दुनिया को स्टेज की तरह देखता है और जहां सभी कलाकार अपना-अपना पार्ट अदा कर पर्दे के पीछे चले जाते हैं। यहा तो किसी हिन्दी फिल्म मे चले जाइए, आधे से अधिक लोग दुख की घडियो मे आख लाल किये सुबकिया लेते मिलेंगे। तभी तो हर फिल्म मे भावना को प्रधानता मिलती है और हीरो को अन्तत विजय।

तटस्थता या सम्यक् बुद्धि के बिना व्यक्ति का तोल किसी भी विषय मे सही नही बैठता। यदि हम पजाब की तरफ हुए, तो हरियाणा की हर गतिविधि

के खिलाफ होंगे ही । यदि विरोधी पक्ष के सदस्य हुए तो सरकार की हर कार्यवाही की आलोचना स्वाभाविक रूप से करनी ही होगी । यदि भारतीय टीम जीत गई, तो क्या मारा अबकी सालो को, और नही तो वहा का पिच खराब व अम्पायर पक्षपाती ।

साक्षीभाव ऐसे डाक्टर की प्रक्रिया का नाम है जो अपने बीबी-बच्चो का उपचार ही नहीं, जरूरत पडने पर उनकी शल्य क्रिया भी कर दे । लेखक की जानकारी मे बम्बई के सुविख्यात सर्जन डा० शातिलाल जे० मेहता ने कई वर्षों पूर्व अपनी पत्नी पर करीब 6-7 घटो की लम्बी शल्य किया स्वय की । पर ऐसे कितने व्यक्ति हैं ?

भारतीय वाड्मय मे एक कथा किसी ऐसे राजा की आती है जो निस्सतान था एव जिसने घोषणा की कि आज दस दिनों बाद उसके शहर मे नदी किनारे एक मेला लगेगा, उस मेले में राजा स्वय वेश बदलकर रहेगा । जो व्यक्ति उसे पहचान लेगा, उसे ही राजगद्दी मिलेगी । मेले की तैयारी कांग्रेस के शताब्दि उत्सव से भी अधिक की गई । जगह-जगह रोशनी, खेल-कूद का सामान, रग-बिरगी सामग्री की लुभावनी दुकानें, साप-अजगर के खेल, जादू का तमाशा, अखाडेबाजी आदि । समय पर दरवाजे खोलकर मेले का उद्घाटन किया गया । सारे नागरिक उमड पडे । कोई दही-बडे मे फसा तो कोई गोल-गप्पे मे, कोई झूलो की शोभा देखने लगा तो कोई मल्लयुद्ध की । सभी लोग सजावट से मुग्ध हो रहे थे । झुड के झुड नागरिक आनन्द से एक दूसरे से जुहार, राम-राम कर रहे थे ।

एक युवक सारे मेले को तटस्थ भाव से खोज रहा था, क्योकि उसे याद था कि प्रयोजन राजा को ढूढने का है । करीब 2/3 घटो के बाद नदी किनारे शिवालय में आरती के घण्टो के बीच बाहर की तरफ पीठ किए एक व्यक्ति पूजा कर रहा था । उसके पूजा के ढग को देखते ही युवक समझ गया कि पुजारी ब्राह्मण नही क्षत्रिय है एव उसे इस कार्य का तनिक भी अभ्यास नही है । उसी को राजगद्दी मिली, क्योंकि उसने अपनी एकाग्र बुद्धि से विषयान्तर नही होने दिया ।

हम लोग क्यो नही किसी भी काम मे सफल हो पाते, चाहे वह योग मार्ग हो अथवा भोग मार्ग । एक काम पूरा हुआ नहीं कि दूसरे पर मन बुद्धि हावी हो जाती है । बात-बात मे कलह, ईर्ष्या-द्वेष, झगडे आज हमारी थाती बन गए हैं । घर मे तनाव तो दफ्तर मे मन-मुटाव । काम करने वाल मैनेजरो की दुनिया में आज सबसे बडी बिक्री है नीद की गोलिया, ब्लड-प्रेशर की दवा, अल्सर का इलाज, दिल के दौरे के आघात, ट्रेंक्विलाइजर आदि की । हमने पूर्णतया अपने जीवन की बागडोर असयत मन जैसे साथी के हाथ मे सौंप दी है **और**

बेचारी बुद्धि को एकान्त कारावास दे दिया है। आनन्द, प्रगति, स्वास्थ्य मिले भी तो कैसे। पश्चिम में कहा जाता है 'नथिंग इज फ्री इन लाईफ'। जीवन में हर ठोस मूल्य वाली वस्तु के दाम देने होंगे, उसके लायक अपने आप को बनाना होगा। नहीं तो बेपेंदे के लोटे अथवा कठपुतली की तरह नाचना होगा।

बुद्धि को वापस बुलाकर सिंहासन पर बैठाना होगा। वह रखवाली करे एवं मार्ग-निर्देश दे, तो देखिए थोड़े ही समय में कैसे नजारा बदल जाता है।

भय से अभय और अभय से भय

जब-जब मौका मिलता है, मैं रेल से यात्रा करता हू ताकि गन्तव्य स्थान पर पहुचते पहुचते न केवल मन व तन को वाछित विश्राम मिल जाय वरन् आगे काम करने की पूरी तैयारी भी हो जाए। उद्योग धन्धे वालो को पिछले 30 वर्षों से मक्डी के जाले की तरह केन्द्रीय सरकार के फैले हुए चक्रव्यूह मे जाना ही पडता है, वहा के दालानो व अहातो मे जूते-चप्पल घिसते कोई ही बेदाग व अछूता रहता है। बाकी सब तो अभिमन्यु की तरह सदा के लिए वही उलझे रहते हैं। अत व्यवसायियो का मक्का-मदीना नई दिल्ली अजगर की तरह मुह बाए खडा है, जहा हम लोगो को नियमित रूप से भेंट प्रसाद चढा कर आना पडता है।

पिछली बार इत्तिफाक से गुरुवार को राजधानी एक्सप्रेस मे मुझे व पत्नी को सीटें मिली। दिल्ली से राजस्थान स्थित गाव भी जाना था। मेरे मित्र श्रीप्रकाश की विधवा मा प्रभावती का मुझ पर अत्यन्त स्नेह है। हमारे घर पास-पास हैं, अत बहुधा दफ्तर से घर लौटती बेर उनके यहा शाम की चाय व गप्प होती है। वे अत्यन्त धार्मिक, भीरु व करुण हृदय हैं। मैंने दिल्ली जाने का कार्यक्रम बताया तो चट बोल उठी 'अरे गुरुवार को तो चन्द्रग्रहण है बेटा। ग्रहण के दौरान यात्रा कर रहे हो ?" मैंने हसकर चाची की बात टाल दी, गोया उनको सतोष नही हुआ।

मेरे मित्र श्रीप्रकाश स्वभाव से बहुत मेहनती हैं, रोज 10-12 घटे दफ्तर म काम मे जूझते है बडा कारोबार है—6-7 वरिष्ठ अधिकारियो के रहते हुए भी दफ्तर मे उनके बिना एक पत्ता भी नही हिल सकता। किसी को 500 रु० एडवास चाहिए अथवा बीस दिन की छुट्टी, सभी वाऊचरो व आवेदन-पत्रो पर बाबू श्रीप्रकाश के दस्तखत न होने तक कोई भी विभागीय अध्यक्ष अपने मातहत कर्मचारियो को स्पष्ट जवाब देने की हालत मे न था। यह नही कि

श्रीप्रकाश को व्यवस्थापन के तौर-तरीके या सिद्धान्तो की जानकारी न थी, कोई भी नई पुस्तक बाजार या क्लब की लाइब्रेरी मे आती, तो सबसे पहले लाकर उसे पढते, अच्छे परिच्छेदो को पेन्सिल या स्याही से अंकित कर उजागर करते, पर उस पर अमल करना दूसरी बात थी। स्वभाव उनका शक्की, मिजाज गर्म, सहनशीलता नही के बराबर—इसी चक्कर मे उनको ब्लड-प्रेशर व अल्सर दोनो हो गये थे, जो आज के सफल उद्योगपति के पद्म भूषण बन चुके हैं।

प्रभावती अपने पुत्र के स्वास्थ्य के बारे मे रोज चिन्तित रहती, पर अकेला बेटा होने के नाते श्रीप्रकाश को उन्होने गाधारी की तरह बडा किया। उसकी हर माग पूरी होती। वही हालोहवाल अब श्रीप्रकाश के दो लडको व एक लडकी के साथ हो रहा था। बच्चे इतने तुनकमिजाज हो गए थे कि न पापा की बात सुनते न दादी मा की। दादी से तो इतना जिद करते—नीचे जाकर देर तक खेलने की, भेल-चाट, चोकलेट, आइसक्रीम की कि बच्चो की तबीयत खराब होने के बावजूद बडे बेमन से उनकी बात पूरी की जाती। मैं इशारे मे श्रीप्रकाश से यदा-कदा उनके काम करने व बच्चो की परवरिश के गलत रास्तो की चर्चा करता, पर असर कुछ नही। सच ही तो है, "जहाँ परिया व यक्ष भी जाते घबराते है वहा मूर्ख बे-बाक निधडक चले जाते हैं।" "फूल्स रश इन, वेयर एन्जेल्स फीयर टू ट्रेड" वाली कहावत सब पर लागू पडती है पर आदत हमारी पड गई है ढकोसलो, अन्धविश्वासो व रूढिवादिता की, उन्हीमे उलझे रहते है और तत्व व सत्य की दुनिया से हमे डर लगता है।"

हमे सबसे अधिक डरना चाहिए अपनी तामसिक बुद्धि से जो कि अज्ञान के अधेरे मे यही समझती है कि मैं ही ठीक हू बाकी सब गलत। दुनिया म हर आदमी अपनी मनमानी (मनमा, वाचा, कर्मणा) यथासभव करना चाहता है, उसे न रुककर सोचने, समझने का समय है, न दूसरो से विचार विमर्श का।

हमारे ही घर मे 1946-47 की बात है—उस समय हमारे पितामह सेठ हजारीमलजी के सामने बडा धर्मसकट आया जब कि मेरे चाचा (उनके दूसरे पुत्र) ने सात समुन्दर पार विलायत जाने का निश्चय किया। वे न केवल पश्चिम की औद्योगिक उपलब्धियो का निरीक्षण व अध्ययन करना चाहते थे, वरन् सौराष्ट्र मे एक सीमेन्ट का कारखाना भी लगाना चाहते थे। द्वितीय महायुद्ध खत्म हुआ ही था, हालाकि रौरव नरक मे भस्म हुए यूरोप की राख अभी पूरी तरह ठण्डी नही हुई थी। दादाजी ने (हमारा घर अत्यन्त सनातनी व पुरातनपथी होने के बावजूद) उन्हे आज्ञा दे दी, यह विचार कर कि मैं दूसरो की "प्रगति" मे बाधक क्यो बनू और अपने-अपने कर्म का फल अपन को ही भुगतना पडता है।

दूसरी घटना मेरे पिताजी के जीवनकाल की है जो आज से कोई 20 वर्ष पूर्व मेरे सबसे छोटे भाई के एक पजाबी—यूरोप से लौटी लडकी से विवाह करने के बारे मे है। हार्ट-एटैक से पूर्णतया स्वस्थ न होने के बावजूद समय के झोंके के लिए उन्होने दरवाजा खोल दिया, हालांकि तब तक हमारे यहा माहेश्वरी-अग्रवाल विवाह भी बेमेल समझा जाता था।

उपरोक्त दो चमत्कार (उन दिनो के संदर्भ मे) घटनाओं के बाद आज वापस सबके सब "अन्धेनैव नीयमाना यथान्धा" (मुण्डकोपनिषद्) की तरह लकीर के फकीर हो रहे, हैं, घर-घर मे कोई भी अपने बच्चो के सामने अच्छा उदाहरण पेश नही करता। सर्गो, उत्सवो, कर्मकाण्डो (वे भी इष्टापूर्ति के लिए, सो हीनतर लोक मे जाना ही होगा) मे लोग उलझे पडे हैं, ये साधन हैं—साध्य तक पहुचने के, यह भूलकर इन्ही उपकरणो के गोबर मे कीडे की जिन्दगी बसर हो रही है।

भारत से ही विश्व को तामसिक, राजसिक व सात्विक गुणो की विरासत मिली है। सात्विकता तक जाना तो दूर, शुरू मे जहर की तरह कडवा लगने के कारण कोई अन्तत अमृत का हकदार होना ही नही चाहता। राजस व तामस के काम, क्रोध, मद, लोभ, मत्सर, अज्ञान आदि आज हमारे आभूषण बन चुके हैं। कोई भी माता पिता, आचार्य बच्चो को यह नही सिखाता कि मन की कामनाए अबाध हैं, उनके पीछे पूर्ति की दौड बाझ व कष्टदायक है, अपना कर्त्तव्य किये जाओ। पर आज तो "झाला च पाहिजे" या "होते होवे" के नारे गली गली, फैक्टरी दालानो मे लाल झण्डों की ध्वजा लिए गूज रहे हैं, मा भारती को पोषण व खुराक मिले कि नही, मुझे सब कुछ मेरे लिए ही चाहिए। शिक्षा के नाम पर रटतरी, समझदारी की जगह आक्रोश व निरकुशता, बुद्धि के स्थान पर छुरा, ब्रह्मचर्य के बदले परगामी, इन सबका नतीजा वही होकर रहेगा—जिसमे बर्बादी के सिवा कुछ नही है।

हमारा तन जो स्वस्थ होकर कर्मयोग के तप मे अहर्निश लगा रहे, उसके स्थान पर वह रोगो का घर व आलस की तन्द्रा से कामचोर हो गया है। मन जो विश्वतोमुखी हो, राष्ट्रीय भावना की आहुति दे—वह वासनाओ के जाल मे फसा हुआ है। बुद्धि-विवेक जो विश्व ही नहीं ब्रह्माण्ड की प्रत्येक कृति मे अपनत्व का अश देखे, उसके स्थान पर छल-कपट की भडार हो गई है, वह हर वस्तु को अह-मम के रूप मे तोलती है।

हमे बनाने वाले ने पाच ज्ञानेन्द्रियां व पाच ही कर्मेन्द्रिया दी हैं। वैसे तो सभी ज्ञानेन्द्रिया बहिर्मुखी हैं, फिर भी इनका सीधा सटीक सम्पर्क मन से है, जिसके जरिए सारा कार्यकलाप चलता है। मन रूपी घोडो पर जब तक स्वय की लगाम नही रहेगी, तो वाहन का एक्सीडेंट होगा ही। आचार्य शकर

(प्रथम) ने विवेक चूडामणि म इसलिए ज्ञानेन्द्रियो पर चौकसी व अहर्निश सयम सम्बन्धी सदेश अकित किया है।

शब्दादिभि पचभिरेव पच पचत्वमापु स्वगुणेन बद्धा
कुरगमातगपतगमीनभृ गा नर पचभि रचित किम् ॥

आशय स्पष्ट है कि हरिण, हाथी, पतगा, मछली और भौंरा एक ही ज्ञानेन्द्रिय के वशीभूत होते ही मौत के घाट लग जाते हैं, बेचारा मानव तो पाचो का दास है, उसकी हालत का क्या कहना ?

हरिण सगीत की ध्वनि से, हाथी हथिनी के स्पर्शलोभ से, पतगा दीपक की लौ की ज्योति से, मछली मच्छीमार के काटे मे फसे पदार्थ के स्वाद के जरिए एव भौंरा फूल की सुगन्ध से अपने-अपने दासत्व अथवा मृत्यु के शिकार हो जाते हैं। अत हमे तो पाचो ही ज्ञानेन्द्रियो पर सतत निगरानी रखनी होगी, इस विषय मे एक भी इन्द्रिय को ढील देना खतरा मोल लेना है।

वे आगे कहते हैं कि दुनिया के भोग्य पदार्थ भयकर काले नाग के जहर से भी अधिक तीव्र हैं, क्योकि साप का जहर तो उसके काटने पर असर करेगा, ये विषय तो देखने-सुनने आदि से ही घातक वार करते हैं।

विवेक चूडामणि के श्लोक-368 म तत्पश्चात् जिह्वा को प्रथम स्थान देते हुए आचार्यवर कहते हैं

"योगस्य प्रथम द्वार वाङ्निरोधोऽपरिग्रह "

योग एव निर्विकल्प समाधि हेतु प्रथम उपकरण वाणी व जीभ का सयम व निरोध है, द्वितीय चरण अपरिग्रह।

आज इसी दायरे मे हम निरकुश व अबाधगति से डूबते-उतराते है। जिससे डरना चाहिए, उसे गले लगाते और जहा निर्भय होना चाहिए उनसे दूर भाग रहे हैं। इस उधेड-बुन मे मानव की ही अधोगति होगी। प्रकृति के अकाट्य नियमो की नहीं।

7

मानसिक तनाव व ब्लड प्रेशर

रमेश को मैं बचपन से जानता हू, क्योकि पडोसी होने के अलावा स्कूल-कालेज मे हम दोनो साथ ही रहे। वह मुझसे चार बरस छोटा था, अत मैं बम्बई विश्वविद्यालय के एलफिन्स्टन कालेज से स्नातक होकर निकला ही था कि उसने उसी कालेज मे दाखिला लिया। यदाकदा फीजिक्स-मेप्स की गुत्थी सुलझाने मेरे पास आता रहता।

जीवन के गोरखधन्धो मे उलझने के बाद यथावत् सम्पर्क तो नही रहा, फिर भी हम दोनो के परिवारो मे जीवन-मरण, दु ख-सुख, विवाह, गृहप्रवेश आदि मौको पर आना-जाना था। रमेश के पिता बम्बई के एक मू गफली के तेल के कारखाने के मालिक हैं। पिछले 10/15 वर्षों मे पकाने की सामग्री घर-घर मे घी के बदले तेल ही हो गई थी और उस पर भी मूगफली के तेल पर पूरा सरकारी कन्ट्रोल था, दाम कितने होने चाहिए, पैकिंग कितने की होगी, मूगफली का कोटा आदि। बाजार मे पकाने वाले तेलो का उन दिनो वैसे ही बेहद अभाव था, सो पूरा नियन्त्रण होने के कारण खूब ब्लैक चलता व गली-गली में फैक्टरी के माल मे मिलावटी चर्बी के अड्डे बने थे। पता नही इसमे रमेश के घरवालो का कितना हाथ था, पर देखते-देखते ही उनका परिवार करोडपतियो की गिनती मे आने लगा। जब तक रमेश शिक्षा समाप्त कर निकला, तो बाकी तीन भाई अभी पढ रहे थे, पर घर मे 'सुख-समृद्धि-वैभव' के भरपूर लक्षण मडरा रहे थे।

रमेश के मन मे शुरू से ही धुन लगी थी कि दुनिया मे रुपए-पैसे, कल कारखाने, मोटर-हवाईजहाज के जरिए बहुत बडा नाम कमाना है। पहले दिन से ही वह इसी लक्ष्य को लेकर चला। घर-गृहस्थी, मित्र-मण्डली पढने-लिखने, कला-सगीत आदि विषयो से वह नितान्त दूर था, कभी-कभा

पत्नी या मित्रो के अत्यधिक आग्रह से जाना पड़ता, पर सोते-उठते उसके एक ही भूत सवार रहता। दिल्ली,बम्बई आदि मे सभी स्तरो के मन्त्रियो, सरकारी अफसरो, कस्टम, पुलिस अधिकारियो आदि से उसने अच्छी पैठ जमा ली थी। एक तो चापलूसी की कला व दूसरा नोटो का इस्तेमाल। जा-बेजा उसकी हर प्रवृत्ति बढ़ती रही।

5-7 वर्षों बाद कर्नाटक मे उसने एक ऐसा कारखाना खरीदा जो कई महीनो से बद था, क्योकि व्यवस्थापक एक तो पुराने जमीदारी घरान के थे जिन्हें औद्योगिक व्यवस्था के क, ख, ग की भी जानकारी नही थी, दूसरे उन लोगो ने निश्चय कर लिया था कि इतनी राशि खोने के बाद और रुपए लगाना बेकार है। रमेश स्वय मैसूर के पास स्थित कारखाने के पुन सजीवन मे जी-जान से लग गया। एक-दो दिन बाद तो मजदूरो से हाथा पाई व मार-पीट की नौबत आ गई थी। किसी तरह बैंको से बातचीत कर, करीब 70-80 कारीगरो को हटा उसने फिर से चलाया और उत्पादन क्षमता की कमियो को दूर करनेवाली मशीनो का आर्डर दिया।

गरज यह कि रमेश अब अपने धधे के 8-10 वर्षों मे ही अपने जीवन का रस ही नही खो बैठा, अनिद्रा, चिन्ता, बेहद्र, चिड़चिड़ापन आदि ने उसे आ घेरा। घर पर माता-पिता, पत्नी बच्चे अलग परेशान थे। पर वह अपनी धुन म सबकी सलाह सुनी-अनसुनी करता रहा। डाक्टर उसे वर्ष मे एक महीने की छुट्टी न ले सकें, तो 3-4 बार एक-एक हफ्ते की लेकर 'रिलेक्स' होने की दर्जनो बार सिफारिश कर चुके थे, पर काम के नशे मे चूर रमेश को और कोई भी प्रवृत्ति काटने दौडती। लिहाजा मैसूर मे उसे दिल का भयकर दौरा आया एव उस डाक्टर-नर्सों-आक्सीजन सहित बम्बई लाकर जसलोक अस्पताल मे आइ० सी० यू० मे भर्ती कराया गया। 48-वर्ष की उम्र मे उसे इतनी करारी चोट मिली कि घरवालो के तो प्राण ही सूख गए। अस्पताल के वरिष्ठ डाक्टरो ने स्पष्ट सलाह दी कि भविष्य मे यदि रमेश ने फिर कभी ज्यादती की तो भगवान ही मालिक है। इसी सिलसिले मे मैं उससे मिलने गया, तब तक वह 23वें माले के कमरे में ले आया गया था और कुछ लोग उससे 4-7 के बीच थोडी देर के लिये मिल सकते।

कुशलक्षेम के पश्चात् रमेश ने बहुत ही सुस्त एव अशक्त आवाज मे पूछा "मैंने इतने दिन किसी की भी बात नही सुनी, इसीलिए यह हालत हुई। अब तो डाक्टरो ने अनेक बधन लगा दिए हैं। पता नही अब कैसे अपने कर्त्तव्य का निभाव होगा?"

"तुम्हारा कर्तव्य क्या यह है कि तुम अपने मन व शरीर की शक्ति के उपरान्त भाग-दौड करो? तुम्हें चाहे दुनिया मे ऐश्वर्य का सुख लूटना है अथवा

शाति व आनन्द का जीवन बिताना है, भोग व योग बिना रोग के ही किए जा सकते हैं। और किसने तुम्हारा कर्त्तव्य तोला है ? अपने मन की अबाध तृष्णा को उत्तरदायित्व या कर्त्तव्य का चोगा देना चाहते हो, ताकि मन मे अपने को दोषी न समझो।"

"मान लीजिए, मैं काम कुछ कम भी कर लू, तो भी मन हमेशा बेचैन रहता है। पता नही उसे किस लक्ष्य की तलाश है। जो मजिल लक्ष्य के तौर पर पार करता हू, 10-20 दिनो मे उसका भी उल्लास समाप्त हो जाता है। करू तो क्या करू ? सन्यास ले लू ?"

"आज के युग मे, पहले की तरह युद्ध या पलायन, दो ही विषम रास्तो को अपनाने से काम नही चलेगा। मानवो को विरासत मे जो न्याय, विवेक बुद्धि मिली है, एव हसने की आल्हादित मुद्रा—वह और किसी भी प्राणी को हासिल नही है। अपने मन को बुद्धि से परखते रहो, धीरे धीरे अपने आप कर्त्तव्यनिष्ठा समझ मे आने लगेगी।"

अस्पताल मे रमेश महीने भर रहा। उसके आग्रह से एव डाक्टरो की अनुमति पाकर हम दोनो जीवन के सर्वव्यापी बोझ, जिसे आज स्ट्रेस, टेन्शन आदि के नाम से घर घर मे मेहमान बना रखा है, के बारे मे घुमा-फिराकर बातचीत करते।

एक दिन रमेश ने पूछा "आज का जीवन चारो तरफ इतना बोझिल और चिंता की लपेट मे क्यो आ गया है ? हर ओर मुझसे अधिक पैसे वाले और मुझसे *अधिक गरीब—सभी इधर-उधर दौड रहे है। विदेशो मे तो इतना सासारिक* सुख व ऐश्वर्य की सुविधाए है, वहा भी सबसे बडा व्यापार लोगो का मन सामान्य करने (रिलेक्स) मे एव उनके मनोरजन के साधनो मे है।"

पश्चिमी भौतिक व ऐश्वर्य पर टिके जीवन की दुर्दशा तो अकारण नही हो रही है। सबसे पहले तो उनकी जिन्दगी पहले दिन से ही तत्काल सुख पर आधारित है। गली-गली मे उनके मन को अनेक अद्भुत प्रलोभनो से आकर्षित किया जाता है। उनके जीवन मे सुख-सुविधा, ऐशो-आराम, सेक्स, मनोरजन, शराब व तत्पश्चात् नशीले ड्रग—उसके भवर जाल मे पडा व्यक्ति जीवन के उतार-चढाव व मानसिक तनावो से छुट्टी कैसे पा सकता है ? उन्हें अपने पौराणिक पात्र ययाति के बारे मे कुछ भी पता नहीं है, जिसने दो-दो शादी विलास के पूरे जीवन के सुख भोगने के बाद हम सब के लिए कहा है :—

न जातु काम कामाना उपभोगेन शाम्यति
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।।

सीधा सा कानून है कि हमारी इच्छाओ की अग्नि मे शरीर विज्ञान, मनो-विज्ञान आदि विद्याओं मे इतनी अधिक निपुणता मिलने पर भी पश्चिम के लोग

यह नही जानते कि मानसिक तनाव (स्ट्रेस) क्या है और क्यो होता है ? तभी तो आज अरबो डालरो की मात्रा मे ब्लड प्रेशर, टेंशन, अनिद्रा, चिड़चिड़ापन आदि रोगो की दवाए पश्चिमी बाजारो मे प्रचलित हैं। पर वे रोग से उत्पन्न बेचैनी के आभास व चिन्हो को दबा देते हैं, रोग को निर्मूल निकाल नही सकते।

रमेश और उसकी पत्नी सुधा दोनो बैठे थे। पश्चिमी व आधुनिक विचारधारा के हिमायती होने मे इस बात को गवारा नही कर सके। फौरन सुधा बोल उठी

"यह आप किस आधार पर कहते हैं ? पश्चिमी विज्ञान ने न केवल जिन्दगी की अवधि बढा दी है, पर आज वे आधुनिक कल-पुर्जे, मशीनें (सर्जरी-शल्य क्रिया) एन्टीबायटिक न होते तो जीना मुश्किल हो जाता।'

इतने मे अस्पताल म रमेश की तबियत का हाल पूछने स्वामी पार्थसारथी आ गए। रमेश को पिछले 4-5 वर्षों मे उसकी हालत देख एव उसके घरवालो के आग्रह पर मैंने वेदान्त के प्रकाड मनोवैज्ञानिक से मिलाया था, पर हर बार रमेश उनसे बातचीत कर क्षणिक शान्ति तो पाता, लेकिन उनके बताए मार्ग पर चलने का निश्चय नही कर पाता। सब लोगो की भ्रामक धारणा के हिसाब से भारतीय दर्शन शास्त्र 60-70 की उम्र मे रिटायर होने के बाद हरिद्वार मे जाकर सीखने के काबिल हैं। गृहस्थी व व्यापार मे इसका क्या काम ? मैंने स्वामीजी को रिपोर्ट दे दी थी कि सभवत अब रमेश इतना भुगतने के बाद जीवन की कला व विज्ञान को आत्मसात् करे इसलिए वे पूर्व इशारे के आधार पर आए।

सुधा का प्रश्न और हमारी चर्चा का प्रसग जानकर वे बोले —

"सुधा, तुम जिन उपकरणो की बात कर रही हो, वे वास्तव मे जीवन मे उपयोगी हैं, पर विषय है कि जीवन मे वास्तविक सुख व आनन्द क्या है, आज इतना आतरिक सघर्ष उलझन व तनाव का शिकार आम व्यक्ति क्यो रहता है और इसे जीवन मे निकालने के क्या स्थायी स्तभ हैं ?"

उनका इशारा पाकर मैंने फिर सूत्र जोड़ा

'पश्चिम की विकसित विद्या मे मन व बुद्धि (विवेक) मे कोई अन्तर नही है। वे इसके सूक्ष्म फर्क को समझ ही नही पाते, तभी दोनो के लिए एक ही शब्द माइण्ड का प्रयोग होता है। भारतीय वेदान्त मे मन भावनाओ का भडार है जहाँ प्रेम, क्रोध, राग-द्वेष, पसद-नापसद आदि का राज होता है एव बुद्धि विवेक का केन्द्र है जो कर्त्तव्य अकर्त्तव्य, अच्छा-बुरा, पाप-पुण्य, मान-अपमान आदि को तोलता है।"

"सरल भाषा मे मन हमारे घर के बालक जैसा है जो स्वेच्छाचारी है, तभी तो बच्चे की मनमानी हम बडे टोकते-रोकते हैं। वयस्क व्यक्ति बुद्धि है जो बच्चे (मन) को राह दिखाती रहती है। दुनिया का सबसे बडा दुर्भाग्य यही है कि हम सब मन के गुलाम हैं, बुद्धि को धतूरा खिला सुलाए रखते हैं। तभी जो दिल चाहता है, वह काम करते हैं, चाहे वह किया जाना चाहिए अथवा नही जब हम बच्चे को अधिक चाकलेट खाने, बराण्डे की दीवाल पर चढने, मूल्यवान वस्तुओ को छूने, बिजली के प्लग को हाथ लगाने से मना करते हैं, बरजते हैं तो भूल जाते हैं कि हमारी अपनी चाकलेटें (शराब, सिगरेट, मादक पदार्थ), दीवार (नीति, मर्यादा, चरित्र), मूल्यवान (जीवन के शाश्वत सिद्धान्त), बिजली के प्लग (जुआ, सट्टा, लालच, द्वेष आदि) आदि से हम खेलते रहते हैं, उस समय हम ज्येष्ठ (विवेक) की बात सुनते नही। इसका परिणाम तो खराब होगा ही।"

रमेश तनिक झुझला कर बोला

"तो क्या स्वामीजी मन को मार कर रखा जाए? आखिर एक ही तो जिन्दगी है और उसमे उमग, मनोकामना, उत्साह, सवेदनशीलता न रहे तो ऐसा शुष्क जीवन किस काम का?"

स्वामीजी "किसने कहा कि जीवन म आनन्द व रस नही रहना चाहिए? क्या दो अतिशयोक्तियो के बीच कोई जगह नही है? हमे समझना यह है कि मन हमारी इच्छाओ व वासनाओ को जन्म देता है। एक इच्छा पूरी हुई कि दूसरी ने जन्म लिया। सारी तो इच्छाए पूरी किसी प्रधान मत्री या राष्ट्रपति की भी नहीं हो सकती। अत बिना विचारे इन अपूर्ण इच्छाओ को हावी होने दें तो मन मे उथल-पुथल, सघर्ष, मालिन्य पैदा होगा ही। कितनी कामनाए पूर्ण हुई और कितनी अपूर्ण रही, इनका अन्तर ही मन का बोझ, सताप बनता है, उसे अग्रेजी मे स्ट्रेस या स्ट्रेन कहा जाता है। कामधेनु अब है नही, इसलिए हम विवेक की लगाम नही रखें तो टेंशन, तनाव, असतोष होगा ही। यह मनोवैज्ञानिक ध्रुव सत्य है।

सुधा "तो मन को मारे बिना कैसे सुखपूर्वक रहा जाय ताकि ब्लड प्रेशर आदि हो ही नही?"

मैं "यह काम बुद्धि को ताक मे से निकाल अपने यथावत स्थान सिंहासन पर बैठाने से होगा, मन को दबाने से तो विकृति ही होगी। हम हर कामना उठते ही बुद्धि से पूछें बता तेरी रजा क्या है? और उसका आदर करें, तो मन मे उठनी अवाछनीय इच्छाए अपने आप विलीन हो जाएगी और अपने पीछे कोई आक्रोश नही छोड़ेंगी।"

यदि मुझे डायबिटिज (चीनी की बीमारी) है और मिठाई खाने का बेहद शौक है तो पूछना होगा कि पांच सेकेण्ड के जीभ के स्वाद के लिए जीवन मे खिलवाड करने का क्या हक है ?

यदि आज मैं 53 वर्ष की अवस्था मे क्रिकेट का शौकिया व सामान्य स्तर का खिलाडी हूँ तो सुनील गावस्कर बनने का उन्माद कहा तक अक्लमंदी है ? मन की सारी विडबनाओं को इसी तरह सुलझाते रहे, तो ये रावण के सिर हम पर हावी ही क्यो हो ?

रमेश "बुद्धि तो हम सब मे है। मैं भी बिना बुद्धि के इतनी ऊची जगह पहुच नही पाता, फिर क्या रहस्य है कि—"

स्वामीजी "जहा भाती है वहा हम बुद्धि का प्रयोग करते हैं, जहा सुख ऐश्वर्य देखा-देखी, यश आदि की कामना छा जाती है, उस समय हम उसे फाईल कर देते हैं। अन्य शरीर के किसी भी अवयव की तरह पुष्टि केवल अभ्यास व परिश्रम से हो सकती है। बुद्धि न केवल तीव्र व स्वस्थ हो, जरूरत पडने पर अपना काम करे यही सफल जीवन का गुर है।"

भारत का दुर्भाग्य है कि जीवनोपयोगी शिक्षा भूतकाल मे विद्या के रूप मे बालक को 7-8 वर्ष की उम्र से 17 18 तक दी जाती थी, वह लुप्त हो चुकी है। हमने अपने नेत्रों की ज्योति खो दी है, तभी तो एम० ए०, बी० ए० की डिग्रिया तो हासिल कर लेते हैं (निलगेकर के माध्यम से) पर जीवन के मोल तुले (अनतुलें) रह जाते हैं।

तनाव, बोझ, चिडचिड़ापन, अनिद्रा, अल्सर ब्लड प्रेशर, हमारी नैसर्गिक थाती नही है, जैसी घर-घर मे दीख रही है। पति दुश्चरित्र हो या सास बकने वाली, दफ्तर मे बॉस गुस्सेवाला हो अथवा रेलवे प्लैटफार्म टिकट देने वाला क्लर्क असभ्य, व्यापार मे घाटा हो अथवा शेयर मार्किट नीचे गिर गया हो, बेटा बात नही मानता अथवा स्त्री कलह प्रिया हो, दुनिया मे अशांति बाहर मे नही आ सकती, नितान्त आतरिक व अन्दरूनी उपज है।

मन व बुद्धि रावण और राम के प्रतीक हैं, शैतान व क्राईस्ट के। इन दोनों का द्वन्द्व अनादिकाल से चलता आया है और प्रकृति के नियम से चलता रहेगा। इस युद्ध मे शहीद होकर कोई नाम नही कमाता। मन मुक्ति का भी साधन है और बन्धन का भी। समाधान केवल हमारे अपने हाथों मे है, न डाक्टरो के, न वकीलो के।

8

मन के हारे हार

हम लोग सभी अपने जीवन को शेयर मार्केट की हार-जीत के अनुसार मानने व ढालने लग गये है। किसी भी प्रसग मे दो योद्धा या खिलाड़ी होंगे, चाहे क्रिकेट का टेस्ट या एक दिवसीय मैच हो अथवा शेयरो की लेवा-बेची, एक पक्ष जीत मे रहेगा और दूसरा हार मे। जीतते ही खिलाडी के हाव-भाव व मौखिक मुद्रा देखते ही बनती है, चाहे वह स्टेडियम से होटल लौट रहा हो अथवा बाजार से भुगतान का चैक लेकर घर। एक चाल ही निराली होती है। मन उमगो मे उडने लगता है, जो अपने करतब की बडाई सुनने-सुनाने को उत्सुक हो उठता है। और हार तो दूसरे की होगी ही, वह बडी मुश्किल से खीसें निपोर या तो एम्पायर में दोष निकालता है अथवा मार्केट के दलाल पर। *गरज यह कि दोनो ही द्वन्द्वी भूल जाते हैं कि यह तो एक साधारण होने वाली* घटना है, दिन के बाद रात और रात के बाद दिन आने ही वाला है। न हार हमेशा की हार है, न जीत जीत।

अक्सर अखबारी विशेषज्ञ, जो खेल को हमेशा किताबी जानकारी के आधार पर ही जानते हैं, कहा करते हैं कि भारतीय क्रिकेट की टीम मे "खुन्नस" या शिकार मारने का तीव्र आक्रोश नही है, इसीलिए वह पाकिस्तान या वेंस्ट इडीज से अक्सर मार खाती है। यदि जरासध की जाघ को चीर उसका खून पीने की प्यास न हो तो न भीम जीते, न जरासध मरे। इसी पिपासा को जाग्रत करने की नसीहत मैदान के खिलाडियो को दी जाती है।

ये तथाकथित विशेषज्ञ स्पर्धा के बुनियादी तत्वो से या तो जानकार नही हैं अथवा ऐसी अनुभवी लेडी डाक्टर की तरह हैं जो अविवाहित होने से स्वय प्रसव वेदना से अनजान है, लेकिन सैकडो महिलाओ के प्रसव करवा चुकी है। प्रसव वेदना कुमारी या वन्ध्या क्या जानें ?

किसी भी स्पर्धा मे अग्रणी रहने की भावना प्रमुख व बलवती बनाने के लिए यह आवश्यक नही है कि आपको किसी विरोधी पक्ष को पछाड कर ही

विजयी बनना है। जिन्दगी मैदान के खेल के मल्लयुद्धो की तरह नही है। सबसे प्रथम व मूलभूत सिद्धान्त यह है कि कोई भी खेल एव जीवन का मुकाबला विशेषकर शरीर की फुर्ती व बल से ही नही जीता जाता, इस प्रसग मे बुद्धि व विवेक का निरन्तर सहारा लिया जाता है। तभी तो शतरज के खिलाडी कई हफ्तो तक एक ही जमाव पडाव मे डूबे रहते हैं। इसके नितान्त विपरीत क्रिकेट या बिलियर्ड मे जहा हम अपने को गन्तव्य विजय की ओर आमुख पाते हैं वहीं बुद्धि को सुला उतावलेपन व व्यग्रता मे बाजी खो देते है। बैट्समैन 90 रनों तक तो अपना स्वभावजन्य सामान्य खेल खेलता रहता है। कमजोर गेंद पर आक्रमण व मजबूत से रक्षा बखूबी करता है। जहा 90 के घर मे पहुचा नही कि वह शतक बनाने, रेकार्ड बुक मे नाम लिखाने व क्ल सुबह के अखबारो मे हेड लाइनो मे डूब जाता है। मनोदशा विचलित व व्यग्र हो जाती है और *अक्सर वह अपनी बेवकूफी से आउट हो जाता है, बिना शतक हासिल किए !*

यदि ऑपरेशन टेबल पर सर्जन डॉक्टर यह सोचता रहे कि मरीज को ठीक करने मे उसे क्या प्रतिष्ठा मिलेगी या अत्यन्त क्लिष्ट कार्य को साधने से उसका नाम मेडिकल जर्नल मे छपेगा, तो इस विचारो की उधेडबुन मे वह रोगी से हाथ धो बैठेगा। विवेक न रख सकने के कारण ही डॉक्टर अपनी पत्नी, बच्चो व प्रिय सम्बन्धियो की शल्य-क्रिया तो क्या, दवा-दारू भी नही कर सकते। मोह की व्यग्रता से वह बुद्धि से हाथ धो बैठता है, इसीलिए इस आत्मविश्वास के अभाव मे वह दूसरे विशेषज्ञ को साधारण समस्याओ के लिए भी बुलाता है।

हम सब मे बुद्धि प्रचुर मात्रा में होना एक बात है और समय पर उसकी उपस्थिति से सहारा लेना दूसरी। ऐन मौके पर हम अपना होश हवास इसीलिए खो बैठते हैं, चाहे बोइग के कैप्टन को एमर्जेंसी लैंडिंग करनी हो अथवा अपने घर मे आग लगने पर जान-माल बचाना हो। सभी एक्सीडेंट इसी वृत्ति के कारण होते हैं। बाद मे बचे रहे तो हम अफसोस करते रहते हैं—"काश, ऐसा किया होता !" यदि बाद मे हमारी ही बुद्धि रास्ता दिखा रही है तो ऐन समय पर भी काम आ सकती थी, पर यह क्षमता हो तब ?

जैसे शरीर के किसी विशेष या सम्पूर्ण भाग को पुष्ट व मजबूत बनाने के *लिए नियमित रूप से व्यायाम करना पडता है, उसी प्रकार बुद्धि व विवेक के* न केवल विकास, पर जरूरत पडने पर उसकी उपस्थिति के लिए निरन्तर अभ्यास करना होगा। सभी लोग अपनी अक्लमन्दी को मानकर चलते हैं, उसकी वर्जिश क्या करनी है ? इसी से बुद्धि न परिपक्व होती है न ही मजबूत। उपयोग व परिश्रम के अभाव में शारीरिक स्वास्थ्य भी हाथ से चला जाता है, वही तर्क बुद्धि पर लागू पडता है।

बुद्धि का व्यायाम सामूहिक तौर पर कम होता है एकान्त में व्यक्तिगत तौर पर अधिक। जब हम अपनी दुकान या धन्धे का मासिक व वार्षिक नफे नुक्सान का नियमित तलपट बनाते ही नही, बाहर के तटस्थ व विशेषज्ञ आडिटर से उस पर मुहर लगवाते हैं, तो आज के व्यस्त जीवन की भागदौड व ऊहापोह से विश्राम ले कुछ समय के लिए जीवन का तलपट क्यों नही तोलते ?

बुद्धि का सस्कार व सगठन रोजमर्रा के दलदल से अलग हो प्रात काल एकान्त मे मनन करने व सत्साहित्य पढन मे होता है। मन का धर्म है चचल व अस्थिर रहना एव कभी भी, किसी भी वस्तु से सदा के लिए सतुष्ट न होना, चाहे धन हो अथवा मोहिनी। इसी तत्वज्ञान के साक्षात्कार से हम जीवन के यथार्थ मूल्यों को समझ सकते हैं।

कार्य की सफलता के लिए एक फार्मूला और है। उस समय न आगे और न पीछे की घटनाओ को सोचना चाहिए, जैसे ऊपर क्रिकेट व डॉक्टर के उदाहरणो से साबित होता है। फल की चाहना भविष्य की थाती है, अतः काम करते समय तो उसकी याद भी नही आनी चाहिए। और सफलता क्या है, यह देखने वाले की नजर मे है। थॉमस एडीसन पच्चीस हजार भिन्न-भिन्न परीक्षण कर चुकने के बाद भी मोटर की बैटरी बनाने मे कामयाब नही हुआ। लोगो ने पूछा कि उनकी मन स्थिति तो बहुत कमजोर व हारी हुई होगी तब एडीसन ने जवाब दिया

"असफलता की मार ? मैं अब पच्चीस हजार तरीके जानता हू जिसके जरिए बैटरी नहीं बनानी चाहिए !"

और हार-जीत का द्वेष व सघर्ष मन मे घुन की तरह लग जाता है, जो हमारी वास्तविक क्षमता के लिए घातक है। आप अपना काम प्रफुल्लता से करते जाइए—बाकी सब कोई और सभालेगा !

9

यत्र नार्यस्तु ढकोसलायन्ते रमन्ते तत्र पुरुषाः

लाला सोहन लाल, जो मेरे अभिन्न मित्र कमल के पिता थे एवं जो अपनी 65-वर्ष की उम्र मे राजनीतिक, धार्मिक व सामाजिक जगत मे अत्यन्त यशस्वी जीवन बिता चुके थे, का एकाएक कार्डिएक अरेस्ट से देहान्त हो गया था। वैसे तो शवयात्रा मे बम्बई और बाहर से आए रिश्तेदारों व सम्बन्धियों की हजारो की भीड थी क्योंकि उद्योग-व्यापार जगत मे लालाजी का बोलबाला था, पर कमल के साथ चलने वाले दो-चार मित्रो में मैं भी था, क्योंकि यह उसके 45 वर्षीय जीवन मे पहला गहरा धक्का था। सोनापुर (बम्बई की 5/6 सीट की श्मशान भूमि) मे हम दोनो 10-12 व्यक्तियो के साथ रुक गये थे क्योंकि कपाल क्रिया हो जाने के बावजूद शव के धड का ऊपरी भाग जलने मे भी काफी देर थी। रिवाज के मुताबिक कमल व परिवार के अन्य सदस्यो ने यात्रा मे चले आए हुए सभी लोगो को हाथ जोडते हुए इशारे मे अपने-अपने घर जाने हेतु प्रार्थना व आने की कृतज्ञता ज्ञापन की। धीरे आहिस्ते सभी लोग चले गए थे। लकडी गीली होने के कारण हम लोग रुके हुए थे, क्योंकि पडितजी ने कह दिया था कि आजकल कई बडे घर के लोग चिता प्रज्वलित होते ही चल देते हैं, फिर कोई नही देखना कि शव पूरा जला है कि नही।

मरीन ड्राइव पर समुद्र किनारे जाने एव स्नान के लिए दो घाट बने हैं जिन्हें हिन्दू व पारसी अत्यन्त पवित्र मानते है। हिन्दू तो कभी पवित्रता व स्वच्छता का सम्बन्ध समझता नही, हमारे मंदिरो-मठो के इर्द-गिर्द जाते ही घृणा व परेशानी होने लगती है, हा बड़े घाट की सजावट पारसियो ने अपने हाथ मे ले रखी है। छोटे घाट पर रोज सुबह घूमने वाले देखते हैं कि सोनापुर से प्रात 7 बजे 10-12 डोम अपने सिर पर भस्म व हड्डियो के टोकरे लाते है। हिन्दू श्मशान समिति तो यह समझती है कि दरिया मे राख आदि प्रवाहित

करने का ठेका देते ही उनका कर्त्तव्य पूरा हो जाता है, उन्हें इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं है कि चिता के अवशेष को ये लोग पहले दरिया में प्रवाहित करने से पूर्व किनारे पर डाल देते हैं, फिर उन्ही में 2-4 आदमी उस ढेरी में रुपये-पैसों, सोने आदि को चुन-चुन कर निकाल लेते हैं, बाकी ढेर वहीं छोड दिया जाता है।

खैर, इसकी जानकारी होने के कारण मैं दाहक्रिया में शेष तक रहता हूं। घर वापस पहुचने तक हालत खराब हो जाती है क्योंकि हिन्दुओं के मुख्य संस्कार जन्म, विवाह व मृत्यु (जनम, परण, मरण) में पूरे तीन घण्टे लगते हैं। उस दौरान न पानी पिया जा सकता है और चिता के पास रहने से गर्मी, धुआ, गन्ध आदि बुरा हाल कर देते हैं। घर पहुचा नहीं कि हमारी बुआजी दरवाजे पर ही खडी थीं, और कुछ पूछने या जल देने के बजाय सीधा बाथरूम भेजा जाता है ताकि भूल से भी मैं घर की किसी वस्तु को छू न लूं। नहा-धोकर ही पानी का घूंट या चाय का कप दिया जाता है।

पुराणों की एक कथा के अनुसार देवराज इन्द्र ने ब्रह्महत्या की और उसके निवारणार्थ कलयुग में चार स्थानों पर उसका निवास बाटा गया। एक है स्त्रियों के मासिक धर्म के दौरान। अत. भारत में आज भी करोडों महिलाएं रजस्वला होने के तीन-चार दिनों में "अलग" हो जाती हैं। वे न तो किसी वस्तु को छू सकती है और न ही पुरानी विचारधारा के अनुरूप अपना चेहरा-वदन किसी को दिखा सकती है। उस जमाने में रक्तस्राव को चिथडों से ढका-पोंछा जाता रहा होगा, उसे फेंकने की बडी समस्या थी, आज भी उस प्रथा को घर-घर में प्रचलित रखने के लिये औरतें स्वयं जिम्मेदार हैं।

महिलाओं के लिये जागरूकता पुरुषों से अधिक क्यों श्रेय व आवश्यक है? हनुमानजी की तरह उन्होंने अब तक अपनी निर्माण शक्ति व ऊर्जा को पहचाना ही नहीं, प्रयोग करें तो कैसे? पुरुष का स्वभाव ही है कि महिला को भोग्या बना जरी-रेशम की साडी में घर के पिजरे में रखे। वह बाहर अध्यापिका या रिसर्च साइन्टिस्ट के रूप में काम भी करने जाए, तो पति की यही सर्वाधिक अपेक्षा होगी कि उसके घर से जाने के बाद निकले और आने के पूर्व मंगल स्वागत आरती लिए दरवाजे पर खडी मिले। मानव जगत के अर्द्धांश को इस प्रकार गुलामी व बंधन में रखा जाता है। अभिप्राय कदापि यह नहीं है कि वह सजी-धजी तितली की तरह एक फूल से दूसरे पर नाचती-फुदकती रहे। लेकिन वह यदि अपने चरित्र, आत्मबल, सहनशीलता व बौद्धिक वैभव का सही प्रयोग अपने घर-परिवार के उत्कर्ष के लिए करे, तो एक-एक घर में बसी रावण की लंका अपने आप अग्नि में प्रज्वलित हो नष्ट हो जाएगी।

मेरे एक अन्य अंतरंग मित्र की पत्नी मे अक्षय मेधा है । अर्थशास्त्र, बैंकिंग आदि को इतना सूक्ष्मता से जानती है कि आज वह अपनी सरकारी नौकरी से पति के कारण इस्तीफा न दे देती तो दो-चार वर्षों मे वित्त मंत्रालय की सचिव अवश्य बन जाती । पतिदेव को यह कैसे गवारा हो कि सारे वित्तीय जगत मे पत्नी का यशोगान हो और वह उसके पति के रूप में जाना जाय। यही नही, मित्र पिछले 15-वर्षों से एक अन्य विवाहिता महिला से सम्बन्ध रखता है क्योंकि पुरुष को पार्टियों मे सजी धजी पत्नी एव, शारीरिक सुख के लिए दूसरी, बच्चों की मां व घर की देखभाल के लिए नौकरी की आवश्यकता है । पत्नी कोई 48-वर्ष की होगी, पिछले 15-वर्षों मे सेक्स नाम की कोई वस्तु उसके जीवन मे नही है, ऊपर से पति देव की तोहमत व ताना अलग से कि उसी ने पति को "फ्रिजिड" बना दिया है । पति को उसके यौन-व्यापार मे कोई रुचि नही है और पत्नी के "एकांगी व ठंडे" व्यवहार के कारण ही वह रखैल रखता है।

"अब सबको मालूम तो पड ही गया है, और फिर मैं 99-प्रतिशत इधर-उधर डोलने वाले पाखंडी मर्दों से अच्छा हूं"—इस विचारधारा से पति के मन मे पत्नी अथवा बच्चों के लिए कोई अपनत्व की भावना नही रही है। वे सजावट व गृहस्थी के नाम बनाए रखने हेतु खिलौने बने हैं।

मजे की बात यह है कि बिचारी दिन भर सामाजिक सेवा करने के बाद थकी मांदी होती है, तो पति चाहे रात को 11-बजे आए या 12-बजे, उसे पति का हाथ-मुंह धुलाना होगा, दूध का गिलास लाना होगा और सोने से पूर्व पांव दबाने होंगे । धन्य है महिला । मुझे तो बड़ा आश्चर्य होता है जब मित्र की पत्नी रोती हुई कहती है कि उसका जीवन तो निरर्थक व बेकार है, क्योंकि सारे जीवन भर वह अपने पति को प्रसन्न नही कर सकी । लानत है ऐसी मनोवृत्ति पर।

घर-घर मे महिलाएं ही अन्ध भक्ति व श्रद्धा को गोद में बैठाकर जीवन भर कोल्हू के बैल की तरह आंख पर ब्लिन्कर्स लगाए वही की वही घूमा करती है । इन श्रद्धालु औरतो के "भक्तिभाव" के कारण हिन्दू "साधु" समाज के लाखो व्यक्ति गेरुवा वस्त्र पहने अथवा लम्बे-चौड़े तिलक लगाए बिना एक कौड़ी का काम किए जोंक की तरह समाज से पोषण लेते रहते हैं । ईसाई धर्म के पादरी अथवा रामकृष्ण मिशन के सन्यासी गरीबो की सेवा को ही अपना धर्म समझते हैं । उत्तर भारत के ये तथाकथित "साधु संत" अब पहले वृन्दावन मे एव तत्पश्चात् हरिद्वार मे अप्रैल-मई तक अपनी धूनी रमाएंगे । एक-एक मठ व झंडे के नीचे दर्जनो पहलवान गुरुजी की "सेवा" में भक्तजनो को बटोर कर

लाएगे और करोडो रुपये भारत की गरीब जनता का इनके हाथो मदिरो की सेवा हेतु एकत्रित होगे।

महिलाओ को सोचना होगा कि यदि इन सब पाखडो से दूर रहकर सात्विक-वृत्ति मे जीवन ढालना होगा तो इन साम्प्रदायिक मठाधीशो व उनके दलालो के जाल मे न फस भगवद्गीता मे स्वय भगवान के श्रीमुख से जो जीवन के लिए मार्ग दिखाया गया है, उसे अपनाए। गीता के सरल भावार्थ को आत्मसात् करने का प्रयत्न करें तो भगवान ने वादा किया है मैं उनके योगक्षेम को वहन करूगा। साधु-सन्त-महन्त आपको डराते धमकाते हैं, कभी किए हुए 'पापो की निवृत्ति के लिए, तो कभी आपको पितरो के कल्याण हेतु, कभी "शरणागति" का मार्ग बताते हैं तो कभी बालकृष्ण हेतु छप्पन भोग का। क्या ये लोग भगवान से अधिक बुद्धिमान हैं ?

तोते की तरह हनुमान चालीसा, शिवमहिमा, विष्णुसहस्रनाम, रामायण का पाठ छोडिए, इन पवित्र गीतो, श्लोको के पीछे निहित दिव्य विभूति को अपनाइए। तभी भारत का कल्याण है। नहीं तो धर्म के नाम पर महिलाओं का धन लूटा जाता रहेगा। हम स्वय मूढ व गोबर के कीडे की तरह रहें तो उनका क्या दोष ?

10

आसक्ति का दलदल

बम्बई मे ही नहीं वरन् सारे देश मे लाला भोलानाथ एक बडे उद्योगपति, दानी एव कर्मयोगी के नाम से विख्यात थे। लालाजी द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् देश मे उद्योग, कल-कारखाने बैठाने लगे थे एव उनके परिवार को इज्जत-आदर से देखा जाता था। उन्होने अपने नाम पर कपनियो के शेयर, जेवर-जायदाद कुछ भी न रखा जिससे कि कभी इन्कम-टैक्स या अन्य अधिकारियो के दायरे मे आना पडता समूची आर्थिक शक्ति परिवार एव दान हेतु बने ट्रस्टो मे केन्द्रित थी।

लालाजी की पत्नी का स्वर्गवास बहुत पहले हो गया था, उन दिनो दूसरा विवाह आम तौर पर पुरुषो का हो जाता था, पर उन्होने अपना सारा ध्यान व समय उद्योग व सार्वजनिक सस्थाओ को अर्पित कर दिया एव वे अपने समाज मे भीष्मपितामह की तरह पूजे जाने लगे।

इतने उदात्त चरित्रवाले लालाजी का मन अपने छोटे पुत्र मे बुरी तरह अटका रहता था। ओमप्रकाश के जन्म के समय लालाजी की पत्नी ने मरते समय उसका हाथ पति को देकर उनसे वादा कराया था कि वे इस अतिम सतान की देख-भाल माता-पिता के समुक्त स्थान पर करेंगे। उसी भावना व महत्त्व से प्रेरित हो ओमप्रकाश के खान-पान, कपडे, पुस्तकें, स्कूल-कालेज के जीवन की देख-रेख लालाजी एकजुट हो कर करते। बाकी तीन लडको व भरे-पूरे परिवार के लिए भोलानाथ तटस्थ व निश्चिन्त रहते। जब तक शाम को ओम स्कूल-कालेज से एव अब दफ्तर मे घर सही सलामत नही आ जाता, लालाजी अपने 21-वें माले के विशाल फ्लैट के बरामदे मे लगातार चहल कदमी करते रहते। उसके घर मे प्रवेश करते ही भोलानाथ हाथ-मुह धुला, दूध का गिलास अपने सामने पिलाते, फिर बैठक मे उससे सारे दिन की गाथा सुनते।

ओम इस छत्र-छाया के सकरे अहाते म इतना ऊब गया था कि उसे लालाजी का लाड-प्यार बिल्कुल नही सुहाता। उनके विशाल व्यक्तित्व एव फैली गरिमा के कारण वह उनमे कुछ बोल नही पाता, पर उसकी खीज दिन भर इधर-उधर के प्रकरणो मे निकलती। उसके दिमाग मे परोक्ष रूप से हरदम इस जेल को तोडकर स्वच्छद विहार की कामना रहती, किसी से कहते उससे बनता नहीं था, और कहता तो भी सुनने वाला कौन था ?

एक दिन शाम को इसी झझावात मे रोज की तरह दफ्तर मे निकल ओम अपने मित्रो के साथ गम गलत करने नटराज होटल चला गया। लालाजी को नियमित फोन से इत्तिला हो गई थी कि ओम बाबू दफ्तर से घर के लिए रवाना हो गए हैं, पर पौन एक घटे बाद भी घर नही पहुचने पर उन्होंने व्यग्रता से सभी निश्चित ठौर-ठिकानो पर फोन करना शुरू किए, पर कही भी ओम का पता न था। वह अपने मित्रो के साथ नटराज के बार मे उन्मुक्त अवस्था म जिन पी रहा था। 3-4 पेग एव डेढ घटे बाद सब लोग तितर-बितर हुए। ओम को नई खुमारी तो थी ही पर दिमाग की असली परेशानी अभी भी कुरेद रही थी। वह तेजी से जुहू की तरफ जा रहा था कि नशे मे उसकी गाडी का एक्सीडेंट वर्ली पर एक बस से हो गया। उसकी गाडी चकनाचूर हो गई। ओम आज महीने भर के बीच कैण्डी अस्पताल मे जीवन व मौत के द्वन्द्व मे तो निकल पाया पर उसकी स्मरण-शक्ति अभी भी नदारद थी और डाक्टरों के पास इस प्रश्न का उत्तर नहीं था कि वह कभी लौट सकेगी भी या नही। वे लोग लालाजी को केवल समय का आश्वासन दे पाते कि टाइम लगेगा। लालाजी की दुनिया अब अधेरी है, न वे प्रसन्न रहते है, न स्वस्थ। पता नहीं भगवान ने किस पाप का दड दिया उन्हें ?

कलकत्ते के बालीगज क्षेत्र मे प्रभा एव प्रदीप का विवाह तीन वर्षो पूर्व हुआ था। प्रदीप अपने मा-बाप का इकलौता लाडला था, अच्छा-खासा समृद्ध घर-बगला गाडी-घोडे, माली-दरवान, आया-ओपरेटर आदि घर मे छाए हुए थे। पाच वर्ष की उम्र से ही प्रदीप की हर माग पूरी की जाती। वह चोकलेट, मीठी गोली, चूइ ग गम, आलू-चिप्स, कोका कोला आदि को ही अपनी खुराक बना चुका था। पढाई के लिए दो ट्यूटर घर पर आते। एक गिलास दूध पिलाने को भी मम्मी मोहताज थी, दिन भर प्रदीप मटरगश्ती करता, सुबह शाम दोस्तो की मडली उसके बगले पर आ जाती, धूम-धमाके व मौज मे जिन्दगी बसर हो रही थी। किसी तरह स्कूल-कालेज की पढाई समाप्त की गई। स्कूल मे तो पिता बोर्ड ऑफ मैनेजमेंट के अध्यक्ष थे, सभी टीचर प्रदीप को ऊचे अको म पास करते, 10-वी व 12 वी के बोर्ड के पेपर पहले ही प्रदीप को 5-7

10

आसक्ति का दलदल

बम्बई मे ही नही वरन् सारे देश मे लाला भोलानाथ एक बडे उद्योगपति, दानी एव कर्मयोगी के नाम से विख्यात थे। लालाजी द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् देश मे उद्योग, कल-कारखाने बैठाने लगे थे एव उनके परिवार को इज्जत-आदर से देखा जाता था। उन्होने अपने नाम पर कपनियो के शेयर, जेवर-जायदाद कुछ भी न रखा जिससे कि कभी इन्कम-टैक्स या अन्य अधिकारियो के दायरे मे आना पडता समूची आर्थिक शक्ति परिवार एव दान हेतु बने ट्रस्टो मे केन्द्रित थी।

लालाजी की पत्नी का स्वर्गवास बहुत पहले हो गया था, उन दिनो दूसरा विवाह आम तौर पर पुरुषो का हो जाता था, पर उन्होने अपना सारा ध्यान व समय उद्योग व सार्वजनिक सस्थाओ को अर्पित कर दिया एव वे अपने समाज मे भीष्मपितामह की तरह पूजे जाने लगे।

इतन उदात्त चरित्रवाले लालाजी का मन अपने छोटे पुत्र मे बुरी तरह अटका रहता था। ओमप्रकाश के जन्म के समय लालाजी की पत्नी न मरते समय उनका हाथ पति को देकर उनसे वादा कराया था कि वे इस अतिम सतान की देख भाल माता-पिता के सयुक्त स्थान पर करेंगे। उसी भावना व महत्व से प्रेरित हो ओमप्रकाश के खान-पान, कपडे, पुस्तकें, स्कूल-कालेज के जीवन की देख-रेख लालाजी एकजुट हो कर करते। बाकी तीन लडको व भरे-पूरे परिवार के लिए भोलानाथ तटस्थ व निश्चिन्त रहते। जब तक शाम को ओम स्कूल-कालेज से एव अब दफ्तर से घर सही सलामत नही आ जाता, लालाजी अपने 21-वें माले के विशाल फ्लैट के बरामदे मे लगातार चहल कदमी करते रहते। उसके घर मे प्रवेश करते ही भोलानाथ हाथ-मुह धुला, दूध का गिलास अपने सामने पिलाते, फिर बैठक मे उससे सारे दिन की गाथा सुनते।

ओम इस छत्र-छाया के सकरे अहाते मे इतना ऊब गया था कि उसे लालाजी का लाड-प्यार बिल्कुल नही सुहाता। उनके विशाल व्यक्तित्व एव फैली गरिमा के कारण वह उनसे कुछ बोल नही पाता, पर उसकी खीज दिन भर इधर-उधर के प्रकरणों मे निकलती। उसके दिमाग मे परोक्ष रूप से हरदम इस जेल को तोडकर स्वच्छद विहार की कामना रहती, किसी से कहते उससे बनता नही था, और कहता तो भी सुनने वाला कौन था ?

एक दिन शाम को इसी झझावात मे रोज की तरह दफ्तर से निकल ओम अपने मित्रो के साथ गम गलत करने नटराज होटल चला गया। लालाजी को नियमित फोन से इत्तिला हो गई थी कि ओमबाबू दफ्तर से घर के लिए रवाना हो गए हैं, पर पौन एक घटे बाद भी घर नहीं पहुचने पर उन्होने व्यग्रता से सभी निश्चित ठौर-ठिकानों पर फोन करना शुरू किए, पर कही भी ओम का पता न था। वह अपने मित्रो के साथ नटराज के बार मे उन्मुक्त अवस्था मे जिन पी रहा था। 3-4 पेग एव डेढ घटे बाद सब लोग तितर-बितर हुए। ओम की नई खुमारी तो थी ही पर दिमाग की असली परेशानी अभी भी कुरेद रही थी। वह तेजी से जूहू की तरफ जा रहा था कि नशे मे उसकी गाडी का एक्सीडेंट वर्ली पर एक बस से हो गया। उसकी गाडी चकनाचूर हो गई। ओम आज महीने भर से ब्रीच कैण्डी अस्पताल मे जीवन व मौत के द्वन्द्व से तो निकल पाया पर उसकी स्मरण-शक्ति अभी भी नदारद थी और डाक्टरों के पास इस प्रश्न का उत्तर नही था कि वह कभी लौट सकेगी भी या नही। वे लोग लालाजी को केवल समय का आश्वासन दे पाते कि टाइम लगेगा। लालाजी की दुनिया अब अधेरी है, न वे प्रसन्न रहते है, न स्वस्थ। पता नही भगवान ने किस पाप का दड दिया उन्हें ?

कलकत्ते के बालीगज क्षेत्र मे प्रभा एव प्रदीप का विवाह तीन वर्ष पूर्व हुआ था। प्रदीप अपने मा-बाप का इकलौता लाडला था, अच्छा-खासा समृद्ध घर-बगला गाडी-घोडे, माली-दरवान, आया-ऑपरेटर आदि घर मे छाए हुए थे। पाच वर्ष की उम्र से ही प्रदीप की हर माग पूरी की जाती। वह चोकलेट, मीठी गोली चुइ ग गम, आलू-चिप्स, कोका कोला आदि को ही अपनी खुराक बना चुका था। पढाई के लिए दो ट्यूटर घर पर आते। एक गिलास दूध पिलाने को भी मम्मी मोहताज थी, दिन भर प्रदीप मटरगश्ती करता, सुबह शाम दोस्तो की महफिल उसके बगले पर आ जाती धूम-धमाके व मौज मे जिन्दगी बसर हो रही थी। किसी तरह स्कूल-कालेज की पढाई समाप्त की गई। स्कूल मे तो पिता बोर्ड ऑफ मैनेजमेंट के अध्यक्ष थे, सभी टीचर प्रदीप को ऊचे अकों से पास करते, 10-वी व 12 वी के बोर्ड के पेपर पहले ही प्रदीप को 5-7

हजार म मिल गए थ, अत रट-रटाकर नैया पार की। यूनिवर्सिटी म भी परीक्षको की मदद मिल गई अत हजरत ग्रेजुएट हो गए।

प्रदीप देखने सुनने म सावला, साधारण व्यक्तित्व का युवक होते हुए भी माता-पिता ने खूब सुन्दर गोरी चिट्टी, लबी, तीखी नाक-नक्शे की प्रभा से उसका विवाह किया। प्रभा के पिता सरकारी अफसर थे, फिर भी ससुराल आते ही उसे नितान्त नए ढग से जीवन बिताने की शिक्षा मिली। जहा पीहर म महीने में एकाध ट्रन्क काल होना था, वहा यहां दिन मे दस। रसोई-पानी व व्यवस्था मुनीमो व नौकरो पर थी, महीने का खर्च 10-15 हजार बात की बात मे ही हो जाता न कोई हिसाब देखता न ही गिनती। प्रदीप व प्रभा एक दूसरे से नितान्त आसक्त थे। थोडे ही दिनो मे परस्पर मोह इतना बढ गया कि प्रदीप दफ्तर जाता, तो वह दिन मे 3-4बार फोन से बात करती और वह कभी-कभार पीहर जाती तो प्रदीप का जीना मुहाल हो जाता।

प्रदीप जब भी कलकत्ते से कार्यवश बम्बई, दिल्ली या हैदराबाद जाता, तो होटल मे व्यवस्थित होकर पहला काम उसे प्रभा को फोन करने का होता चाहे उस प्रक्रिया मे कितना ही समय क्यो न लग जाय। जब तक फोन से अपनी कुशल की बात वह कह न देता प्रभा व प्रदीप की मा भी बेहाल व बेचैन रहते।

तीन साल बाद प्रभा को एक बार बाथरूम मे अपने बाए वक्ष मे एक गोलीनुमा गाठ का आभास हुआ। हाथो-हाथ डाक्टरो ने टेस्ट वगैरह कर उसके कैंसर पाया, सारे वक्ष को सर्जरी द्वारा काटा गया। प्रभा अब पाच वर्षों के निरन्तर इलाज-दवा के बाद ठीक है, हालाकि कीमोथेरेपी व रेडिएशन के कारण वह नितान्त बदसूरत हो गई है।

प्रकृति का अकाट्य नियम है कि जिस वस्तु या व्यक्ति को हम अपनी एकाकी आसक्ति का केन्द्र बना लेते हैं, वह वस्तु या व्यक्ति हमसे या तो दूर हो जाता है, नही तो कोई विषम परिस्थिति बन जाती है। तभी तो कहा गया है कि धन दौलत या लक्ष्मी किसी भी परिवार म साधारणतया 2-3 पीढियो के बाद नही रहती। यदि एक काच के लैंस के जरिए फैली हुई सूर्य की किरणें किसी भी कागज या कपडे पर केन्द्रित कर दी जाए, तो वह जल उठेगा। हमारी समस्त भावनाए पत्नी, पुत्र, पैसे, नाम शोहरत आदि के पीछे हो, तो देर-सबेर हम उससे हाथ धो बैठेंगे।

मद्रास के एक अत्यन्त प्रख्यात टेनिस खेलने वाले परिवार मे माता अपने प्रतिभाशाली पुत्र के पीछे-पीछे छाया की तरह लगी रहती। चन्द्रन् जहा कोर्ट पर प्रेक्टिस के लिए जाता, अम्मा हार्लिक्स का दूध थरमस मे लिए खडी रहती।

वह घर आता, तो उसके खाने पीने-आराम के लिए तरसती रहती। एक दिन चन्द्रन् गुस्से मे टेनिस का रैकट फेंककर घर से चला गया। उसे अम्मा से इतनी घृणा हो गई कि पूरे दस दिन वह इधर से उधर चक्कर काटता रहा। तब अखबारो मे सूचना निकली "बेटा, तुम जहाँ हो चले आओ, फलाने की तबियत बहुत खराब है। अब तुम्हें कोई कुछ नही कहेगा।"

हमे समझना होगा कि अतिशय आसक्ति एक जहर है जो कभी-भी किसी को आनन्द नही देगी। प्रेम एक पवित्र भावना है, आसक्ति कुछ और। दोनो मे फर्क समझें तो ?

हम मे से प्रत्येक व्यक्ति मन मे समझे बैठा है कि जीवन की कला व विज्ञान को क्या सीखना है, वह तो हम मानव होने के नाते जानते ही हैं। तभी तो इस पक्ष को आज न घर मे और न ही स्कूल-कालेज अथवा समाज मे सिखाया पढ़ाया जाता है। स्वय हम यह भी मानते हैं कि जीवन दर्शन को समझने के लिए रिटायर होने के बाद बहुत समय है, तब आराम से हरिद्वार जाकर देखेंगे-सुनेंगे। आप एक पेशेवर ड्राइवर नही है, सो कार के इन्जिन के बुनियादी कल-पुर्जों को क्या देखना-समझना है। हा, अपने परिवार समेत भरी दोपहरी मे बीच हाइवे पर निर्जन वातावरण मे पुली के बेल्ट टूट जाने पर असहाय हो बगले झाकना और कोई आकर ठीक करे, उसकी राह देखना आपको पसन्द है तो बेशक आप इस रास्ते चलिए। वर्ना स्वावलम्बी और जीवन के हर राग-रग के बादशाह होकर जीना है, तो भावनाओ को शिक्षित व सस्कृत करिए, ताकि ये आप पर हावी न हो जाए।

11

हाथ में कंगन भी, कलम भी

अनादि काल से इस देश मे नारियो को पिता एव पति के घरो मे विशेष सम्मान दिया गया है। कालक्रम से कुछ वातावरण ऐसा बना कि भारत पर हुए एक के बाद एक आक्रमणो की शृ खला मे नारिया न केवल पर्दे के पीछे कर दी गई, वरन् उनकी घर-घर मे परिस्थिति भी दूसरे दर्जे की हो गई। अब तो हालात इतने खराब है कि कन्या जन्म का सुनते ही दादा-दादी, नाना-नानी और रिश्तेदार "लक्ष्मी आ गई" कह कर सिर झुका लेते हैं। इस बेहूदे वातावरण को बदलने एव अपने उचित हक को हासिल करने के लिए महिलाओ को स्वय जिम्मेदारी लेकर पहल करनी होगी। यदि वे सोचती हो कि पुरुष उनके मार्ग मे लाल मखमली कालीन बिछाकर उन पर पुष्प वर्षा करेगा, तो यह उनका भ्रम है।

कुछ दिन हुए मेरे यहा एक रिश्तेदार की सगाई हुई। बहू जयपुर की है, सो घर मे स्वभावतया चाव लगा हुआ था। तीज आई तो बरी" की तैयारी होने लगी। मैंने पाया कि सब लोग शौक से इम्पोर्टेड सेन्ट, परफ्यूम, शिफौन की साडिया आदि "पैक" करने मे लगे हुए थे। पिछले 10 वर्षो मे पैकिंग पर लाखो रुपए खर्च किए जाते हैं, फिर विवाह के मडपो का तो पूछना ही क्या ?

विचार आया कि नई बहू को केवल साज शृ गार की सामग्री भेजकर उसे गुडिया बनने की सीख क्यो दी जा रही है। यदि उसे पाक-कला, गृह-सज्जा, योग-प्राणायाम, भारतीय सस्कृति मे दाम्पत्य आदर्श, स्वास्थ्य, आत्म-सुरक्षा हिन्दी-सस्कृत-अग्रेजी साहित्य आदि के प्रकाशन, भारतीय सगीत के कैसेट आदि भेजे जाते, तो वह अवश्य सोचती कि किसी भी महिला के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए ये अत्यन्त आवश्यक हैं। फिर हमारे यहा कोई बी० ए०/बी० काम० वधू आए तो व्यापार की दृष्टि से वह कम्प्यूटर की शिक्षा

एव एक यूरोपी भाषा का अभ्यास करे, तो अत्यन्त उपयोगी हो सकती है। उसे केवल घर पर तो बैठना है नही।

मैंने पत्नी से उक्त सदर्भ म बात छेड़ी तो बोली "आप दफ्तर चलाइए, मैं घर। क्या मैं आपके कारबार मे हस्तक्षेप करती ह, आपके मार्ग पर कोई चले तो मेम बन जाए।" बोलकर धडल्ले मे वापस काम मे लग गई। मैंने सोचा, कौन कहता है नारी अबला है।

खैर, यह तो बडे घरो की चुहल है। सगाई से हनीमून तक वर-वधू एक अपनी ही दुनिया मे सैर करते हैं और बाद म जब धरती पर पाव टिकते है, तो सहसा उन्हें एक झटका-सा लगता है। जहा तक मध्यम वर्ग के परिवारो का सवाल है (गरीबो के कोई भी समस्या नही है इस क्षेत्र मे), वहा भी अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार यह नाटक दोहराया जाता है। बाद मे तो दुनिया के चूल्हे चक्की से जूझना ही पडता है।

यूरोप व अमेरिका मे आज भी जो माता पिता अपनी लडकियो को फिनिशिग स्कूल मे भेज सकने की सामर्थ्य रखते हैं, भेजते है। इन स्कूलो मे बोल-चाल के तौर-तरीके, भाषाओ का ज्ञान, स्वास्थ्य, खान-पान सम्बन्धी विषय, बच्चो के लालन पालन व सैक्स जीवन की आवश्यक हिदायतें, आत्मरक्षा, नारियो सम्बन्धी कायदे-कानून व उनके अधिकार, सिलाई, पाक-विज्ञान आदि जीवनोपयोगी विषयो पर पाल दो साल शिक्षा दी जाती है। विशेष रुचियो वाली युवतियो के लिए सगीत व पेंटिंग का प्रशिक्षण व अभ्यास के साधन हैं। बहरहाल उन सब विषयो, जिससे एक महिला अपने व्यक्तित्व को निखार कर वैवाहिक जीवन के योग्य हो जाय की शिक्षा दी जाती है।

कोई आवश्यक नही कि हमारे फिनिशिग स्कूल उनकी तरह खर्चीले व केवल रईसो के लिए हो। हर वर्तमान महिला विद्यालय व कॉलेज मे शाम को एव शनि-रवि को इन विषयो पर समुचित प्रशिक्षण दिया जा सकता है। दुर्भाग्य स देश मे इस दिशा मे एक भी सस्था इस विषय की नही है।

बात निरीहता व बेसहारेपन की है। इस प्रवृत्ति को बढावा देने मे स्वय महिलाओ का भी हाथ है। इन दिनो सुप्रीम कोर्ट से एक ऐतिहासिक फैसला निकला है जिससे औरतो को स्वावलम्बी बनने मे और भी मदद मिलेगी। अक्सर देखा जाता है कि बहू आने के कुछ समय बाद उसके दहेज और अन्य लाई हुई सामग्री पर टीका टिप्पणी होने लगती है, पति मा से दबता ही है अत उसे सहारा देने की हिम्मत नही होती। बात कभी-कभी घर से निकलने की हो जाती है और विधवा होने पर तो और भी करारी मार लगती है। ऐसी ही एक महिला जो अपने पति से अलग हो गई थी, पर उसे अपने साथ

लाई हुई सामग्री, रुपए-पैसे, गहने-कपडे आदि से हाथ धोना पडा। हार कर वह कोर्ट मे गई, जहा दुर्भाग्य से पजाब-हरियाणा हाईकोर्ट का फैसला उसके खिलाफ गया। अक्सर लोग यही रुक जाते हैं। एक तो हौसलापस्त, दूसरे पैसे नही पास मे। माता-पिता या पीहर वालों का सहारा भी बहुधा नही मिलता, समाज की तो बात ही क्या ?

खैर, सुप्रीम कोर्ट ने फैसला दिया कि विवाह के समय लाई गई तमाम सम्पत्ति चाहे गहने-कपडे हो अथवा पैसे, ये सारे उसके स्वय का "स्त्री धन" है और उस पर न पति का हक है, न सास का, न ही बच्चो का। बेशक सुरक्षा के लिए वह घर की सामूहिक तिजोरी मे रखी जाय अथवा बैंक के लॉकर मे। उस सम्पत्ति को स्त्री चाहे जैसा काम मे ले सकती है।

आशय यह नही है कि हर महिला को साडी का पल्ला कमर म कस, बेलन लेकर पति या सास से जूझना है। बात केवल स्वावलम्बन की है। यदि किसी कारण उसे पति का घर छोडना पडे तो वह अपनी पूरी जायदाद लेकर निकल सकती है। वहा रहते हुए उसे इस राशि को कहा लगाना है, उस पर पूरा हक है, एव पति को इस मामले मे उसकी सलाह लेनी होगी।

यह आत्मनिर्भरता की भावना बचपन मे ही लडकियो और बाद म बहुओ को दी जानी चाहिए। लाड-प्यार के अलावा जरूरत पडने पर वह अपने पावो पर खडी हो सके उसी मे नारी का कल्याण है।

12

हम कितने कृतघ्न हैं ?

मरीन ड्राइव पर रोज सुबह-शाम लाखो लोग घूमते है। लोगो की अलग-अलग छोटी-बडी टुकडिया बनी हुई हैं, कोई गोपी क्लब की सदस्याए हैं तो कोई हरीओम ग्रुप की, कोई गुजराती समूह है तो कोई पजाबी-मारवाडी। सुबह-सुबह ऐसी टुकडियो के साथ छोटी-बडी मुलाकात हो जाती है। मारवाडी अडडा रुपये-पैसो, शेयर-बाजार, चादी-सोने के भाव की बडे जोर-शोर से चर्चा करता है। पजाबी कभी कपिल मेहरा पर हुई ज्यादती या पजाब वे हिन्दू सिख तनाव की, गुजरातियो मे पाच-सात दिनो मे ओशियाना के निकट गुजरते मोरारजी भाई के स्वास्थ्य व सिद्धान्तो पर बातचीत—जितने अड्डे उतने ही प्रकार की पराई चर्चा—हम सब रोटी अपनी खाते हैं और चर्चा पराई करते हैं—इसमे परेशानी की क्या बात है ?

रोज घूमने वालो के चेहरे तो परिचित होते हैं, देखते ही उनकी चाल-ढाल का पूरा नक्शा सामने आ जाता है—हमारी अपनी चौकडी मे मेरे अलावा एक पर्वतारोही नवयुवक (जो नेरल से माथेरान की 15-कि० मी० की पर्वतीय चढाई 160 बार अब तक कर चुका है), एक गुजराती दपती जिनका नाम झवेरी है और 82 वर्षीय पश्चिमी भारत के अग्रणी उद्योगपति श्री गरवारे हैं। गरवारे साहब पिछले पाच वर्षों पूर्व तक जिस फुर्ती व मुस्तैदी से घूमते थे, मेरे जैसा नवयुवक (उनके मुकाबले मे) उनके साथ कदम नही मिला सकता था। 5-कि० मी० की उनकी अबाधगति की चाल के साथ होने की कोशिश मे मेरा दम फूल जाता था, अब कुछ अवस्था रग दिखाने लगी है, फिर भी उनके रोजना-मचे मे कही कोई अन्तर नही, गतिरोध नही।

भ्रमणशील परिवार व अन्य रोज मिलने वाले सैलानी कभी दो-चार दिन नही दीखें तो आते ही रपट ली जाती है। "कहा चले गए थे ?" "छुट्टी भी नही ली" "तबियत तो ठीक है न ?" आदि प्रश्नो की कतार बध जाती है। बिना केजुवल लीव लिए यहा अनुपस्थित रहना जुर्म माना जाता है और दड स्वरूप उसे सारी मडली को चाय पिलानी पडती है।

झवेरी साहब की आखें पहले से ही कमजोर थी, दीखता कम था, क्योकि एक आख की रेटिना बेकार हो चुकी थी, अब दूसरी पर असर आ गया था। बम्बई के तीन आखो के सर्जनो ने उन्हें जवाब दे दिया था कि अब आपरेशन कराने से भी कोई लाभ नही है, उल्टे डर है कि जो कुछ दिखता है, वह भी शायद बद हो जाय। अन्तत एक सुप्रसिद्ध सर्जन डा० अशोक श्राफ ने हिम्मत कर मुस्तैदी से शल्य किया की एव 20-25 दिनो बाद वे घर से काला चश्मा लगाकर वापस पत्नी के साथ घूमने आने लगे। अब उन्हें पहले से बेहतर दिखाई देने लगा था, पर चेहरे पर न मुस्कान, न रौनक। कुछ दिनो बाद बोले "क्या करू, रात-दिन यही चिंता रहती है कि अब आख को कुछ हो गया तो ?"

समझाने के तौर पर मैंने कहा 'झवेरी साहब, हम मे से सभी इन्सान इतने अकृतज्ञ क्यो हैं ? जगत के सचालक ने बाकी सारी सुविधाओ व शरीर के अगो के अलावा केवल एक आख ही तो वापस ली है। दूसरी से दिखता है। इतनी भारी नियामत के बावजूद हम शिकायत ही करते रहते हैं कि अफसोस यह न मिला, वह न रहा। आपने स्वय डा० श्राफ के अस्पताल मे देखा होगा कितने नेत्रहीन रोगी आस लेकर आते हैं। उनके मुकाबले तो आप लाखो गुना अच्छे हैं कि रोजी-रोटी व नित्य की दिनचर्या बखूबी कर लेते हैं।"

उन्हें मनाने मैंने एक पुराना किस्सा सुनाया जो एक गरीब विधवा ने मुझसे पचीसो वर्ष पूर्व सुनाया था। वह मेहनत मजदूरी कर, पेट काट अपने 8-वर्ष के बच्चे को एक अच्छे कान्वेन्ट मे पढने भेजती थी, जहा बच्चा और सब साथियो को नए-नए कपडे जूते-बैग आदि मे लैस देखता। आखिर बालक था, मा से मचल गया

"मा मुझे नए जूते ला दो, नही तो मैं स्कूल नही जाऊगा। मुझे लाज आती है।" मा "अच्छा बेटा चलो लाने। पर बीच मे हाजी अली के बच्चो के अस्पताल मे मेरा कुछ काम है वहा से बाजार चलेंगे।"

दोनो अस्पताल के जनरल वार्ड मे गए। वहा अनेक बच्चे लूले-लगडे पडे हुए थे, किसी के एक पाव नही, किसी के दोनो। कई लोगो के हाथ गायब, मा ने बच्चे को वार्ड की परिक्रमा कर बाहर बगीचे मे धीरे से कहा "बेटे, भगवान का लाख शुक्र अदा करो कि तुम्हें तो नए जूते ही चाहिए। ये तुम्हारे भाई-बंधु अपना पाव किससे मागें ?"

लडके को अपनी बेवकूफी चट समझ म आ गई। झवेरी साहब भी एका एक झटका खाकर बोले "यह बात पूरी सटीक है। मैं बेकार ही मन मसोस कर रहा था।"

इस तरह के किस्से घूमन वालो के जरिए मिलते रहते है। सोचने पर आदमी बाध्य हो जाता है कि मैं कितना कमीना व स्वार्थी हू, कि मुझे इतना नसीब होने के बावजूद मैं अहसानमन्द व प्रसन्न नही रह सकता।

कुछ दिनो बाद सुना कि गोपी क्लब की एक 60-वर्षीया सदस्या ने घूमने ही नही, जीवन की मुस्कान व तमन्ना भी छोड दी है क्योकि उनके 65-वर्षीय पति का हाल ही मे स्वर्गवास हो गया था। उन्हें अपने चारो ओर अधेरे की खाई नजर आ रही थी। वे पहले से ही हार्ट की मरीज थी और डाक्टरो की सलाह से रोज 3-4 कि० मी० घूमना लाजिमी था। लेकिन न देह भान था न पूरा होश-हवास। क्लब की सदस्याओ ने कई बार उन्हें जाकर समझाने की लाख कोशिशें की, पर पूर्णत: असफल रही। उन लोगो ने हमसे सारी गाथा कही, हम मे से 3-4 व्यक्ति उनके साथ सत्रस्त महिला के यहा गए।

उन्हें भी भगवान बुद्ध की कथा कही गई, उस जवान विधवा की जिसका एक मात्र पुत्र असमय बाल्यावस्था मे मर गया था एव तथागत ने उसे जिन्दा करने का वचन दिया, बशर्ते उसकी माता किसी भी घर से पानी, दूध या अन्य सामग्री ले आए, जिसके यहा आज तक मृत्यु न हुई हो।

वह महिला फौरन होश मे आ गई। पर हमारे सामने अनमने भाव से बैठी महिला का अफसोस था कि उनके पति की एकाएक मृत्यु हो गई, न वे पति की सेवा कर सकी, न डाक्टर से उपचार, न ही मन की कोई बात पूछ सकीं।

हम में से एक मे कहा "मा जी, करीब 50-वर्ष सुहाग के आपने पति के साथ बिताए हैं, उन पचास वरसो में आपसे क्या छिपा रहा जो अतिम पचास क्षणो मे वे आपको दे जाते? और रोग से ग्रस्त खटिया मे नही रहे, इसे तो उनका पुण्य व अपना सौभाग्य मानना चाहिए नही तो आजकल वृद्ध लोग बेहोशी (कोमा मे) बरसों पडे सडते रहते हैं न कोई छूने वाला है न ही सेवा करने वाला। और डाक्टर क्या किसी को बचा भी पाते हैं—तब तो उनके घर मे मृत्यु हो ही न।

अत म मैंने कहा एक बात अवश्य है। यदि आप शोक, चिन्ता व अभाव की अग्नि म जलती रहेगी और यही भावना आपके स्वय के अतिम समय तक रही, तो इस भावना की पुनरावृत्ति के साथ ही आपका नया जन्म होगा। हम ईश्वर का 50-वर्षों के विवाहित जीवन का धन्यवाद तो देते नही और थोडे समय

के अलगाव के लिए उस पर ताना मारते है। और पति के शरीर से अब आपको क्या करना है (शरीर तो पहलवानो की स्त्रिया व कुटुम्बीजनो के लिए महत्वपूर्ण है, क्योकि वही उनकी रोजी-रोटी है), उनके सद्गुण-विचार व चरित्र की अच्छाइयो को याद कर उनके अनुरूप बनने की कोशिश कीजिए पति के प्रति इससे अच्छी श्रद्धाजलि व श्राद्ध क्या होगे।"

अब वे वापस घूमने आने लगी हैं। गोपीवल्लब वापस लहलहा उठा है।

दुनिया यथावत् चल रही है।

मनुष्य ज्ञान रहते हुए भी इतना कृतघ्न व अहसानफरमोश है कि प्रभु द्वारा प्रदत्त अनगिनत सुख-सुविधाओ (ऑक्सीजन गुरुत्वाकर्षण का कानून बदलती ऋतुए, सूर्य व नभोमडल का नियमित कार्यक्रम धरती, वन, वृक्ष वनस्पति का अद्भुत चरित्र, पाच कर्मेन्द्रिया व पाच ज्ञानेन्द्रिया आदि-आदि) को तो मानकर चलता है, जरा सा धक्का लगने पर शोक व चिन्ता के कैकेयी भवन मे चला जाता है, मानो सृष्टिकर्ता मे रूठ गया हो, धन्य है हमारी स्वार्थपरता।

इसके अलावा हमारे दुख दर्द समय पाकर मद हो जाते है, इस विस्मृति को भी प्रभु ने "अपोहनम्" का नाम दिया है। हमारी स्मृति मे अपोहन नहीं होता, तो न जाने हमारी क्या दुर्दशा होती पल-पल जीवन की तथाकथित कुठाए गला दबोचती रहती।

13

यह सब क्या हो रहा है

अभी हाल की ही बात है। मेरे यहा रसोई वाला महाराज नही था, सो नौकर व महिलाए मिल-जुलकर काम कर रहे थे। एक दिन शाम को जरूरी कार्यवश मेरे पार्टनर सेवन्तीभाई एव श्रीनिवास भोजन पर आने वाले थे। इसकी सूचना पहले से ही दे दी थी श्रीमतीजी को। प्रसग ऐसा बना कि चेम्बर्स (ताज का व्यवसायी क्लब) मे ही काम-काज की बात समाप्त हो गई, तो वे लोग मेरीन ड्राइव पर अपने-अपने घर उतरने लगे। मेरे सुझाव पर उन लोगो ने अपनी-अपनी पत्नियां थोडी देर मे साथ लाने की हामी भरी। घर जाकर मैंने इत्तिला दी, तो श्रीमतीजी फौरन उबल पड़ी 'तुमको पता नही कि घर मे खाना बनाने वाला कोई नही है, चाहे जब न्यौता दे देते हो। मैं तो चली बाहर—आप जानो और आपके मेहमान।" सुनकर मैं तो दग रह गया। वैसे तो यदा-कदा डाट खाने की आदत है, पर दो के बदले चार मेहमान और दोनो महिलाए चिडियो की तरह खाने वाली।

पत्नी का नाम द्रौपदी है। मैंने तत्काल चापलूसी का आश्रय लिया. "अरे भाई, महाभारत म तो सबको खिला-पिलाकर बर्तन माज कर रखने के बाद दुर्वासाजी सहस्रो शिष्यो के साथ एकाएक भोजन करने आए थे। उस समय भी कम नही पडा, आज क्यो दिक्कत होगी ?

"मैं सब जानती हू। मुझ मे उस जैसा तपोबल नही है" कह कर पाव पटकते चलती बनी।

एक और जगह चलें। डा० पाटणकर हमारे रविवार के क्लब की चौकडी के सदस्य है। हम लोग 10-12 मित्र नियमित रूप से बॉम्बे जिमखाना मे 12 से डेढ बजे तक हसी ठट्ठो के बीच नारियल पानी बियर-जिन आदि पीते हैं। हर महफिल का 200रु०-300 रु० का खर्च बारी-बारी से प्रत्येक सदस्य

देता है। एक दफे मेरे ड्राइवर का बूढा बाप पीलिया व निमोनिया मे मरणासन्न हो गया, उसे डाक्टर साहब के दवाखाने ले जाया गया । देखकर डाक्टर ने 500 रु० पेशगी मागा वह भी रियायती दर पर, क्योकि ड्राइवर ने मेरा हवाला दे दिया था। वह बेचारा उस समय कहा से पैसे लाता, जाकर जे०जे० अस्पताल मे मुझे बिना कहे भर्ती करवा दिया, जहा बिना उचित देखभाल व ठीक उपचार के पाच दिनो बाद उसकी मृत्यु हो गई।

मेरे एक मित्र प्रेम अग्रवाल की फैक्टरी मे पिछले वर्ष बोनस को लेकर हडताल हुई। उनके यहा पिछले तीन वर्षों से अधिकृत यूनियन ने लिखित करारनामा सही कर रखा था, पर दत्ता भागवत ने आकर उन लोगो को 5-महीनो के बोनस का दिलासा दिया, सो मजदूर भागवत के खेमे मे आ गए। उसके अस्त्र सीधे थे मार-पीट, धमकी, आतक, खून आदि। उसके ट्रेड यूनियन के शास्त्र में परस्पर बातचीत व समझौते के लिए कोई स्थान नही था। वह स्वय किसी समझौते पर दस्तखत कर छ महीनो मे उसे फाड फेंकता, कर लो जो करना है। प्रेम का छोटा कारखाना था, उसे बद करना पडा और वह लाखो के कर्ज के नीचे दब गया। सरकार उसे कारखाना दूसरे राज्य मे ले जाने नही देती, बैंक अब उसका साथ नही देती करे तो क्या करे ? उसे बद करना ही पडा।

पिछले दिनो पश्चिम बगाल की सरकार ने रामकृष्ण मिशन द्वारा चलाई जा रही शिक्षण-सस्थाओ पर सरकारी कायदे कानून लागू कर कन्ट्रोल थोपना चाहा। सरकार को यह गवारा न था कि मिशन की स्कूल-कालेजो मे मार्क्स लनिन सम्बन्धी पाठ न पढाए, हारकर मिशन ने कलकत्ता हाइकोर्ट में दावा किया कि रामकृष्ण मिशन हिन्दू सस्था नही है, बल्कि मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, आदि की श्रेणी मे एक अल्पसख्यक सस्थान है क्योंकि एक तो हिन्दू धर्म के विपरीत ये केवल वेद-उपनिषद्-गीता ही नही बल्कि विश्व के सारे धर्मों के ग्रन्थ जैसे कुरान, गुरुग्रन्थ, बाइबिल आदि के अच्छे हिस्सो को मान्यता देते हैं। दूसरा अटपटा व विचित्र तर्क यह दिया कि रामकृष्ण परमहस को गोमास से कोई घृणा नही थी एव स्वामी विवेकानन्द तत्कालीन ब्राह्मण समुदाय के विरुद्ध व अमान्य कई चीजें खाते-पीते थे।

बडा रहम आता है ऐसी वकालत पर, जो अपनी सस्थाओ को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए अनि-तार्किक बातें कह जाते हैं। कहा परमहस रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द और कहा आज के हम लोग। पूर्णत्व को प्राप्त करने के बाद 'निस्त्रैगुण्ये पथि विचरता को विधि को निषेध ?' हमारे शास्त्रो की उक्ति है, तभी तो श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा, "निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन" । परमहस के लिए गीता मे व्याख्या है कि उसकी दृष्टि "समलोष्टाश्मकाचन" है। उसके

लिए सोना, मिट्टी, कीचड बराबर है और ऐसे महापुरुषो के लिए न कोई सिविल कोड है न ही क्रिमिनल।

श्री रामकृष्णदेव ने अपने भक्तो को कुण्डलिनी भेद बताने का बहुत प्रयत्न किया पर तुर्या अवस्था (चतुर्थ वेदान्त की भाषा मे) सहस्रार चक्र (योगशास्त्र की भाषा मे) वाला व्यक्तित्व बाकी तीन अवस्थाओ वालो (सुप्त, स्वप्न व जाग्रत) से कैसे साक्षात्कार व विचार-विमर्श कर सकता है? क्यो परमहस ने माम मगाया और क्यों स्वामीजी ने कुछ खाया पिया, उसकी तह मे हम ससारी व्यक्ति क्या जा सकते हैं? क्या ही अच्छा होता इस दलील को न दे मिशन अपने स्कूल-कालेज बद कर देती बजाय इन महापुरुषो को साधारण समाज की स्थूल दृष्टि मे गिराने के।

कांग्रेस की दिसम्बर मे शताब्दि बडे जोर-शोर से बम्बई मे मनाई गई। लाखो व्यक्ति एकत्रित हुए, भाषण व कार्यक्रमो की योजना व ऐलान हुए, लेबरनम रोड स्थित गांधी भवन (जिसकी साफ-सफाई व देख-रेख भी अब बडी मुश्किल से होती है) पर रोशनी की गई व तेजपाल हाल में बैठकें हुई और लोगो के अदाजे से करोडो रुपयो का व्यय हुआ। क्या इससे अच्छा रास्ता यह नही था कि बम्बई में 8-10 सार्वजनिक खेलकूद के मैदान, दक्षिण से उत्तर जाने हेतु एक एक्सप्रेस हाईवे, म्युनिसिपल अस्पतालो का आधुनिकीकरण शताब्दि समारोह के रूप में किया जाना एव उन सबका नाम भी ऐतिहासिक अवसर के अनुकूल रखा जाता? कौन सुने?

इसके सप्रेक्ष्य मे हम यह देखें कि केवल 40-50 वर्ष पूर्व का भारतीय व्यक्तित्व आज के मुकाबले अत्यन्त उन्नत व मेधावी था। मुझे स्वय अपने जीवन से अच्छी तरह याद है कि करीब 1950 तक भारत का सारा व्यापार व कारबार जबानी जमाखर्च पर चलता था। लोग अपनी बोली को इतनी प्रतिष्ठा देते थे जो कि आज नानी पालखीवाला के कानूनी दस्तावेजो से अधिक वजन रखते थे। घर के गहने-बर्तन गिरवी रखने पडे, पर कर्ज चुकाना हर व्यापारी अपना प्रथम धर्म समझता था। आज तो आपको कही से रकम वसूल करनी हो तो एक युग (12-15 वर्ष) के पूर्व तो उम्मीद ही नही है। और कोर्ट से डिक्री मिल गई तो क्या हुआ, यह जारी कर वसूल करना करीब-करीब असभव ही है।

हमारे स्कूल (मारवाडी विद्यालय) मे सभी बिना भेदभाव के तल्लीनता के साथ लडके पढ़ते थे। कभी किसी को प्रिंसिपल टंपी साहब के कमरे मे बुलाया जाना तो चेहरा पीला हो जाता और फिर पीठ पर किसी के लवी बेंत की मार लगती तो वह सारा चुहलपन भूलकर पढ़ाई मे हमेशा के लिए लग जाता। एक-एक अध्यापक कम से कम दो विषय पढ़ाते और

तरह अध्यापक-प्रोफेसर क्लास मे रस्म अदा नही करते। गाइडें थी नही, जिन्हें रट-रटा-कर पास हो जाते।

मजदूर व मिल-मालिको का आपसी सम्बन्ध घरेलू हुआ करता। पिताजी व चाचा लोग जब मिल मे जाते, तो उनके दफ्तर के दरवाजे सबके लिए खुले रहते। मजदूर अपनी घरेलू समस्या लेकर भी बेधड़क चला आता। अलग-अलग विभागो मे उन लोगों को सैकडों लोगों के नाम मालूम थे। कही भी परस्पर विद्वेष अथवा सघर्ष की बू नही थी। आज सब सपना लगता है, मानो किसी और युग की बात हो।

पति-पत्नी के सम्बन्ध मृदु व एक दूसरे के पूरक होते थे। शाम को पति काम से थका-मादा आता, तो पत्नी उसका कोट व टोपी लेती, चाय-दूध व हाथ-मुह धोने की तत्परता से व्यवस्था करती। घर मे प्रेम से सभी सयुक्त परिवार की तरह रहते, कही भेदभाव का काम नही। पति व बच्चो के कपड़े, अन्य सामग्री, घर सुचारू की व्यवस्था एव स्वय की पाठ-पूजा। इन सबके बावजूद गृहिणियो के चेहरे पर कोई शिकन नही, मन मे कोई तनाव नहीं।

मेरे एक प्रपितामह सेठ भगवानबक्सजी राजस्थान के अपने पूरे इलाके मे अपनी सहृदयता एव करुणा के लिए प्रसिद्ध थे। उन दिनो हमारे घर की व्यवस्था मेरी दादीजी (प्रपितामह की पुत्रवधू) के हाथो थी, जिनका घर मे सब लोगो पर दबदबा था। जब कभी देर से कोई गरीब भूखा-प्यासा हमारे यहा आ जाता, तो डर के मारे सेठजी अपना भोजन अतिथि को चुपचाप दे देते, व ड्योढी से अन्दर कहला देते कि आज उन्हें बदहजमी है, अत भोजन नही करेंगे। समझने वाले समझ ही जाते। उनके दिवगत होने पर सारा गांव स्वेच्छया बिना खाए-पिए रहा। ऐसी थी यह जिन्दगी।

हमने आजादी के बाद बहुत कुछ पाया पर ऐसा लगता है कि सार्वजनिक स्तर पर भारतीयता खोई एव व्यक्तिगत तौर पर प्रेम, सद्भाव, सहिष्णुता। जरा-सी कोई घटना सडक पर या कही और हो जाए, लोग फौरन बाहें चढा गाली-गलौज व मारकाट पर तुल जाते हैं। तमाशबीनो की भी कोई कमी नहीं है। कभी-कभी शिवाजी महाराज की उक्ति याद आ जाती है, जब उन्होंने कहा, "गढ़ आला, पण सिंह गेला।"

हम सामूहिक तौर पर काम सुधारने के स्थान पर अपने स्वय को सुधारने का बीडा लें, तभी भारत की सस्कृति व चरित्र रह सकते हैं। पश्चिम के भौतिकवाद व साम्यवाद के 'अधिकार' ही पर चलेंगे तो सभव है आर्थिक प्रगति तो होगी, पर इस दरम्यान पश्चिम की तरह अपनी आत्मा को खो देंगे। पश्चिम को आज के भारतीय गुरु मार्गदर्शन दे रहे हैं (कोई अच्छे तो कोई बुरे) पर हमें गर्त में से कौन निकालेगा?

14

वैवाहिक जीवन की गांठें

जब-जब रात को देर से टेलीफोन की घटी मेरे फ्लैट मे बजने लगती है, तो मैं हमेशा मनाया करता हू कि रोग नम्बर वाला हो, होता अक्सर यह है कि उस बेसमय या तो किसी दुर्घटना की खबर मिलती है या किसी आस पास के घर से फौरन बुलावा कि फलाने की तबीयत बहुत खराब है या उसका देहान्त हो चुका है। पिछले दिनो एक मित्र जो हमारे करीब 4-5 मकान छोडकर मरीन ड्राइव पर ही रहते हैं, के यहा से घबराहट का सदेश मिलने पर बडा आश्चर्य हुआ। मित्र करोडपति हैं, बम्बई के ही नही, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार उद्योग समाज मे उनकी अच्छी धाक-पैठ है, पत्नी पढी-लिखी, सुन्दर, सामाजिक कामो मे सबसे आगे। गरज यह कि देखने-सुनने वाला हर व्यक्ति इस परिवार के सुख-समृद्धि को देखकर या तो अत्यन्त प्रसन्न होता या ईर्ष्या की भावना रखता।

बम्बई के एक प्रमुख अस्पताल की व्यवस्थापिका सभा का सदस्य होने के नाते वैसे भी अनेक लोग मुझसे रात-बिरात दाखिले या डाक्टरी मदद के लिए सम्पर्क करते हैं। भागकर शिव-सदन (उनके मकान) पहुचे, तो देखकर दंग रह गया कि उनकी पत्नी ने मुट्ठी भर नीद की गोलिया खाकर आत्मघात करने की प्रक्रिया की है। एम्बुलेन्स आदि लेकर अस्पताल मे सारी रात उनके पेट से जहर पम्प के जरिए निकाला गया और उपचार के कारण वह बाल बाल बची। पुलिस व अन्य औपचारिकता के बाद तीसरे दिन उन्हें वापस घर लाया गया। मित्र को व उनके बच्चो को पूछने पर खिसियाकर या खिन्न मन से सभी कह देते कि पता नही इतने ऐश्वर्य व सफल जीवन के बावजूद राधा ने यह हरकत क्यो की।

परिवार से हमारा अन्तरग व लम्बा सम्बन्ध था तो एक दिन दोपहर को तीन बजे राधा के हाल-चाल पूछने चला गया। बाकी सब अपने-अपने काम से दफ्तर, स्कूल-कालेज चले गए थे। ड्राइग रूम मे बात शुरू करते ही राधा फूट-

फूट कर रोने लगी। कुछ आश्वस्त होने के बाद उसने बताया कि मेरे मित्र कान्ति (उसके पति) के दोगले चरित्र व दिखावे के व्यवहार के कारण मैं उन्हें राई भर भी नही जानता। वह न केवल विवाह के पाच वर्षों बाद से एक रखैल के साथ अवैध सम्बन्ध रखता है, पर घर मे रहना उसे तनिक भी नही सुहाता और जितनी सहनशीलता व सयम से राधा ने पति को गलत रास्ते से वापस लाने की कोशिश की, उतनी ही वह बेशर्मी व बेदर्दी मे उस महिला के पास रहता और अब तो शराब पीने की मात्रा इतनी बढ गई कि वह अक्सर आधी रात को झूमता लडखडाता घर आकर धम्म से कपडे पहने हुए ही पलग म आ *पड़ता है।*

आत्महत्या के प्रयास के दिन राधा व काति की 19 वी विवाह की वर्षगाठ थी, वह राधा के उस कीमती हीरे के हार को उस महिला को दे आया जो बडे प्रेम व मनोयोग से विवाह के दिन स्वय उसने राधा के गले मे पहनाया था। अब राधा एक दिन भी जीना नही चाहती थी, इतनी ऊब गई है अपने दुख से कि सब कुछ खतम कर देना चाहती है। मैंने अस्पताल के जरिए उसे पुनर्जीवन मे लाकर अच्छा काम नही किया।

बम्बई मे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त वेदान्ती स्वामी पार्थसारथी रहते है, जिनके मण्डल में हम '10/12 सक्रिय' सदस्य जीवन की कला व विज्ञान के क्षेत्र मे है। यदा-कदा जब इस प्रकार का जीवन-मृत्यु की कगार पर खडा केस मिल जाता है, तब हम निवारण एव पुन स्थापना के लिए उनके पास ले जाते हैं, बशर्ते कि व्यक्ति निपट अंधेरे से अपने मनोबल से प्रकाश की ओर जाने के लिए तैयार हो। राधा के मामले मे मेरी जानकारी थी, अत मनोवैज्ञानिक सम्बल के लिए स्वामीजी के पास मेरी मौजूदगी म जाने के लिए तैयार हो गई।

स्वामीजी में सुनने की अद्भुत क्षमता है। हम भारतीयो की सर्वाधिक आदत बोलने की है, किसी को सुनने की नही। बात करने वाला विषय शुरू करता है कि हम अपना दिमाग बाध चुके होते हैं और चौथे पाचवें वाक्य को बीच मे काट अपनी राय देना शुरू करते हैं। उन्होने पौन घटे राधा का पूरा जीवन-वृत्त सुनकर सबसे पहला प्रश्न यही किया

'तुम अपनी मदद सदा के लिए स्वय करना चाहती हो या सिरदर्द को ढकने *बाम या सेरीडोन लेने मेरे पास आई हो? मैं दर्द की गोली नही देता,* हा—व्यक्ति चाहे तो जीवन के मूल्यों को समझ जीने की कला सीख सकता है। आम लोगो की तरह तुम भी जीवन की शिक्षा म कोरी या नासमझ ही नही, नितान्त गलत धारणाए लेकर बडी हुई हो। हममें से प्रत्येक यही समझता है कि मानव देह और फिर अमीर परिवार क्या मिल गया जीना आ गया।

सितार मे निपुणता या टेनिस खेलने की योग्यता मे जैसे नीति-सिद्धान्त सीखकर वर्जिश करनी पडनी है, उसी प्रकार जीवन के खिलाडी को भी अभ्यास करना होगा। और हा, आत्महत्या करना हो, तो सीधी यहा से जाकर वैसे भी कर लो, भारत की आबादी पहले से इतनी अधिक है, एक कम होने मे कुछ राहत तो मिलेगी। पर मुझे कुछ न बताओ क्योकि यह जानकारी भी कानून के समक्ष एक जुर्म है।"

राधा धवक से सुनती रही। कुछ देर बाद बोली "स्वामीजी, जब हताश होकर मैं इतना बडा कदम अपने प्राण त्यागने के लिए उठा चुकी थी, तो अब जीवन की दिशा मे कोशिश अवश्य करूगी।"

स्वामीजी "लोग हमेशा यह भ्रान्त धारणा लिए रहते हैं कि जान देते ही दुनिया के बोझ, चिन्ता, दुश्वारी आदि से हमेशा के लिए छुट्टी मिल जाएगी। वे लोग चिर-शान्ति चाहते हैं, पर सोचते नही कि जिस नैराश्य व विकृत मनोवृत्ति को लेकर मरेंगे, अगला जन्म वही से शुरू करना होगा। यह प्रकृति का अकाट्य नियम है। क्या चाहोगी कि अगले जन्म मे 14/15 वर्ष की उम्र से ही यह कुठा व बोझ लेकर यात्रा शुरू करो ?"

राधा "स्वामीजी, आप सुखी गृहस्थी के बीच आनन्द से है, आप मेरी पीडा को क्या जानें ?'

"तुम स्वय तो जीवन के क, ख, ग को जानती नही और मुझे प्रमाणपत्र दे रही हो कि तुम्हारे मन मे कितनी अशान्ति है, उसे मैं नही पढ सकता ? शेक्सपीयर एक सीन मे जब कब्र खोदने वाले चरित्र का वर्णन करता है, तो उसी के शब्दो व भावना मे जैसे जनम भर उसने यही काम किया हो, और फिर फौरन राजा, रानी का दृश्य आता है, तो वे पात्र मुखरित हो जाते हैं। क्या उन सबका निजी अनुभव उनको था ?"

"और तुम शिकायत करती हो कि तुम्हारे पति दूसरी स्त्री के चगुल मे है। स्पष्ट है कि तुम मर्दों का स्वभाव जानती नहीं। क्या हवा के इधर-उधर बहने मे कभी तुम्हें आश्चर्य होता है ? क्या वर्षा ऋतु मे पानी बरसने से तुम ऊबकर खुदकुशी करोगी ? पुरुषो का चरित्र स्वभाव से ही एक औरत मे दूसरी व दूसरी से-तीसरे से खेलने का है, जैसे तुम्हें रोज नए गहने-कपडे चोडियो फिल्म चाहिए। पुरुष समाज नासमझ है, तो तुम्हें इतना गवार रहने की क्या जरूरत ?"

उस दिन इतनी बात हुई, राधा को सोचकर वापस आने के लिए कहा गया। कुछ दिन बाद वापस हम दोनो गए तो—

राधा "तो मुझे क्या करना चाहिए ? मैं तो बर्दाश्त नही कर सकती कि कान्ति दूसरी औरत मे उलझा रहे और घर आते ही मैं उसकी मगल आरती करू।"

"तुम्हें यह सोचना होगा कि कान्ति शुरू-शुरू मे क्यो तुमसे कतराने लगा। रहस्य यह है कि जहा-जहा पति अपनी पत्नी का जीवन नितान्त अपने मन के अनुसार चाहता है (चाहे वेश-भूषा हो या सिनेमा/पिकनिक, गर्मी की छुट्टियां हो या विदेश यात्रा) तो पत्नी उसे बोझ समझने लगती है क्योकि हर बात मे वह अपने स्वामित्वभाव के कारण अपने ही विचार थोपने की कोशिश करता है। उसी प्रकार महिला चाहती है कि पति मेरे विचारो या सिद्धान्त से चले, उसके पार न हो। वह दूसरी औरत के पास न जाए..... ।"

"तो क्या हर पुरुष को यह अधिकार मिले कि वह बाजारू औरतो का आनन्द लेता रहे और उसकी पत्नी घर पर मुह बाए बैठी रहे ?" बात काटते हुए तैश मे राधा बोली।

"जब अधिकार व दायरे की बात करती हो, वही स्वामित्व आ जाता है। जीवन इस तरह कन्ट्राक्ट मे बध नही सकता। पहले तो पति के आते ही औरतें उसके इर्द-गिर्द मडराने लगती हैं। आज बाजार चलें, सिनेमा चलें या चाट खाए। वह अपने मन से कुछ करना चाहता है तो स्त्रियो का मुह फूल जाता है। पति हो या बच्चे, जिस समय जाने-अनजाने अपने विचार या उपदेश थोपना शुरू करती हो तो उनके मन मे तुमसे दूर होने की भावना उठेगी ही।

तुम्हें भिवडी के एक डाक्टर व उसकी पत्नी की सत्य कथा कहता हू। डाक्टर अपने जीवन मे सफलता व यश प्राप्त कर चुका था। वह भी शराब पीने लगा और पत्नी के विपक्षपन (उसकी नजर मे) से ऊब गया किसी और औरत के साथ समय बिताने लगा। मेरी बात सुन डाक्टर की पत्नी ने अपना रवैया बदला और पति को विनय के साथ कहती कि आप जहा भी जाते हैं, रात को देर से न आए। आजकल बम्बई मे बहुत खतरा है, क्यो न सुबह आए। वह डाक्टर का बैग, नाश्ता, कपडे-जूते सभी तैयार रखती और अपने व्यवहार से कभी नाराजगी नही प्रकट होने दी कि पति किसी और स्त्री के पास क्यो जाता है। यही नही, एक दिन कहा आप तो डाक्टर हैं, महिलाओ मे यौन रोग हो सकता है। कम से कम उसके साथ रहें, तो साधन तो अवश्य बरतें।"

4-5 बार तो डाक्टर ने परवाह नही की, पर पत्नी के नितान्त नि स्वार्थ व्यवहार से शरीर तो उसका पराई औरत के पास पडा रहता, पर मन अपनी पत्नी मे। जल्दी ही मन की कचोट से वापस घर आ गया। आज दोनो अत्यन्त सुखी हैं।

पुरुष तीन प्रकार के होते हैं। 99-प्रतिशत से अधिक लोगो का मन अवैध सम्बन्ध के लिए डोलता-मडराता है लेकिन इस वर्ग का अधिकाश दरअसल

कायर है, उसकी हिम्मत नहीं होती या मौका नहीं मिलता। फिर भी कामना की दाह सुलगती रहती है, क्रोध व आवेश तो पत्नी पर निकलेगा ही। इसीलिए हिन्दू शास्त्रों में पत्नी को सहनशील व पति के लिए निर्लज्ज वेश्या का आचरण रखने की हिदायत दी गई है। यदि अपने स्वार्थ या विचारों को उस पर न थोप उसके अनुरूप बनी रहे और सर्वदा "कामिनी" की भूमिका करती रहे तो पति 100 गुना पलट कर उसी का हो जाएगा और उसे प्रसन्न रखने का प्रयत्न करेगा।

समाज में बाकी एक प्रतिशत पुरुष वर्ग मन या तन से नपुसक है और इसमें भी मुट्ठी भर लोग ही ऐसे हैं जो सेक्स की माग से ऊपर उठ चुके हैं। लेकिन हमें तो अधिकाश से ही निपटना है।

राधा का एक और दावा था। न केवल वह अपने पिता के घर से लाई हुई सम्पत्ति सारी पति को दे चुकी थी, पर व्यवहार-कुशलता व शिक्षा के कारण बम्बई की एक सुप्रसिद्ध पब्लिक स्कूल के मैनेजर पद से भी उसने पति के कारण इस्तीफा दे दिया था, स्कूलों में वैसे भी भर्ती आजकल दुश्वार हो गई है, फिर इस स्कूल का नाम तो भारत भर में प्रख्यात था। सभी सरकारी अफसर, इन्कमटैक्स, उद्योगपति—ऐसा कोई सम्पन्न व प्रतिष्ठित परिवार न था, जो राधा के पास बच्चों की भर्ती के लिए नहीं गिडगिडाया हो। इससे कांति को हीनता अनुभव होनी स्वाभाविक थी।

स्वामीजी "तुमने जो कुछ पति को दिया, रुपया-पैसा, नौकरी छोडना आदि—उसमें तुम्हें आशा थी कि बदले में पति अपना व्यवहार तुम्हारे मन लायक बनाएगे। सौदा किया न ? उसमें घाटा हो गया। बुद्धिमत्ता से करती तो ये दोनों कुर्बानी करने की जरूरत ही नहीं पड़ती। अब तुम्हारे सम्बन्ध सामान्य हो जाए, तो भी इतना धन अपनी देख-रेख में रखना ताकि आगे कभी किसी की ओर देखना न पड़े।"

उपरोक्त सारी घटना व सवाद में करीब 15/20 दिन लग चुके थे। राधा के मन से काफी कुंठा व बोझ हट चुका था। एक बार उसने पूछा :

"स्वामीजी ! आखिर मर्द इतने अधिक स्वकेन्द्रित व स्वेच्छाचारी क्यो होते हैं ?"

स्वामीजी ने हसते हुए कहा, "दुनिया में सभी व्यक्ति, स्त्री-पुरुष स्वार्थी व स्वकेन्द्रित होते है। तुम मुझे एक व्यक्ति ऐसा दिखाओ जिसमें स्वार्थ व अह की भावना बिल्कुल नहीं है, तो जानू।"

राधा और कांति के यहां आज जाइए, घर के आनन्द व खुले वातावरण से आप स्वय मुग्ध हो जाएगे।

15

परिवार न अच्छा, न बुरा

शीला ने विवाह के पूर्व ही विनोद से वचन ले लिया था कि वे लोग उसके माता-पिता व अन्य तीन भाइयो के सयुक्त परिवार मे नही रहेंगे। शीला कान्वेंट आफ जीसस एण्ड मेरी मे पढी थी, अपने घर की इकलौती लाडली बेटी थी और सगत भी अपने जैसी स्वच्छन्द विचारो वाली सहेलियो की थी जिन्हे आधुनिकता की परिभाषा यही समझ मे आई कि अपना घर अपनी देख-रेख मे स्वतन्त्र रूप से अपनी ही रुचि के अनुसार चले न कि सास अथवा जिठानी के सरक्षण मे। अत विनोद ने पिता को समझा, कफ परेड मे एक फ्लैट ले लिया एव शीला के साथ रहने लगा। विनोद के परिवार मे सबके साझे मे पूना मे एक बिजली की मोटरें बनाने का कारखाना था, इजीनियर होने के नाते उत्पादन का काम विनोद देखता था, एक भाई व्यवस्था व पूजी का। अन्य दो कुछ और काम करते थे।

विवाह के एक वर्ष बाद विनोद ने किसी विदेशी कम्पनी के साथ समझौता किया जिससे विशिष्ट प्रकार की छोटी मोटरें, जो देश मे अभी तक नही बनती थी, उसके तकनीकी निर्देशन मे बन सकें। इस सिलसिले मे प्रशिक्षण लेने विनोद को स्वीडन के एक छोटे गाव मे स्थित विदेशी कार्यालय मे 3-4 महीने रहने की जरूरत पड़ी। वहा शीला का साथ जाना सम्भव न था अत बहुत मन होते हुए भी अपने पीहर जा रही। धीरे धीरे शीला के मन मे विनोद के सफरो के प्रति एक घुटन सी बनने लगी। कहने को बम्बई का कफ परेड एक कक-रीटी जगल है, जहा एक से सटे एक लोग रहते हैं, पर भीड-भाड मे रहने वालो का एक अजीब एकाकीपन होता है। कहने भर को सगी-साथी सहेलिया सभी हैं, पर ये सब ड्राईग रूम मे रखे सजावट के प्लास्टिक के रग-बिरगे फूलो की तरह हैं, जिनमे न आत्मीयता है न खुशबू।

जब से उनके दोनो बच्चे स्कूल जाने लगे, शीला-विनोद के और भी बन्धन हो गया। पहले तो कभी-कभार मिया-बीबी फ्लैट के ताला लगा लोनावाला-खडाला या माथेरान बोक एण्ड पर सैर-सपाटे को चले जाते थे। अब मई के अलावा वे कही जा नही सकते और छोटे-छोटे बच्चो को लेकर सब जगह घूमना उन्हे पसन्द नही था। एक-दो बार गए तो डायरिया सर्दी-खासी हो गई, लेने का देना पडा। इन लोगो ने अपने पिता-भाइयों के परिवार से विशेष सम्पर्क रखा नही जिससे काम पडने पर एक-दूसरे की देख-भाल कर सके।

एक दिन दोपहर को जब विनोद दफ्तर म था एव बच्चे स्कूल म तो करीब 2½ बजे टेलीफोन मैकेनिक के वेश मे दो गुण्डे आए और शीला के फ्लैट म लाइन ठीक करने के बहाने घुस गए। आते ही उन्होने शीला को चाकू दिखाकर उसके हाथ-पाव बाध एव मुह मे कपडा ठूस करीब 25-30 हजार का सामान ले गए। शाम को बच्चा ने बहुत घटी बजाई तब भी दरवाजा मम्मी ने खोला नही। उन्होने सोचा बाहर काम से गई होगी। शाम को 7 बजे विनोद ने आकर मास्टर चाबी से फ्लैट खुलवाया तब सारी हकीकत का पता चला। शीला इतनी घबराई व बदहवास थी कि वह पुलिस को उन गुडो का बयान भी नही दे सकी।

सुषमा व नीलिमा अपनी सास के साथ ही रहती थी। उनके पति सरकारी दफ्तरो मे ऊची जगह काम करते थे। एक भाई रमेश अहमदाबाद मे एम० बी० ए० फाइनल वर्ष मे था, जो सबसे छोटा होने के नाते सबका लाडला था। आस-पडोस ही नही, सरकारी अफसरो के कुनबो मे भी बडा आश्चर्य माना जाता कि वह परिवार सयुक्त स्तर पर कैसे रह रहा है। पाच कमरों के एक पुराने मकान मे दरियागज मे ये रहते थे। दो कमरे दोनो दम्पतियो के, एक सास का, एक मे दोनो के चार बच्चे व पाचवा रमेश की बरसाती थी, जो या तो उसके या मेहमानो के आने पर ही काम आती। सुषमा व नीलिमा अच्छे मध्यम श्रेणी के परिवारो से आई थी, शुरू से ही उनके मैके वाले साथ ही रहते थे, अत उनको ससुराल आकर भी इस जीवन शैली मे कोई अजीबपन या बोझा महसूस नही हुआ। दोनो के अफसर होने के नाते अच्छा खासा मित्र मण्डल था। घर पर पार्टिया होती तो दोनो भाइयो की लिस्टें मिलाकर सुषमा व नीलिमा मिश्रित ग्रुप को बुलाती, ताकि किसी को विशेष सकोच न हो और मिलने-जुलने वालो का दायरा बढता रहा। एक ग्रुप शराब पीने वालों का था, उस दिन सास के लिहाज से बरसाती मे बैठते और भोजन करने नीचे आते। दोनो भाई मा के सामने न सिगरेट पीते न व्हिस्की।

बच्चों की देख-रेख भी समान ढग से होती। बड़े बच्चो के कपडे-जूते,

किताबें आदि छोटों के काम आ जाती । सभी एक साथ नाश्ता-पानी, नहाना-धोना करते । इस तरह गृहस्थी बहुत सुख व आनन्द से चल रही थी, क्योंकि बाटकर समझदारी से काम होता । एक भाई को अपनी पत्नी के साथ कहीं छुट्टी पर जाना होता, तो वह बेखौफ बच्चों को पीछे छोड जाते । कहीं किसी बात की शका नहीं होती कि उनके पीछे से ठीक से देखभाल होगी कि नहीं । दूसरा दम्पति जब छुट्टियों मे जाता तो सभी बच्चों को अपने साथ ले जाता ताकि एक भाई मा के पास रह सके ।

सयोगवश सुषमा व नीलिमा की दोनो ही एक-एक छोटी बहने थी, जो ग्रेजुएट होकर विवाह लायक हो गई थी । रमेश भी अहमदाबाद से एम०बी० ए० अगले मार्च मे पूरा कर घर आने वाला था । रमेश खुश-मिजाज, स्वस्थ व मेधावी लडका था, वह निजी क्षेत्र की किसी बडी कम्पनी मे अगले दस वर्षों मे मैनेजिंग डाइरेक्टर बनने की महत्वाकांक्षा लिए चलता था । मा भाइयों व दोस्तों का तो लाडला था ही, दोनो भाभियों की नजर भी रमेश पर अपनी-अपनी बहनों के लिए थी पर अपने-अपने पतियों तक ही इस बात को रखा गया, पति भी उनकी व्यग्रता देख मुस्करा देते । बडे भाई पर अब जोर पडने लग गया सुषमा का कि वह मा व रमेश को अपनी बहन के लिए राजी करे आखिर बडे भाई की बात रमेश टालेगा थोडा ही । उसी तरह नीलिमा चुप-चाप अपने पति पर छाई रहती कि पहले जिसने बात कर ली, उसी की बात निभेगी ।

अन्दर ही अन्दर की झुलसाहट एक दिन बात ही बात म खाने की टेबल पर सास के सामने आ ही गई । रमेश के घर आने और आगे जीवन के कार्य क्रम पर चर्चा चल रही थी, चट से नीलिमा बोल उठी—'माजी, मैंने रमेश बाबू के लिए अपनी बहन को पक्का कर रखा है । आपके हा भरने की देर है ।' *सुषमा अपने को पिछडने कैसे दे ।* 'यह तो उनकी पसन्द पर है, मेरे भी बहन है, जो लम्बी, अच्छा नख-शिख, रग गोरा है । मुझे तो विश्वास है, रमेश उसी को ब्याहेंगे ।' बातचीत के दौरान बातें आगे बढ गयी और टेबल से जब उठे, तो नीलिमा व सुषमा के मनों मे बडी दरार पड चुकी थी ।

मा व दोनो भाइयों के देखते-देखते दिन प्रतिदिन घर म तनाव बढता गया । अब बच्चों को भी इसका आभास होने लगा । घर की सयुक्त पार्टिया भी बद । दोनों पति भी अलग परेशान पर बीबियों के सामने तोहमत मोल ले कौन ?

रमेश परीक्षा देकर गर्मियों मे घर आया तो दीपावली की छुट्टियों व अब में उसने एक अजीब अन्तर पाया । जिस घर में रोज शान्ति, मुस्कराहट, बच्चों की खेल-कूद रहते थे, वहा अब तनाव दिखने लगा । पहले रात के भोजन

के बाद एक घण्टे परिवार गप-शप के लिए ड्राईंग रूम मे बैठता, अब सब अपने-अपने कमरो मे या बाहर सैर को निकल जाते। खाना-नाश्ता भी अलग समयो पर होने लगा। बर्तनो मे आवाज होने लगी। पूछने पर उसकी मा ने सारा राज बताया तो उसने अलग-अलग भाभियो को जाकर कहा कि वह विवाह उन दोनो ही लडकियों से नहीं करेगा। दुनिया मे बहुत सी अच्छी लडकिया हैं और अभी जल्दी भी क्या है, उसे नौकरी भी तय करनी है। लाख कोशिशें हुई, पर एक बार का टूटा काच जुडा नही।

उपरोक्त दोनो नाटको की समीक्षा करने से एक विचार स्पष्ट होगा। न सयुक्त परिवार अच्छा है न अकेले रहने की आतुरता। जहा स्वार्थ, अहभाव, द्वेष, देखा-देखी आई नही वहा कोई भी परिवार टिक नहीं सकता। दोनो ही प्रणालियो मे गुण-दोष हैं, पर वे व्यक्ति के हैं, प्रणाली के नहीं। शीला अकेली रहकर भी बाकी के अपने परिवार से इतनी आत्मीयता रख लेती तो एक दूसरे के सुख-दु ख मे काम आते। वह अपने बच्चो को भी सास-जिठानियो के पास छोड सकती थी और काम पडने पर स्वय भी रह सकती, बशर्ते प्रेम-व्यवहार हो। उसी तरह नीलिमा-सुषमा के रथ के पहिए डगमगाते नही यदि वे अपने-अपने स्वार्थ के वशीभूत हो मन का द्वेष नही बढाती। मन ही निगोडा ऐसा शैतान है कि बन्धन मे भी डाल सकता है और मोक्ष का साधन भी बन सकता है।

निजी परिवार के पीछे यही मूल भावना है कि मुख्यत मैं, मेरी पत्नी व मेरे बच्चे इसके आगे कोई ऐसा ससार नही कि जिसके बारे मे मेरा कोई कर्त्तव्य है, या जिसे मैं अपनी भावनाओ मे कद्र का स्थान दे सकू। जो 'प्रेम' इतनी सकुचित परिधि मे घिर जाए, उसे प्रेम नही, बाकी रिश्तेदारो व दुनिया से द्वेष समझना चाहिए। प्रेम का केन्द्र पति-पत्नी बच्चे हैं, वहा से उदित होकर सूर्य की तरह धीरे-धीरे उसे सारी दुनिया से सम्पर्क करना होगा और सबसे समभाव के अनुकूल प्रेम व शालीनता का व्यवहार करना होगा। समुद्र गगा को तो सलामी देता हो और फैक्टरियो, शहरो से निकले दूषित गटर के नालो से घृणा करता हो, ऐसा तो होता नही। उसके लिए सभी के द्वार खुले हैं।

अपनी सहिष्णुता बढाने के लिए हमे समुचित जानकारी व अभ्यास बढाने होंगे। आगे के चित्र मे केन्द्रीय स्थान पर आपका निजी परिवार स्थापित है। जिस लगाव से आज उनके प्रति भावना रखते हैं, धीरे-धीरे अपने सारे रिश्तेदारो की तरफ ले जाइए। वहा आपको अपना रुपया-पैसा तो लुटाना है नही, सद्भावना व दु ख-सुख मे शरीक होना है। यदि आपके चचेरे भाई के पास

धन-दौलत, वैभव, यशोकीर्ति अधिक हो गई, तो ईर्ष्या की क्या बात है, इस पर तो गर्व होना चाहिए, चाहे उसका कुछ भी व्यवहार क्यों न हो, 5-7 वर्षों के निरन्तर अभ्यास के बाद धीरे-धीरे अपना ध्यान अपने समाज (सजातीय सधर्मी, सहराज्यीय आदि) पर लेते जाइए। किसी की भी समस्या हो, आप समाधान न कर सकें तो अपनी बुद्धि व सहानुभूति का सहारा तो दे सकते है। धीरे-धीरे यही मनोभावना राष्ट्रीय स्तर पर फैलानी होगी कि चाहे कोई भी हो, भारत का प्रत्येक नागरिक मेरे संयुक्त परिवार का सदस्य है। उनके दुख सुख हमारे है। यह भावना प्रत्येक बस स्टैण्ड राशन की दुकान पड़ोसी बाजार मे व्यवहार मे प्रतिलक्षित होनी चाहिए। आज के समूचे सामूहिक आक्रोश व वर्गभेद का कारण प्रत्येक के मन म दूसर के प्रति असहिष्णुता की भावना है।

इसी क्रमोन्नत मार्ग मे हम विश्व ही नही, समूचे ब्रह्माण्ड क नागरिक बन सकते हैं। मदात्मा सर्वभूतेषु' का मन्त्र खोखला नही, नितान्त कर्मठ व तेजस्वी है। इस रास्ते आपका व्यक्तित्व प्रखर हो उठेगा, क्योकि यदि हम अपना सारा प्रेम लगाव अपने ही परिवार पर खर्च कर दें, तो एक छोटे स पड़े हुए खड्डे के पानी की तरह सड़ जाएगे। यदि गगा की तरह स्थितप्रज्ञता की भावना से "सुजलाम् सुफलाम्" होना है तो बिना किसी रोक-टोक के अपने ध्रुव केन्द्र सागर की तरफ बढिए। संयुक्त परिवार तो क्या पति-पत्नी का रिश्ता भी भारत मे इसी सिद्धान्त पर आश्रित है।

न निजी परिवार बुरा है, न संयुक्त परिवार अच्छा। अच्छाई-बुराई सारी हमारे स्वय के मन मे है। हम चाहें तो जीवन स्वर्ग बना लें अन्यथा नरक तो तैयार है ही मुह बाए।

इगलैंड के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री विन्स्टन चर्चिल किसी भी देश की राज्य व्यवस्था के लिए कहा करते थे कि इसके लिए लोकशाही सबसे खराब पद्धति है, पर उससे अच्छी कोई प्रणाली मौजूद है नही। उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति स्वभाव से ही स्वच्छद व स्वतन्त्र है और उसे परिवार के कोई भी बन्धन ठीक नही लगते। अत परिवार सबसे खराब पद्धति है, पर इससे अच्छी कोई भी व्यवस्था जीवन-यापन के लिए नही है।

16

पराई चर्चा

सर्वेश्वरदयालजी को हम लोग बहुत अरसे से जानते थे। हमारे घर मे जब लगभग सभी लोग अपने गाव में रहते थे, तो स्कूल-कालेज की व्यवस्था न होने के कारण करीब 20 वर्षों तक वे हमारे अध्यापक और अभिभावक थे। हमारे समाज मे उन दिनो माता-पिता न तो अपने बच्चो से परम्परा के अनुसार बात करते, न ही उनके विकास, शिक्षा-दीक्षा, स्वास्थ्य आदि के बारे मे खुले आम चर्चा कर सकते। गाव मे मिडिल स्कूल था, सुबह 8 बजे से दोपहर 1 बजे तक हम सभी वहा जाते, पर दोपहर चार बजे बाद ही मास्टरजी (सर्वेश्वरजी को सारा गाव इसी नाम से पुकारता था) के छोटे से मकान के बाहर के बरामदे हम सब छोटे-बड़े बच्चे पहुच जाते और असली शिक्षा-दीक्षा उन्ही के द्वारा होती। वे देश-विदेश के कथा-इतिहास तो कभी भारतीय पुराणो के चरित्रो के बारे मे साय 6 बजे तक अलग-अलग विषयो पर रोचक ढग के जरिए हमे बाधकर रखते। जब भी आपस मे कहा-सुनी या मारपीट हो जाती, मास्टरजी पहले तो धीरज से दोनो से अलग-अलग पूछते और बाद मे सुलह करा हमे कहते कि जीवन मे मारपीट करने से आदमी आगे नही बढेगा। शारीरिक शक्ति जितनी होगी, पहले तो उसी के बलबूते पर और बाद मे छुरी-चाकू का आसरा लेकर उसी सतह पर पडा रहना पडेगा। इस बात पर वह सबसे अधिक जोर देते कि किसी की भी इकतरफी बात सुन कर मन मे विचार नही बना लेना, चाहे शिकायत करने वाला कोई भी क्यो न हो? दोनो पक्षो की बात सुनने के बाद ही फैसला देना चाहिए।

शाम को वे हम सबकी टोली बना गाव के बाहर बने रेगिस्तान के टीबो (धूल के ऊचे-नीचे समूह) में तालाब पर ले जाते। वहा दौडना, पेड पर चढाना, नालाव मे तैराना, कबड्डी, खो-खो आदि खेलो से 7½ बजे थके-मादे

चेहरे पर सतोषी सौम्यता के चिन्ह, एव हाथ आटे से मना—मैंने मास्टरजी के बारे मे पूछकर अपना परिचय दिया तो वह बोली "दद्दा तो नित्यकर्म से आते ही होंगे, इस नाते आप मेरे भाई ही हैं, आइए, बैठिए।" सकोच होने पर भी मैं दरी पर जा बैठा।

कुछ देर बाद मास्टरजी आते दीखे, 70 वर्ष की भव्य आकृति, श्वेत लह-लहाती दाढी। मैंने लपाक् से प्रणाम किया तो पहचानते ही अक मे भर लिया। उनके साथ एक कोढ का बीमार अपने घावो पर पट्टी लगाए था, उसे खटिया पर लिटा, मास्टरजी ने मेरे लिए चाय मगाई और दु ख-सुख की चर्चा होने लगी। उनके आग्रह से मैंने वहा भोजन भी किया और जाने से पूर्व उस महिला के परिचय की परोक्ष जानकारी चाही। हसकर बोले "पूर्व जन्म मे कोई सनातन रह गया होगा जमुना का, इसी से मेरी सेवा कर रही है।" पुकारते हुए कहा, "बेटी जमुना, तुम्ही बता दो अपनी राम कहानी।"

"उसने बडे सकोच से बताया कि पिछले साल अलवर मे अपने वैधव्य के दस वर्ष पूरे कर ससुराल वालो ने मारपीट कर उसे निकाल दिया। बडी मुश्किल से घायल अवस्था में लगडाती वृन्दावन पहुची। पीहर वाले तो पहले ही मुह मोड चुके थे। यहा भी कोई आश्रय न मिलने से एक दिन स्वामी मुलायमानन्द ने उसके तन का लाभ उठाना चाहा, भाग कर जमुनाजी म कूद पडी मरने के लिए। उसी समय दद्दा अपनी साधना के बाद नदी किनारे टहल रहे थे, देखते ही उसे तैर कर निकाला, तब से वह यही रहती है। दद्दा उसे पढाते लिखाते हैं, जीने का सम्बल देते हैं और वह दद्दा के परोपकारी जीवन मे सेवा कर अपने को अहोभाग्य समझती है।" कह कर कोठी के पास जा बैठी, उसके घाव धो-धो कर मरहम पट्टी करने लगी। मैं मन ही मन ईश्वर को धन्यवाद देते हुए वापस घर गया कि मैंने इतने बडे सत्पुरुष के बारे मे इकतरफा सुनी सुनाई के आधार पर कोई धारणा नही बनाई। उस घटना के बाद फिर से यह निश्चय किया कि किसी के बारे मे कुछ भी सुन लेने से कभी फैसला नही किया जाना चाहिए। न ही किसी के निजी जीवन के बारे मे हस्तक्षेप करने का हमारा धर्म है। हम क्यो सबके बारे मे राय बना अधपकी खिचडी खाए और अपने को दूसरो से श्रेष्ट मानें ?

पश्चिमी देशो के अनेक प्रतिष्ठित मनोवैज्ञानिको एव शोधकर्ताओ ने इस तथ्य को प्रकाशित किया है कि प्रत्येक मनुष्य के बचपन के 10-12 वर्ष उसकी धारणाओ व मान्यताओ को पुष्ट बनाते हैं। बालक अपने इर्द गिर्द अपने माता पिता, परिवार, स्कूल व अन्यत्र व्यवहार देखता है और उसे ही ध्रुव सत्य मानने लगता है। वही विचार उसके जीवन भर प्रत्यक्ष परोक्ष मे उसके मन

को मार्ग दिखाते रहते हैं। वह देखता है कि सभी लोग जीवन मे झूठ बोलने मे अपनी सहूलियत समझते हैं, तभी टेलीफोन पर जवाब दिलवाया जाता है कि "कह दो, बाथरूम मे हैं अथवा बाहर गए हैं"। उसी तरह हर आदमी अपनी शान बखानते बडी-बडी बातें करता है। मामला दस हजार रुपए का है तो कहेगा मुझे 30-40 हजार लेने-देने हैं। इसी परम्परा मे हम दूसरो की चर्चा करते सुनते हैं, अफवाहें उडाते हैं, बिना सोचे विचारे कुछ भी मुह से निकाल देते हैं। दूसरो की आलोचना करना और उन्हें नीचे दिखाना हमारे स्वभाव का प्रथम धर्म बन गया है।

अग्रेजो के गुणो मे सबसे अच्छे दो नमूने हैं। एक तो बिना कारण के गप्प करते नही। सभी जानते हैं कि बीसियो वर्ष एक दूसरे के साथ ट्रेन मे बैठे-बैठे घर से दफ्तर आएगे और वापस जाएगे भी, पर बिना प्रसग या जान पहचान के वे अपने पडोसियो तक से बात नही करेंगे। अखबार लिए पढते-पढते दोनो ओर की यात्रा की जाएगी। उसी तरह किसी के बारे मे सलाह या चर्चा बिना पूछे व सोचे-समझे कही नही करेंगे। इससे उनके आत्मसयम का पूरा परिचय मिलता है।

हमारे समाज मे तो प्रधानमन्त्री से लेकर पानवाले की इज्जत का माप जन-जन के मुह मे है। "अरे उसका तो क्या, वह तो निहायत कमीना आदमी है।" "फलाने को मैं अच्छी तरह जानता हू, उसका तो सिर आसमान मे है।' "वह तो दिन-भर लडकियों के चक्कर मे रहता है", "उसकी इज्जत तो टके भर नहीं है।" आदि-आदि। यह सब बोलते समय हम यह नही समझते कि दूसरे भी हमारे लिए इस तरह के वाक्य निकाल रहे होगे।

जीवन मे हम दूसरो की एकाध बात या घटना देख-सुन उसके बारे मे निश्चित राय बना लें, इससे अधिक बचपने का सबूत हम नही दे सकते। स्वामी विवेकानन्द जब विश्व भर मे भारतीय वेदान्त व सस्कृति का डका बजा रहे थे, तब बगाल का कुछ ब्राह्मण वर्ग उनके खाने पीने के बारे मे चर्चा किया करता था। उन लोगो को स्वामीजी के प्रकाड व्यक्तित्व एव ऐतिहासिक सेवाओ व मार्गदर्शन मे कुछ देखने को नही मिला। गाधीजी जब सत्य से अपना परीक्षण जुहू मे करते थे, तब भी बहुत लोगो ने उसका अनर्थ निकाला। कोई व्यक्ति किसी कार्य को किस समय क्यो करता है, उसका आशय व मन्तव्य क्या है, उसके पीछे भावना या वासना क्या है, इन सब का निश्चित प्रमाण स्वय वह व्यक्ति ही दे सकता है, पर हम तो सबके नोच-खसोटकर टुकडे करने गिद्ध की तरह तैयार बैठे हैं।

पराई चर्चा एव किसी के निजी जीवन के बारे मे राय बनाना छिछोरेपन

का सबूत है। हम कब अपनी इस तुच्छ आदत से बाज आएंगे ? धारणाएं तो बचपन मे बनी हैं, पर बुद्धि का विकास तो बडे होने पर। अत वैज्ञानिक की तरह हर मान्यता का परीक्षण समूचे व समग्र ढग से होना चाहिए, बचपन मे पडी भावनाओ से नही। नही तो हम मे व बच्चो मे फर्क क्या है ? हजारो व्यक्तियो के सामने गोली लगाने वाला नाथूराम गोडसे का पक्ष भी न्यायालय मे सुना गया, उसे यू ही सजा नही मिली। इन्दिराजी के कातिलो के साथ भी यही प्रणाली है, फिर हम इकतरफा क्या हो ?

17

हमें तलाक चाहिए

सीमा व राजेन्द्र 40-45 की आयु के विवाहित दम्पती हैं। राजन्द्र का विवाह कोई बीसेक वर्षों पहले मेरे ही बीच-बिचाव पर हुआ था, राजेन्द्र एक अत्यन्त धनाढ्य एव सम्पन्न परिवार मे पैदा हुआ था, हालाकि परिवार सनातनी होने के कारण पुराने विचारो का हामी था। विलायत तो अब घर वाले जाने लगे थे पर अपने ही समाज से अलग विवाह का रिश्ता अभी भी राजेन्द्र के माता-पिता को नागवार था। सीमा एक सभ्रान्त गुजराती परिवार की पुत्री थी, जहा उसके पिता गुजरात हाई कोर्ट के जज थे। सीमा अपने चाचा के यहीं बबई मे बचपन से रहती थी और झेवियर्स कॉलिज मे उसकी राजेन्द्र से मुलाकात हुई। दोनो ही कॉलिज के सोशियल सर्विस क्लब के सक्रिय सदस्य थे, जिसके मातहत हर शनि-रवि उनके ग्रुप को आसपास के गरीब झुग्गी-झोपड़ियो की बस्तियों मे आकर सर्वेक्षण के आधार पर उनके यहा यत्किंचित सुविधाओं की व्यवस्था करनी पडती। इस योजना मे अखबार के दफ्तरो, म्युनिसिपल अफसरो व कर्मचारियो, मत्रालय के दफ्तरों आदि मे चक्कर लगते। कभी पानी का नल तो कभी बिजली का बल्ब, कभी हास्पिटल मे टीके तो कभी साफ-सफाई इसी वातावरण मे सीमा व राजेन्द्र एक दूसरे के नजदीक होते रहे एव दो वर्षों की 'कोर्टिंग' के बाद विवाह के लिए तुल गए।

राजेन्द्र घर पर तो अधिक रहता नहीं था। पाकिट मनी और मोटर की कभी चाह नहीं थी, सो रात को थका-मादा आना और कमरे मे सोने चला जाता, माता-पिता के पूछने पर कॉलिज की गतिविधियो य लाइब्रेरी आदि का बहाना बना देता, जिससे उन्हे इस वाकये की जरा सी भनक नहीं हुई। अब राजेन्द्र की सबसे बडी समस्या हो गई कि वह घरवालो को किस प्रकार सीमा के लिए राजी करे। परिवार के अन्य सभी विवाह घर के बडो की पहल व चुनाव से अपने ही समाज मे हुए थे। सो यह पहला ही मौका था और पिता मे वह इतना खुला न था कि मन की बात कह के उन्हें राजी करता। खैर, चूकि राजेन्द्र अपनी सार्व-

जनिक गतिविधियों में मेरे घर-दफ्तर बराबर आया करता था, कभी गप्प लगाने, कभी चंदे-चिट्ठे के लिए, अत मुझसे वह काफी खुला हुआ था और हम लोगो का भी उसके घर पर आना-जाना था। सो रोनी सूरत बनाकर आया और मन की बात बताई। उससे यहा तक आभास हो गया कि यह विवाह नही हुआ तो ये दोनो कुछ कर बैठेंगे, अत कमर कस के उनके यहा पहु चा।

पहले तो राजेन्द्र के माता-पिता इस बात को सुनने के लिए ही तैयार न थे। मा तो अपने पति पर इतना बरसी कि उन्हें धन-दौलत व व्यापार के मारे घर में बच्चो के लिए कोई समय ही नही था, उसी का यह नतीजा है। उनको स्वय अपनी जिम्मेदारी की कोई बात दिखाई न दी। खैर, दस पांच बहसो और अन्य लोगों के बीच-बिचाव से विवाह हो गया, जो कि उस परिवार का पहला लव मैरेज' था। उनको रहने के लिए एक अलग फ्लैट दे दिया गया। 'स्टार्म इन दी टी कप' वाला मामला राजेन्द्र के माता-पिता की समझदारी और सूझ-बूझ से टल गया। मेरा सम्पर्क राजेन्द्र-सीमा स दुआ-सलाम तक रह गया।

पिछले दिनो सीमा (अपनी शादी के बीस वर्ष बाद) अचानक फोन कर मिलने आई। वह अकेले में मिलना चाह रही थी और वह भी 2/3 घटो के लिए अत मेरा माथा तो ठनक गया था, पर जो बातें सुनी, उसके लिए तैयार न था।

सीमा आकर पहले तो फफक-फफक कर बहुत रोई। मैंने रोने दिया ताकि हल्की हो जाय। बाद मे हाथ-मुह पोछ, कुछ आश्वस्त हो बोली 'राजेन्द्र व मेरा डाइवोर्स हो रहा है।"

मैं सुनते ही धक रह गया। बीस वर्ष पूर्व माता-पिता के सस्कारो एव इच्छाओ के विरुद्ध उनके परिवार में पहला लव मैरज कराने मे मेरा हाथ था। अब राजेन्द्र के माता-पिता तो दुनिया मे थे नही, फिर भी बाकी भरा पूरा परिवार था और उन सबका सामना करने का अब मेरा हौसला न था। फिर भी मैंने सीमा की बात जाननी चाही।

'अंकल, पहले 2/3 वर्ष विवाह के बाद तो जैसे स्वर्ग मे गुजर हो, ऐसे चले गए। राजेन्द्र मुझे पलको मे रखता था। सारी मन की इच्छाए पूरी करने की भरसक कोशिश करता। हम दोनो ने मिलकर अपने फ्लैट को खूबसूरती से सजाया। मित्र मडली आए दिन हमारे यहा ड्रिक डाम डिनर के लिए छाई रहती। फिर दोनों बच्चो का जन्म हुआ। बस उसके बाद से न जाने उनको क्या हो गया, जो कि वे फटे से दूर-दूर रहने लग गए। मैंने भरसक कोशिश राजेन्द्र को वापस अपनी दुनिया में लाने की की, पर अब तो माहौल यह है कि सुबह आख खुलते ही गोल्फ का बैग लेकर क्लब जाते हैं, वहीं से सीधे फैक्टरी

और रात को देर से 12-1 बजे सिर्फ सोने के लिए आते हैं, बच्चों से भी उनको कोई लगाव नहीं, वह पढ़ते हैं कि आवारागर्दी करते हैं—सारी देखभाल मुझे ही करनी पड़ती है और अब तो साल भर से   कहते-कहते सीमा का वापस गला भर आया।

पता चला कि राजेन्द्र किसी और युवती के फेर में पड़ गया है। कई बार रूठने-रोने झगड़ा फसाद करने के बावजूद परिस्थिति में कोई सुधार नहीं आया अतः हार कर डाइवोर्स की शरण ले रहे हैं।

कोई दो-तीन बार बुलाने के बाद राजेन्द्र झेंपता सा आया। मैंने उससे कहा, याद है बीस वर्ष पहले तुम दोनों शादी की व्यवस्था के लिए मेरे पास आए थे और मर मिटने को तैयार थे। अब तलाक के लिए भी मैं बीच में पड़ूं? क्या बात है? सही बताओ।

'बच्चों के होते ही सीमा का ध्यान सौ फीसदी मेरी तरफ से हट गया। वह अपनी ही दुनिया में रहने लगी। न कहीं डिनर में जाना न दोस्तों को बुलाना मैं तो लोगों को बहाने और एक्सक्यूज के मारे परेशान हो गया। आखिर मैं कोई बुड्ढा तो नहीं हो गया कि मुझे पार्टियों में न जाने का मन हो, न ही सैक्स का। पर उसे तो दीन-दुनिया में कोई परवाह ही नहीं रही। मैंने कई बार धीरे आहिस्ते और कई बार खुलासा कह दिया हर बार बच्चों को सामने कर देती है। कई बार सोचता हूं कि बच्चा मैं भी दूर इसीलिए रहने लगा हूं। अब आप ही बताइए कहां पुरानी छबीली व चुस्त सीमा और आज 60 किलो वजन, गहने-ओढ़ने, आनन्द भोग से परे। तो क्या मैं भी सन्यास ले लूं? उसे तो फुल टाइम काम मिल गया। धीरे धीरे मुझे क्लब व रेसकोर्स की आदत लगी फिर शराब व सिगरेट की। अब मेरी नई 'फ्रेन्ड' बहुत अच्छी मिली है। हम दोनों एक दूसरे के साथ चहकते हैं मेरा जी हल्का रहता है, विचारधारा भी एक ही है। जीवन साथी की 'कम्पेटिबिलिटी' न हो, तो जीवन में क्या सुख है? और हां वह भी अपने पुराने विवाह को तलाक दे चुकी है, अतः हम दोनों ने एक नई जिन्दगी बनाने का विचार किया है।'

राजेन्द्र ने यह गाथा कोई 5-7 मुलाकातों में बनाई थी। बहरहाल सूत्र यही था। मैं सोच में पड़ गया कि एक अच्छे-खासे विवाह को छिन्न-भिन्न न होने दे, रास्ते पर वापस कैसे लाऊं? मैंने अपनी वस्तुस्थिति अपने मित्र एवं वैवाहिक समस्याओं के चिकित्सक श्री गायतोंडे को बताई और वे मेरे आग्रह पर उन लोगों की मदद को तैयार हो गए। पहले उन्होंने सर्जरी चिकित्सा सीमा से शुरू की। यदि शमा ही जलती न रहे तो परवाना आएगा किस तरह? उसे समझा कर राजी किया कि अगले 4-5 महीनों में करीब 10 किलो वजन कम करे, बच्चे अब बड़े हैं सो उन्हें आत्म निर्भर धीरे-धीरे बनाया जाय। जिन्दगी की पहली

व अन्तिम खुशी पति के साथ है, बच्चा के साथ नहीं । बच्चा का यह जाहिर होना चाहिए कि माता-पिता उनसे प्यार करते हुए भी पहले एक-दूसरे को प्यार करते हैं। पति-पत्नी को आपस मे कोई आवश्यक कार्य हो तो कमरा बद कर या बाहर जाकर करना चाहिए, चाहे बच्चो का होम-वर्क या शिकायत दो-चार घटो के लिए मुलतवी रखना पड़े । उसे मेक-अप और साफ सुथरेपन के अलावा यह समझाया कि उसे अपना जीवन न तो बच्चो और न ही पति पर सम्पूर्ण तया केन्द्रित करना चाहिए जिससे कि उन दोनो मे से एक का भी ध्यान व स्नेह न मिले तो वह अपने को दु खी व बेसहारा समझने लग जाय । अत हर व्यक्ति को नितान्त आत्मनिर्भरता की ओर जाना चाहिए, जिसका मतलब स्वार्थ या बेरुखेपन से नही है। सीमा राजेन्द्र को अपनी निजी सम्पत्ति समझना छोड दे कि वह कब आता है कब जाता है, कहा उठना-बैठता है किसके साथ है आदि ।

कुछ दिनो बाद राजेन्द्र को डा० गायतोडे ने समझाया कि कोई गारटी नही है कि उसकी वर्तमान मित्र जो एक विवाह छोड चुकी है दूसरा न छोडेगी। नए व्यक्ति और नए वातावरण की खुमारी जब मिट जाएगी तो वह भी राजेन्द्र के गुण-दोषो की छान-बीन करने लगेगी और उसे अपनी मर्दानगी का सिक्का जमाना है अपने ही मन मे तो सीमा मे क्या खोट है ? वैसे आदमी का मन रोज नित नवेली की तरफ दौडता है और शारीरिक भोग से किसी को भी तृप्ति नही मिलती जितनी आग मे आहुति पडेगी, उतनी ही आच और भडकेगी।

बहरहाल इस दरम्यान नई लडकी का दबाव राजेन्द्र को अपनी बीबी-बच्चे, घर-परिवार को छोडने इस कदर बढ गया था कि वह बार-बार वादा कराके ही राजेन्द्र को अपना शरीर छूने देती । राजेन्द्र गहरे सोच मे पड गया और उसने सीमा व परिवार को ही एक मौका और देने का निश्चय किया ।

आज उस बात को 5/7 वर्ष हो गए हैं। सीमा व राजेन्द्र वापस एक ही पटरी पर आ गए हैं और उनकी जीवन नैया सुचारु रूप से चल रही है । काच टूटते-टूटते बचा ।

18

पर निन्दा कुशल बहुतेरे

टर्की (मुर्गीनुमा पक्षी, जिसे क्रिश्चियन लोग क्रिसमस, 25-दिसम्बर को पका कर खाते है) एक दिन अपने समूचे परिवार को लेकर एक पहाडी की ओर बढी। ये सभी रोज-रोज धान के दाने खा-खा कर ऊब चुके थे। खासतौर से नवयुवक पीढी की टर्किया जीवन मे नित्य-नवीन चीजें चाहती थी, क्या एक सा ही खाना और सादा बोरियत का रहना। सो मा अपनी टर्की पलटन को ले चली। पहाडी पर थोडी दूर पर देखा कि एक पेड की जड के पास हजारो की तादाद मे छोटी-छोटी काली चीटिया अपने बिल मे से निकल पेड पर चढ रही थी। टर्की ने उन्हें चोच मे भरकर खाना शुरू किया। नई चीज होने के नाते स्वाद लगी सारा परिवार फाइव स्टार होटल की इस मेन डिश को खाते-खाते भी नही अघाया। छोटी टर्किया तो नाचने-फुदकने लगी, बहुत मजा आया। जब खूब पेट भर गया, तो धीमी गति से वापस घर जाते मा ने सारे बच्चो को कहा—'देखो तो यह मानव जाति कितनी क्रूर है। क्रिसमस आया नही कि हम को मार कर खा जाते है।" बच्चे भी हा मे हां मिलाते चले, उन्हें कोई फिक्र नही लगी, क्योकि एक तो क्रिसमस बहुत दूर था और आए तो भी दुनिया मे असख्य टर्किया हैं, उनका नम्बर थोडे ही आएगा? यक्ष को युधिष्ठिर ने कहा कि प्रति पल एक के बाद एक लोग यमालय जा रहे है पर हमे तो यही लगता है कि हमारा नम्बर तो कभी नही आएगा। इतने मे ही एक चीटी कुछ दूर से बोली, 'सौ चूहे खाकर अब बिल्ली हज को चली।"

पटने मे लाला बासुदेवशरण सिविल लाइन्स मे एक बडी शानदार कोठी मे अपने परिवार के साथ रहते थे। दूसरे महायुद्ध के बाद अपनी जवानी मे कलकत्ते मे लालाजी ने करोडो रुपये कमाए थे और 64 65 की उम्र मे जब शरीर का वजन 120 किलो एव बैंक बैलेंस का वजन उससे भी अधिक हो गया था, तो पटने रहने लगे थे। बाकी चारो लडके बम्बई-कलकत्ते मे अभी भी व्यापार मे थे। लालाजी शुरू से ही धर्मभीरु थे, रोज मदिर जाने का उनका

नियम आज 45 वर्षों मे निभ रहा था। दूरदराज म साधु पडे सत उनके यहा आते, मवका बहीखातो मे 11/- से 101/- तक वार्षिक चढावा निश्चित था, अत लालाजी की डयोढी मे निकल मुनीम उन सबको नियमित रकम दे देता। मोहल्ले वालो के बहुत जोर देने पर सिविल लाइन्स मे एक लक्ष्मीनारायण मदिर भी बनवा दिया था। अत लालाजी की जीवनचर्या खूब शान व आनन्द स चल रही थी। उनकी पत्नी 3-4 वर्षों पूर्व देह त्याग कर चुकी थी, अत लालाजी अब साधु-सतो को अधिक बुलाते और उनसे प्रवचन सुनते ताकि समय कट जाए। शहर मे उनके प्रति अब बहुत मान व आदर हो गया था।

एक बार उत्तरकाशी से एक बडे महन्त आए हुए थे। लालाजी स 4-5 दिनो तक काफी भगवद् चर्चा रही। बात ही बात म लालाजी ने उनको कहा "महाराज जमाने को क्या हो गया है देखो जिधर ही चरित्रहीनता नाच रही है। बच्चे जरा से बडे क्या हुए, नाच-गानो सिगरेट-ह्विस्की के चक्कर मे पड जाते हैं। और तो और साले—दफ्तर के प्यून—क्लर्क भी उधार लेते समय जो तीन महीनो मे वापस चुकाने का लिखित वादा करते हैं, बाद म साल दो-साल तो देते नही।"

महन्तजी ने कहा 'लालाजी, दुनिया का बोझ बटोरोगे, तो कमर टूटने के अलावा कुछ नही मिलेगा। सब अपना अपना दामन साफ रखें, दूसरे क्या करते हैं और क्यो, इसकी तलाश बच्चा है बेकार है।" बात समाप्त हुई।

लालाजी ने अपनी कोठी से कुछ ही दूर पर एक छोटा मकान किराये पर ले रखा था जहा वे अपनी पत्नी के भाजे व उसकी बीबी निरुपमा को रखते थे। भाजा गरीब घर का था, सो लालाजी के यहा काम करता था, निरुपमा एक खूबसूरत जवान औरत थी। चर्चा के बाद टहलते टहलते लालाजी वही गए उनके आते ही भाजेजी टहलने निकल गए और लालाजी निरुपमा को कमरा बन्द कर अपनी गोद मे बैठा सहलाने लगे। यह रिश्ता कई वर्षो से चला आ रहा था, आखिर गरीब थे क्या करते ?

उदाहरण हमे अपने व दुनिया के अनगिनत मिल सकते हैं। टर्की हजारो-लाखो चीटियो का नाश्ता करते ही आदमी को कोस रही थी कि क्रिसमस म हमारी खैर नही। *कितनी कमीनी जात है आदमी की। लालाजी* दूसरो के चरित्र के बारे मे चिन्तित रहते ही थे, दुनियादारी म अत्यन्त निपुण थे, इस-लिए खोखले होते हुए भी समाज म इज्जत व मान था। दूसरो पर अगुली उठाना कितना आसान है !

हमारे देश मे एक अजीब किस्म की बीमारी हर दिल और दिमाग़ मे है। हम किसी का उदय होना सहन नही कर सकते। जहा एक सुनील गावस्कर

या बी० पी० सिंह होगा, वहा उनको मटियामेट करने अथवा उन पर कीचड़ उछालने, हजारो लोग खड़े हो जाएगे। यह हीन व कुंठित व्यक्तित्व का कारण है, जो दूसरो के बेहतर अस्तित्व को सहन नही करता। सौ तरह की बातें बनाई जाती हैं, लाछन लगाए जाते हैं। अगर हम केवल अपने आपको देखें तो बेदाग कोई नही मिलेगा। आज यही मनोवृत्ति हमारे देश की प्रगति के रास्ते की सबसे बडी रुकावट बन रही है।

राजीव गांधी ने एक पुराने प्रचलित मजाक को कुछ समय पूर्व दोहराया कि एक पार्सल मे पचासो केकडे (क्रेब्स) न्यूयार्क निर्यात के लिए भेजे गए। रास्ते मे डिब्बे का ढक्कन टूट गया, पर सारे के सारे, केकडे मौजूद पाए गए। सबको बडा आश्चर्य हुआ कि एक भी केकडा निकल कर भाग नही सका। जब भारतीय चरित्र का विवेचन हुआ, तब जाहिर हो गया कि कई केकडो ने डब्बे से बाहर निकलने की भरपूर कोशिश की, पर एक भी ऊपर चढने की कोशिश करता, तो दस उसे पकड कर वापस नीचे पटकने लगते। निकलना कैसे होता? यही हमारे सामूहिक आघात का मूल रहस्य है।

हम किसी मे जरा सा दोष देखते हैं तो दो बातो का पर्दा फौरन आखो पर चढ जाता है। एक तो उस व्यक्ति के बहुत सारे गुण हम नही देख पाते, जैसे चन्द्रमा मे कलक लगा हो और उससे भी बदतर, वैसे ही दोष हम मे सैंकडो गुना हो, उन्हें नजर अन्दाज करते है। (इससे अधिक चरित्र का दोगलापन क्या होगा?) गुलाब मे कांटा है, तो क्या आप उसे फेंक देंगे? यह क्यो नही समझते कि गुलाब मे कांटा नही कांटो मे गुलाब है?

क्या हमे स्वार्थ एव अहभाव ने इतना दबा दिया है कि हम व्यक्तिगत व सामूहिक तौर पर कोई भी अच्छा गुण व कैवल्य देख नही सकते? क्या भारत मे रहने वाले हिन्दू, मुसलमान, क्रिश्चियन, बौद्ध, सिक्ख आदि धर्मों के अनुयायियो को अपने-अपने धर्मों व सम्प्रदायों में कोई भी मूल समानता व बन्धुत्व नजर नही आते? क्यो सभी ईर्ष्या व द्वेष के अवतार भिण्डरावाले बनना चाहते हैं? केवल सत की पदवी लगा लेने से मन की भावनाएं बदली नही जा सकती। हमे क्या अधिकार है कि हम केवल अपने को ईश्वर के विशेष दूत व खुफिया पुलिस अफसर समझें और सभी के व्यक्तिगत जीवन के दोषो को जानने की कोशिश करें? इस घृणित कार्य मे जो समय व शक्ति बर्बाद होती है, उसका एक अश भी हम स्वय को सुधारने की कोशिश करें, तो बडी भारी सार्थकता हासिल की जा सकती है।

किसी के भी व्यक्तिगत जीवन को झांकने व उस पर फिकरा कसने का अधिकार किसी और को नही है। भगवान बुद्ध एक वेश्या के यहा कई बार

जाते थे। हम मे से "पहला पत्थर" वही फेंक सकता है, जो स्वय पाक व बेदाग हो। हमारी यह भावना हीनता व स्वार्थ के कारण है। किसी मे खुले आम बुराई दिखती भी है तो याद रखना चाहिए कि हर बुरे आदमी मे एक बुराई के साथ ढेरो अच्छाइया है, और दूसरी बात भी। भले-बुरे का फल करने वाले को स्वय अपने आप अवश्य मिलेगा यह वैज्ञानिक सिद्धान्त है। फिर हम क्यो चाबुक अपने हाथो ले ?

भारत पिछडा है, इसी एक आक्रामक चाल-चलन से। जिस देश मे 'सगच्छध्वम् सवदध्वम्' की ध्वनि प्रत्येक गली-कूचे मे गूजती थी, वहा आज सभी एक दूसरे को मटियामेट 'सध्वसध्वम्' करने पर तुले है। हम आगे बढे भी तो कैसे ?

19

मायूसी के दलदल में क्यों उलझे हैं हम लोग ?

आज हम अपन चारो तरफ नजर दौडाते हैं तो निराशा, कुंठा, आक्रोश, क्रोध, उदासी व मन-मारा वातावरण पाते हैं। केवल अमेरिका व पाश्चात्य जगत मे ही नीद की दवा, डिप्रेशन मिटाने की गोली, अल्सर की खुराक व ब्लड प्रेशर के इलाज को घर-घर मे नही पाते, भारतीय शहरी जीवन मे भी ये नीची कोटि की भावनाए फैल गई हैं। कभी कभी तो यह लगता है कि जाति के आधार पर प्रचलित छुआछूत मे तो हम सब निपुण हैं, पर अपने द्वारा पैदा की गई इन तुच्छ व अछूत मनोवृत्तियो का हम दिन-रात स्वागत करते हैं। यह छूत मारवाडी ब्याज जैसा है, जिसके चक्कर मे आकर आदमी दलदल से निकल नही पाता। एक हीन-भावना का हम डाक्टरी उपचार करायें तो दूसरी उभर आएगी क्योकि बिना कारण को समूल उखाडे चारा नही है। दूसरी प्रवृत्ति यह है कि इन गोलियो की धीरे-धीरे इतनी आदत पड जाती है कि एक तो इसके बिना हम जी नही सकते और दूसरे इनकी खुराक बढती जाती है।

बम्बई के एक पुराने लब्धप्रतिष्ठ फर्म मे दो भाई भागीदार थे। खूब अच्छा धधा था कागज के बाजार मे और जब भी सुन्दर प्रिंटिंग का मसला खडा होता, तो सरकारी या निजी क्षेत्र के बडे प्रतिष्ठान इसी फर्म की सलाह से काम करते। अनेको पदक, कप, सर्टिफिकेट फर्म के दफ्तर मे लगे हुए थे इनकी निपुणता की निशानी के तौर पर। कोई दो वर्ष पूर्व इस फर्म को भारत सरकार के एक अमेरिका म होने वाले बडे उत्सव, जिसमे देश भर की सस्कृति के अनुरूप कला प्रदर्शनी और वर्तमान समय मे बनने वाली औद्योगिक वस्तुओ के आयोजन हेतु एक विशिष्ट स्मारिका के लिए 50 लाख रुपयो का आर्डर मिला। शर्त यही थी कि उत्सव शुरू होने के 15 दिन

पूर्व पुस्तकें वाशिंगटन मे उपलब्ध हो। कलापूर्ण डिजाइन, साज-सज्जा से परिपूर्ण यह एक बहुत ही प्रतिष्ठा का आर्डर था। बडे भाई कमल नाथ ने इसकी अपने ऊपर जिम्मेदारी लेकर छोटे पद्मनाथ को बाकी के सामान्य धधे की दी।

कमल नाथ ने पहले ही पन्द्रह दिनो मे जी-जान स कोशिश व दौड-धूप कर भारत व विदेशी कागज की व्यवस्था की, क्योकि रगीन चित्रो की प्लेटें बनने व स्मारिका को छपने मे कुल 2 महीने लगने वाले थे। छपाई का काम भिवण्डी (बम्बई का एक उपनगर) स्थित भारत के एक सबसे बडे मुद्रणालय सेमसन प्रेस को दिया गया। ज्यो-ज्यो दिन नजदीक आते गए सरगर्मी बढती गई। प्रकाशन मे यथोचित प्रगति भी हो रही थी, हलाकि सारा प्रूफ भारत सरकार के कला-प्रकाशन विभाग के अधिकारी देखते थे। खैर .

प्रदर्शनी अमेरिका मे 15 सितम्बर को खुलने वाली थी और अगस्त के प्रथम सप्ताह मे गणेश-चतुर्दशी का उत्सव था। महाराष्ट्र मे गणेशजी का उत्सव बडे पैमाने पर मनाया जाता है। जुलूस निकलते हैं, बाजे-गाजो, रग व पानी के साथ क्योकि "गणपति बाबा" को अगले वर्ष का आह्वान देते-देते समुद्र मे विसर्जन किया जाता है। भिवण्डी मे साम्प्रदायिक तनाव आए दिन रहता है, एक चिन्गारी उठी और भयकर दगे, आगजनी, लूट-पाट मे सेमसन प्रेस का भारी नुकसान हुआ। कमलनाथ के तो मानो धरती खिसक गई।

सौ बात की एक बात यह है कि अन्त मे इनको बहुत बडा नुकसान हुआ इस सौदे मे। स्मारिका समय पर प्रकाशित नही हो सकी। दोनो भाइयो मे इस घटना को लेकर नोक-झोक व मन-मुटाव हुआ। कमल दिनो-दिन सुस्त व ग्लानि-युक्त रहने लगा। ऐसे समय मे बोतल उसकी साथिन बनी। पत्नी, बच्चे, भाई, परिवार व धन्धे को वापस खडे रहने की हिम्मत ..सभी से उसने मुह मोडना शुरू किया। सबने लाख समझाया, पर अब सुबह 11 बजे से घूट गले के नीचे होने लगता है, जो रात को बिस्तर पर पटक कर ही थमता है। पद्मनाथ ने छोटे पैमाने पर फिर से लगन लगा कर काम शुरू किया है, उसकी पैठ धीरे-धीरे बाजार मे वापस हो रही है। कमल का डिप्रेशन उसे अगले 2/3 वर्षों मे कहा ले पटकेगा, डाक्टर भी नही कह सकते।

दीपा एक पुराने विचारो के परिवार मे ब्याही है, हालाकि उसके माता-पिता आधुनिक विचारधारा के है। सयुक्त परिवार मे उसके पति सुरेन्द्र अपनी मा, भाइयो व उनके परिवारो के साथ रहते हैं। अच्छा खाता-पीता घर है, धन्धे रोजगार मे सब भाई शामिल है, उनकी विधवा माता रुक्मिणी के कहने व दबदबे मे अभी सभी बेटे है। छोटे मकान मे रहने के कारण रात को

अपने कमरे की बन्दगी के अलावा कोई एकान्त नहीं है, जहां बहुए अपने-अपने पतियों के साथ घर-गृहस्थी व दुनियादारी की गप्पें कर सकें। घर की रोकड़ मांजी अपने पास रखती हैं, उनकी अपेक्षा यही रहती है कि सभी बहुए सुबह कम से कम 6 बजे उठकर घर का काम व कुछ नित्यकर्म किया करें। वे जब प्रात 5 बजे नहा-धो कर तुलसी के गमले की परिक्रमा कर अर्घ्य देती हैं, तब कभी-कभी उनकी आखें नम हो जाती हैं जमाने की गति को देखकर। आस-पास की हम उम्र की औरतें दोपहर को गप्पों के लिए आती हैं, तो अक्सर अपने-अपने घर की बहुओं की आलोचना के सिवा एव पुराने जमाने की सुख-शांति की चर्चा कर वे अपना समय काटती हैं। बहुए सास के इस व्यवहार से बहुत क्षुब्ध रहती हैं, उनमें से दीपा के मन की कमजोरी ऐसी है कि वह मन ही मन कुढ़ती रहती है। जो व्यक्ति अपनी कोमल भावनाओं को दिन-रात ऐसे विषाद व कुंठा मे घेरे रखते हैं, उन्हे अन्दर ही अन्दर घुन लगने लगता है। उसके पति इस "परेशानी" को हसकर टाल देते हैं, दीपा को एकान्त मे समझाने की कोशिश करते हैं, लेकिन वह अपनी प्रकृति से लाचार है। महीने मे एकाध बार गुस्सा बच्चों पर या पति पर निकलता है।

इसी घुटन के कारण दीपा को 40 वर्षों की उम्र मे ही पहले एसिडिटी (आम्लपित्त) हुई जो बढ़ते-बढ़ते माइग्रेन (आधे सिर मे भयकर जान लेवा दर्द) के रूप मे हावी हो गया। इसी कुचक्र में वह चिड़चिड़ी हो चली, उसके चेहरे पर हसी एकदम गायब। एक दिन पति को किसी काम के सिलसिले मे घर से तैयार हो जल्दी जाना था। नहाकर आया, तो अल्मारी मे कपड़ो का पता नही, जो मिले पहने, तो नाश्ता नहीं। उसने दीपा को उलाहना दिया कि वह आजकल इतनी लापरवाह क्यो हो रही है?

बस, भरी हुई तो रहती ही थी, दीपा आक्रोश के मारे "अब मुझे सभी सुनाने लग गए" कह कर अपने बाथरूम मे बद हो, दो घंटे बुत की तरह बैठी रही। पित्त बढ़ने से खाली पेट उल्टी की हाजत भी हो, और कुछ निकले भी नहीं। पति बड़े परेशान, दीपा का मन जरा सा बुझे नहीं कि उसका मूड कई दिनो तक खतम। उसके माथे की नसें इतनी कमजोर हो गई कि उसे किसी का कहना-सुनना बर्दाश्त न होता। जब-जब पति पत्नी एक साथ कहीं सैर-सपाटे को जाते, उसका सारा आक्रोश पति पर निकलता। जैसे सास चाहती थी कि दीपा मेरी पसन्द के अनुसार बने, वह उम्मीद करने लगी कि पति भी उसके स्वय के मन के अनुकूल हो। आज दीपा ब्लड प्रेशर मे ग्रस्त है और उसके जीवन मे हसी व सुख नाम की कोई चीज नहीं है।

आइए दोनो प्रसगो पर एक विवेकपूर्ण नजर डालें। कमलनाथ का अच्छा खासा व्यवसाय था, यदि एक विपत्ति आ भी पड़ी और लाखो का नुकसान हो भी

गया, तो उसी को धीमी मौत की तरफ क्यो जाना पडा ? जीवन मे अनेक ऐसे अवसर हर किसी के आते हैं, जब आदमी को बिल्कुल उजाला सूझता ही नही। परन्तु पशु-पक्षियो एव इन्सानो मे यही तो फर्क है कि आदमी अपने धैर्य, विवेक व सूझ-बूझ से नई मजिलें नापता है। उसका भाई आज भी पुरजोर काम मे लगा है। उसके चेहरे पर न शिकन है, न मन मे हतोत्साह, और उसे अपनी बदली हुई परिस्थिति किसी से भी छिपानी नही पडी, क्योकि उसकी निष्ठा व ईमानदारी देख सभी धीरे-हौले उसे माल देने तैयार हो गए।

दीपा यह नही सोचती कि भगवान ने इतना सुख दिया है कि भरे-पूरे परिवार मे पति व बच्चो के साथ है कि दुनिया म करोडो लोग भूखे-नगे गटरो मे रहते हैं। उसे पाचो ज्ञानेंद्रियो याने आख से दीखने वाले लाखो करोडो दृश्य का कोई बोझ नही लगता, नाक से पता चलने वाली सुगन्ध-दुर्गन्ध उसे देर नही सताती, जीभ के स्वाद के आसरे औरो की तरह वह चलती है, त्वचा को सर्दी-गर्मी लगती है तो वह सहन करती है, तो फिर कान से "सुनने" पर इतनी क्यो बोझिल हो जाती है ? उसे समझना चाहिए कि दुनिया मे कोई भी व्यक्ति, स्वभाव व गुण से जल्दी से बदल नही सकता फिर दु ख व मायूसी क्यो ?

इन्दौर मे म० प्र० दृष्टिहीन सघ केन्द्र मे बसने वाले करीब 200/300 नेत्रहीनो को सम्बोधित करने का दायित्व पिछली 26 जनवरी को लेखक को मिला। दुनिया मे हर तरह के लोगो से बातचीत या भाषण किया जा सकता है, पर नेत्रयुक्त होने से मुझे बडी कशमकश हुई कि उनकी दुनिया व मानसिक विचार-धारा से साफ अछूता होने के कारण उन्हें क्या कहू ?

एक बात सौभाग्य से सूझी। उन लोगो से कहा गया कि मानव का सचार पाँच ज्ञानेंद्रियो पर आधारित है। 5 मे से किसी के 4 है, तो 80 प्रतिशत नम्बर तो फर्स्ट क्लास से भी अधिक है और आख ही ऐसी इन्द्रिय है जो दुनिया भर के पाप देखती व कराती है। लडाई, झगडा, द्वेष, हिसा आदि आख से देखकर ही विकृत मन कराता है। तभी तो प्रार्थना, पूजा-ध्यान, सोते समय आख बन्द रहती है और इस जीवन की शान्ति इन्ही क्षणो मे मिलती है। नेत्रहीन इस बात को सुन काफी सतुष्ट हुए।

हम सब जानवरो व पक्षियो को देखने चिडियाखाने जाते हैं, तब बन्दर को मूगफली, साप को दूध व मछली को दाना ही डालते हैं क्योकि हम उनके स्वभाव व गुण को समझते हैं। हम जानते हैं कि स्वभाव से शेर खूखार व गाय सीधी भली होती है। अत उनके स्वभावानुकूल व्यवहार पर हमे रज या आश्चर्य नही होता। फिर हम कैसे उम्मीद करें कि सास या पत्नि अपना स्वभाव किसी के लिए बदलेंगे।

आशय यह नही है कि महिलाए गास की बात न सुने न देखें। केवल समझने की जरूरत है। यह मत्र सभी पर लागू पड़ता है। "गुणा गुणेषु वर्तन्ते" का गीता का बोल यदि हम समझ पाए तो हमारी सारी अन्दरूनी कशमकश व निराशा दूर हो जाएगी।

इसका मोटा अर्थ यही है कि हम अपने-अपने स्वभाव व गुणो के अधीन व परवश हैं। किस समय कोई व्यक्ति क्या बोलता है, उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया क्या है, क्रोध क्यो आया—ये सभी उसके उस क्षण की मानसिक जमा-पूंजी पर आधारित हैं। हम सारी दुनिया को, विशेषकर अपने घरवालो व निकट सम्बन्धियों को अपने मन विचारो के अनुकूल देखना चाहते है। यही मानसिक तनाव, सघर्ष एव डिप्रेशन शुरू होते है, जो समय पाकर हमारे सदा के मेहमान हो जाते हैं। आदमी केवल अपने को बदल सकता है, दुनिया को नही। जिस दिन यह समझ मे आ जाएगा, दुनिया अपने को खाने नही दौड़ेगी।

मानव के ऊपर मूल्यो मे एक विशेष दायित्व है प्रफुल्ल व प्रसन्न रहना। यह हर परिस्थिति मे रहा जा सकता है, बशर्ते हम इसे समझने की कोशिश करें। सृष्टिकर्त्ता ने हमें अपार सम्पदा दी है, उसे भूले नही। नियन्ता के प्रति आभार व कृतज्ञ अगर हम नही हो, तो इससे बड़ी कृतघ्नता क्या होगी ?

20

बात-बात में खीज

उस दिन दो जान-पहचान वालों के विवाहों के अलग-अलग स्वागत समारोह 7 से 8 30 के बीच थे। एक चर्चगेट के पास तो दूसरा शिवाजी पार्क में। अत ठीक 7 00 बजे निकलकर ही दोनों स्थानों पर जाया जा सकता था। विनोद दफ्तर से आकर, हाथ-मुह धो, कपड़े पहन, तैयारी की मुद्रा में बैठक के कमरे में व्यग्रता से चहल-कदमी कर रहा था। सुबह जाते समय पत्नी सुधा को, टोस्ट व अंडा देर से आने पर जली-कटी सुना कर गया था। बेडरूम का दरवाजा खटखटाने से खुला, देखा अनमनी मुद्रा में अंधेरे में सुधा खड़ी खिड़की से बाहर झांक रही थी।

"चलोगी नहीं क्या—देर हो गई है।"—विनोद घड़ी देखते हुए बोला।

"मूड नहीं है—आप ही जा आए।"

"पर दूसरों का शादी-विवाह कोई अपने मूड पर चलेगा? कोई पिक्चर देखने तो चलना नहीं है कि आज नहीं गए तो कोई बात नहीं। क्या विवाह बार-बार होते हैं?"

"कह दिया मुझे नहीं जाना।"

"तो उनसे क्या कहूंगा, अकेले कैसे आना हुआ?"

"तबियत का बहाना बना दें।"

यह विनोद व सुधा के रोजमर्रे का किस्सा था। नौका की पतवार हमेशा तुनक-मिजाजी के हाथ में रहती। साधारणतया सुधा एक अत्यन्त संवेदनशील व उदार हृदय की महिला थी। किसी भी अपने-पराये की किसी भी तकलीफ के बारे में सुन लेती, तो अपने सहज स्वभाव से भरसक प्रयास करती कि उसके हाथों जो मदद हो सके, वह करे। कोई जान-पहचान का व्यक्ति अस्पताल में बीमार हो, दोपहर को साड़ी का पल्ला कमर में खोस, घर का काम निपटा थोड़ी देर मिलने व तबियत पूछने जरूर जाती। पड़ोसी का बच्चा बीमार कि वह अपनी दवा की पेटी से गोलियां निकाल उसके यहां पहुंच जाती। सभी

जगह उसके इस स्वभाव की तारीफ थी। पर विनोद के मामले मे, पता नही क्यों, जाने-अनजाने सनक-मिजाजी रहती। उसके कमीज मे बटन टूटा है या नही, यह कमीज दफ्तर जाते समय पहनने के बाद झुझलाए पति के कहने पर ही लगाती। विनोद नाश्ता करता उस समय चूल्हे पर चावल-दाल कुकर मे चढा रसोई का काम करने की उसकी आदत पड गई थी। ऐसी ही छोटी-छोटी बातो से उनमे हल्की तेवरबाजी व असतोष के कारण दोनो अनजाने मे एक-दूसरे से अलग हो रहे थे।

किशोर एक मध्यम श्रेणी की कम्पनी मे आफिस मैनेजर था। मैनेजिग डायरेक्टर बजरगलाल की आदत थी कि चाय पानी, डाक-तार-टेलीफोन बस भाडा, कर्मचारियो के समय पर आन न आने पर सतर्कता से दृष्टि रखते और प्राय हफ्ते म एकाध बार किसी न किसी मुद्दे पर किशोर पर डाट पड ही जाती। बजरगलाल अग्रेजी की कहावत— पेनी वाइज पाउण्ड फूलिश '— क अनुसार जहा हजारो-लाखो की बचत हो सकती, उन मुद्दो पर ध्यान न दे चौकीदारी की तरह छोटी-छोटी बातो मे उलझा रहता।

एक दिन किशोर को साताक्रुज एयरपोर्ट पर किसी आन वाले मेहमान को ले होटल पहुचाने को कहा गया। मालिक के स्वभाव से परिचित होने के कारण वह लोकल ट्रेन से गया, जो किसी कारणवश लेट हो गई। जब स्टेशन से एयरपोर्ट पहुचे, प्लेन आकर सारे यात्री जा चुके थे। घबराया खिसिआया किशोर अपने बचाव हेतु बयान मन मे कई बार घोट चुका था। बजरगलाल का तेवर तो पहले ही मेहमान (जो सीधे दफ्तर तलाश करते पहुच गया था) से हकीकत सुनते ही खराब था, दूसरे दिन किशोर का हिसाब कर दिया गया। दफ्तर में बाकी कर्मचारियों को इस असगत व्यवहार से धक्का लगा, पर बजरग को कहे कौन ? परिस्थितिया ऐसी बन गई थी कि उस कम्पनी मे अब वे ही लोग नौकरी करते, जिन्हें और कही काम नही मिलता। धर्मशाला की तरह अपना काम करते रहते और दूसरी नौकरी मिलते ही छोड चले जाते। इसलिए न कम्पनी की तरक्की हो रही थी न ही प्रतिष्ठा। चारो ओर तनाव व खिचाव का वातावरण छाया रहता, लोग मुस्कराते तो भी इधर-उधर देख कर, हसने व ललकने की तो बात ही क्या थी ?

कल्पना करिए कि आपके बैंक खाते मे एक करोड रुपया सुरक्षित जमा है, जिसे न इन्कम टैक्स छू सकता है और न पति-पत्नी अथवा कोई रिश्तेदार। उसमे कभी हजार-पाच सौ खर्च भी हो गया तो क्या आप गुमसुम अथवा उदास होंगे ? इसी प्रकार भरा-पूरा परिवार, अच्छी खासी नौकरी-धधा, रहने को फ्लैट, चलाने को स्कूटर-मोटर सभी कुछ होने के बावजूद हम अपने मन को इतना अपग व असहाय बना लेते हैं कि बात-बात मे झुझलाहट, खीज,

गुस्सा, कुढना आदि घर-जवाई बन कर घेरे रहते है। वैसे तो बाजार मे ठोक-बजा दस रुपये की वस्तु भी सभाल कर लाते हैं, पर दस रुपये की गलती या अभाव मे करोड रुपये का दण्ड मन को क्यो ?

पति का जरा-सी बात पर क्रोध पर मुह फेर कर सो जाना, पडोसी के यहा जरा से हल्ले-गुल्ले या बच्चो के झगडे पर हम उसके प्रति आक्रोश, किसी ड्राइवर ने अपनी गाडी हमारी से आगे कर ली, उसकी ठेस घर थके-मादे आन पर पत्नी मैके से लौटकर दरवाजे पर मुस्कराहट लिए खडी नही मिली, उसकी नाराजगी, किसी ने आपकी सलाह पर फौरन अमल नही किया, उसका खौफ, नौकर मे चाय का कप टूट गया, तो चिल्लाना, दोस्ती मे जरा-सी गलतफहमी पर रिश्ते मे खिचावट—क्या-क्या नहीं होता हमारे जीवन मे पग-पग पर ?

जैसे रोज कपडे धोने या स्नान करने की जरूरत है, वैसे ही रोज सुबह उठते ही एकान्त मे अपने जीवन के बारे मे मनन की। बीते हुए कल की तमाम घटनाओ पर शान्ति से विचार करने पर आपको फौरन समझ मे आ जायेगा कि क्रोध या खीज इसलिए आते हैं कि हमारे स्वय के दिल मे यह भावना है कि मैं जो चाहूँ वही हमेशा हो। अपने को छोड बाकी सभी लोगो मे गलतिया व कमिया महसूस होती हैं, वास्तव मे यह स्वय की कमजोरी है। किसी ने आपको गधा या अन्धा कह दिया तो, या तो आपको दृढ आत्मविश्वास होना चाहिए कि आप वह नही हैं—नही तो आइने के सामने मुस्कराते खडे होकर देखिए कि गधो के कान या पूछ आपके हैं ? देखने की रोशनी यदि है, तो किसी ने "सौगात" दी, आपको स्वीकार करने की क्या जरूरत है ? जब किसी केस के मामले मे रजिस्ट्री लेकर डाकिया आता है, तब फट हम उसे लेने से इन्कार कर देते हैं। टेलीफोन आने पर मन न होने पर बच्चे या नौकर को—कह दो बाथरूम मे हैं—या बाहर गए हैं, आदि की स्वचालित टेप हरेक मे है। तो किसी ने किसी विशेष मन स्थिति के कारण आपके मिजाज के मुताबिक काम नहीं किया अथवा अपशब्द बोल दिए तो उन्हें स्वीकारा क्यो जाय ? मुमकिन है उसकी नजर मे उस वक्त आप गधे के स्वभाव को लिए हो ? पर क्या दूसरे की नजर से जीना है ?

साथ ही सोचिए कि जीवन मे आपको कितना सौभाग्य प्राप्त है। परिवार, नौकरी, हवा-पानी, धूप, शरीर, मन आदि सभी मौजूद। फिर क्यो बेवसी या अनमनापन ? इन्सान होने के नाते हमारा प्रथम धर्म है बुद्धि का प्रयोग व उसकी देख-रेख म व्यवहार, दूसरा धर्म है—सदैव मन की प्रफुल्लता व चेहरे पर मुस्कराहट। हम क्यो दिन भर अपन चाद से मुखडे पर चिडचिडाहट व थकान की मलिनता मेकप फेक्टर की तरह लगाए रहें ? यह कहा का फैशन है ?

आप प्रसन्न रहेंगे तो सारी दुनिया चहकती नजर आएगी। लोग आकृष्ट

होगे। और बात-बात मे तुनक-मिजाजी रखेंगे तो कोई भी आपकी ओर आमुख नही होगा। रास्ता आपके हाथो मे है। लोग अपने मन मे जिन्दगी का बोझ ढोते चले आते है। आप उन्हे पूछिए कैसे है ?

तो लम्बी सास लेकर, निभ रही है—अथवा कट रही है, किसी तरह।"

ऐसे लोग वास्तव मे बोझ ही है क्योकि न तो उन्हे जीने का हुनर आता है, न ही वे चाहते है कि और कोई आनन्द से जिए। अगली बार कोई पूछे तो कहिए, "बहुत आनन्द है—और इस समय आपसे मिलकर तो और भी अधिक।" धीरे-धीरे मन की भावना सदाबहार होती चलेगी।

21

हम कहां भटक गए ?

कोई तीनेक वर्षों पूर्व पढरपुर आषाढी एकादशी क मेले म जान का इत्तफाक हुआ । उन दिनो उसी क्षेत्र मे किसी मीटिंग के सिलसिले मे शोलापुर जाना था, सोचा इतने बडे उत्सव का लाभ भी मिलेगा क्योकि यह दिन महाराष्ट्र के भक्तो के लिए बहुत महत्वपूर्ण है, लाखो की तादाद मे स्त्री-पुरुष बच्चे दर्शनार्थ जमा होते हैं । वैस पहले से ही अदाजा था कि हिन्दुओ का कोई भी तीर्थ साफ-सुथरा तो है नही, क्योकि समाज के मापदण्ड के अनुसार सभी बडे छोटे तीर्थ एक बार तो कर ही चुका हू । हमारे यहा सस्ते दाम मे इज्जत व प्रतिष्ठा पानी हो तो तीर्थ कर आइए, दस पाच को आकर प्रसाद भिजवा दीजिए और फिर सारे समय चाहे जो पाप, अन्याय, दगाबाजी करते रहे कोई खास रुकावट नही होगी । 'फलाने का क्या कहना, वह तो बहुत धार्मिक है, हर पूर्णमासी पर सत्यनारायण की कथा करते हैं, 2-3 वर्षों मे तीर्थ हो आते हैं, हर साल पुरखो का श्राद्ध कराते है।" इसी लालच के मारे इधर-उधर पुण्य स्थलो के दर्शनो को जाता हूं, हालाकि अच्छी तरह जानता हू कि वहा की गरिमा आदि व गौरव तो अनुभव करना छोड, सुख शान्ति भी मिलेगी नही ? खैर...

पढरपुर मे उस दिन मानो सारी दुनिया टूट पडी थी । शोलापुर से ल गई मोटर को शहर मे घुसने के बाद धर्मशाला पहुचने तक दो घण्टे लगे । चारो ओर कीचड, गदगी का साम्राज्य था । सौ-पचास पुलिस वाले इसमे क्या व्यवस्था रख सकते, वे भी मेले-ठेले का आनन्द लूट रहे थे, वैसे इन दिनो ओवर टाइम बहुतेरा मिलेगा ही, सो सोने म सुहागा था । किसी तरह पहुचे और हाथ मुह धो, विठोबा के मन्दिर दर्शनार्थ निकले । सारे मन्दिर के रास्ते व चन्द्रभागा नदी के तट पर अनाप सनाप कूडा-करकट तो था ही, जगह-जगह लोग जहा मन हुआ (स्त्रिया भी) पेशाब पाखाना कर रहे थे । कोई जड भरत

जैसा स्थितप्रज्ञ ही होगा, जिसकी भावना ऐसे वातावरण मे शुद्ध व भावभीनी रह सके। हम जैसे सासारिक लोगो का तो बुरा हाल हुआ।

हकीकत केवल पढरपुर की ही ऐसी होती तो आसानी से वह नजर-अन्दाज की जा सकती है या सुधारी—पर आप बाबा विश्वनाथ के यहा वाराणसी जाइए या हर की पैडी, पुरी जाइए अथवा नासिक मे गोदावरी तीर्थ, वृन्दावन की कुज-गलियो मे राधा की तलाश मे जाए या अयोध्या मे श्रीराम के गौरव की, सभी जगह कमी-बेशी यही बेहाल है। केवल गदगी ही सो बात नही है, काला चश्मा आख पर व रूमाल नाक पर दवा आप येन-केन 'मोक्ष' की तरफ बढ सकें, तो व्यवस्था, भोजन, आवास, आवागमन के साधन इतने खराब हैं कि इन सबसे आप छुट्टी भी पालें तो पडाजी के आगे माथा टेकना ही होगा।

यह तो हुई तीर्थों की महिमा। अब जरा हम अपने चारो ओर होने वाले दाहसस्कार पर विचार करें। किसी न किसी शव-यात्रा मे जाने का मौका प्रत्येक व्यक्ति को पडता है, सभवत मनुष्य यह सोचता होगा कि मैं जीवन भर मातमपुर्सी व समवेदना मे भागी होऊ तो मेरी शव-यात्रा मे अच्छी-खासी भीड रहेगी। शहरो के श्मशान तो सबने देखे ही हैं, यहा जीवित प्राणी के लिए स्थान नही है, तो मरे हुए को क्या मिलेगा? लॉरिया, टैक्सिया, ट्रकें, मोटर, बस, पैदल नागरिक, पुलिस के सिगनल आदि से निकलते गुजरते किसी तरह श्मशान पहुचते हैं, तो मेला-ठेला बन जाता है। शव को नीचे रख कोई दाह के स्थान, कोई लकडी के लिए, कोई पण्डित व घी के लिए दौडा भागता है। शव यात्रा मे शरीक लोग अस्त-व्यस्त होने लगते हैं, तब तक क्रिया कर्म शुरू होता है। चारो तरफ शोर-गुल, गदगी का वातावरण रहता है, मरे को भी शान्ति कहा? इसके बाद के 12 दिनो के कर्मकाड व वार्षिक श्राद्धो के बयान के लिए न जगह है, न जरूरत। अब गरुड-पुराण के स्थान पर और क्या तरीका है, आगे देखें।

कोई पाच वर्ष हुए, लेखक के अन्तरग मित्र, श्री गोपालकृष्ण का असमय मे निधन हुआ। हिन्दू दाह-कर्म के उपरान्त, उपयुक्त समय पर बम्बई के सबसे भव्य चर्च मे उनकी आत्मा हेतु प्रार्थना व शान्तिपाठ हुए। गिरजे का साफ-स्वच्छ वातावरण, अन्दर जाते ही श्रद्धा व भक्ति का अभ्युदय, इतने बडे हाल मे कही शोर-गुल नही, यथा समय गीता के चुने हुए श्लोको का पाठ हुआ, तदनन्तर बाइबिल की कुछ ऋचाओ का। धीमा-धीमा सगीत बज रहा था। मन अपने आप जगन्नियन्ता के प्रति शुक दिवगत आत्मा की मुक्ति की प्रार्थना करने लगता है। वैसे भी रोम के सिस्टीन चैपल, न्यूयार्क के सेंट पीटर्स कैथिड्रल, लन्दन के सेंट पाल्स चर्च आदि किसी भी चर्च मे आप चले जाइए, हर जगह आपको एक अनुपम शान्ति मिलेगी। अन्दर लगी बेंचो पर बैठ एकाकी

ध्यान करना हो अथवा रविवार की सामूहिक प्रार्थना, इससे अच्छा सार्वजनिक स्थान मानसिक शान्ति के लिए कही नही मिलेगा। भारतीय शास्त्रों व उपनिषदों में पूजा व ध्यान एकान्त स्थान पर ब्राह्म मुहूर्त में करने का विधान है, उस समय न अधिक ऊंचा न अधिक नीचा, साफ सुथरे स्थान पर कुश, मृगचर्म व कपडे के आसन पर बैठ एकाकार होने का अभ्यास किया जाता है। यह पद्धति बेजोड व बेमिसाल है, जब व्यक्ति अपनी अन्तर्दृष्टि के सम्बल के माध्यम से अपना स्रोत खोजता है पर सार्वजनिक स्तर पर हमारे मन्दिरों की जो अवस्था है, वह आस्तिकों को भी मन्दिरों से दूर रखती है।

रोमन कैथोलिक चर्चों की एक विशिष्ट सेवा अत्यन्त उपयोगी लगती है। एक तो किसी के यहा मरणासन्न रोगी के पास पादरी बिना बुलाए व दक्षिणा के स्वयं अन्तिम प्रार्थना व शान्ति के लिए पहुच जाता है। हिन्दू समाज में तो गरीबों से दक्षिणा अग्रिम वसूल किए बिना पण्डितजी दाहकर्म के लिए तैयार नही होते। और फिर वे मन में किसी प्रकार उस प्रक्रिया को सल्टा देते हैं। इसके अलावा मनुष्य के जीवन में उठने वाले रोज के पाप-पुण्य की ऊहापोह व असमंजस निपटाने के लिए हर चर्च में "कन्फेशन" की सुविधा है, जहा हर आदमी जाकर अपना पाप कबूल कर मन का बोझ तो कम करता ही है, पर गुप्त स्थान पर बैठे पादरी के सामने फिर से गलती न करने का वायदा करता है। अपनी भूल स्वीकार करना हम लोगों के लिए सबसे कठिन काम है। आधा पाप तो वही खत्म हो जाता है, पर कोई करे तब न? चर्च में भक्ति सगीत का सामूहिक वाद्य-गान होता है, तो चाहे कितना ही तामसिक व्यक्ति क्यों न हो, एक बारगी वह भी अपने क्रूर व स्वार्थी स्वभाव को भूलकर श्रद्धा से जाता है। भारत की एक विशिष्ट सन्त महिला आनन्दमयी माँ इसीलिए क्रिश्चियन भक्ति सगीत पर अत्यन्त मुग्ध थी। हमारे जगत में सगीत व भजन की कोई कमी नही फिर भी किसी मन्दिर मे चले जाइए, आख बन्द रखेंगे तो चौपाटी अथवा बड़े बाजार व मन्दिरों के भक्तों की भीड व शोरगुल मे कोई अन्तर नही पाएंगे।

मई 1989 की बात है। किसी मित्र के लड़के का विवाह था। वैसे बम्बई मे पैडर रोड पर अकेले अपने परिवार के साथ रहते है, फिर भी काशी के रिश्तेदार व बुजुर्ग इधर-उधर बसे हुए है। विवाह के मुहूर्त का प्रसग आया तो महालक्ष्मी के मन्दिर के मुख्य पुजारी जो स्वय सस्कृत व कर्मकाण्ड के बड़े ज्ञाता है, उनसे सारी तिथियां लड़के की जन्मकुण्डली के आधार पर निकलवाई। एक भाई कालबादेवी में रहते है, सो वे मुहूर्त का पन्ना लेकर मुम्बादेवी के पण्डित के पास पहुचे और दूसरे प्रभादेवी के सिद्धिविनायक के मन्दिर गए। पण्डितों व डाक्टरों का स्वभाव है कि आप किसी की सलाह लेकर उनके पास

मन पुष्टि के लिए पहुच जाइए कहा मनोग्रन्थ के बिना उनका काम हजम नहीं होती । सो अब मान-मीन मुहूर्त आ गए बेचारे मित्र बड़ी दुविधा में पड़े क्योंकि दोनों बड़े भाइयों में अपने अपने पण्डितों के प्रति अटूट विश्वास मामला तय कैसे हो ? आखिर तीनों मुहूर्त अलग-अलग कागज की पुड़िया बना भगवान की तस्वीर के सामने लाटरी की टिकट के रूप में रख गए जो पुड़िया बच्चे ने पहले उठाई वही श्रेष्ठ लग्न माना गया ।

विवाह की पद्धति में तो हिन्दुओं का मन्तव्य है कि अग्नि (वैश्वानर) के समक्ष प्रतिज्ञा करते हुए स्त्री-पुरुष अपने अलौकिक सम्बन्ध की अवधारणा करते हैं पर जमाना कुछ ऐसा आ गया है कि पण्डित विवाह के पवित्र सम्बन्ध एवं सरसता मौन पड़े हुए मन्त्रों की भावना समझाने के बदले जल्दी जल्दी अशुद्ध सारा कार्यक्रम पूरा कर देते हैं । और यदि कोई रईस स्वच्छाचारी हो तो उसकी अनुकूलता देखते हुए विधि आध घण्टे में भी पूरी कराई जाती है । सभी कर्मकाण्डों का [illegible] स्वरूप अब प्राप्त है ।

मई 85 में ही केपिटल ऑफ दी हाना नगर में एक मिले जुले विवाह की रस्म देखी जिसमें अत्यन्त सात्विक ढंग से शान्तिपूर्ण समय में आ यानी अंग्रेजी में सारे संस्कार किए गए (लेटिन में नहीं) । दोनों व्यक्ति ईश्वर की साक्षी में एक दूसरे के जीवन-साथी बनते हैं और शपथ लेते हैं एकाकी होने की चाहे जीवन सुख या दुखमय हो अमीरी अथवा गरीबी में स्वास्थ्य अथवा बीमारी में ।

उपरोक्त कथानक व प्रसंग हिन्दू शास्त्रोक्त विधियों को निरर्थक एवं सारहीन सिद्ध करने का प्रयास रहा है । कालान्तर में हम एक एक संस्कार धर्म नियम की मूलभूत दिव्य भावनाओं को भूल बैठे हैं केवल आवरण आडम्बर की लाश पकड़ बैठे हैं बन्दरी की तरह तभी आज हमारी यह दयनीय परिस्थिति है जिसके लिए हम स्वयं जिम्मेदार हैं ।

22

हाय मेरा हीरों का हार

पिछले वर्ष दिसम्बर मे हमारे पुश्तैनी मित्र के परिवार मे विवाह था, सो हम लोग शामिल होने गये। "शेट्टी' व "चेट्टियार" कुनबे पीढी-दर-पीढी सोने-चादी, हीरे-जवाहरात आदि के लेन-देन का काम करते हैं और अब तक इसी व्यापार मे अधिकाश परिवार लखपति-करोडपति बन गये थे। षण्मुखम् शेट्टी बगलौर ही नहीं, सारे कर्नाटक मे गहनो की सफाई व कारीगरी के लिए प्रसिद्ध थे और कहा जाता है कि भारत की आजादी तक सभी वायसराय व गवर्नर आदि इनके यहा से कोई न कोई दागीना अवश्य बनवाते थे। इसीलिए दुकान मे "बाई अपाइटमेट टू" के पर्चे व तख्तिया भरी पडी थी।

ठाट-बाट से विवाह किया जा रहा था। सभी अतिथियो के ठहरने के लिए अच्छे से अच्छे होटल रिजर्व किये गये थे। प्रत्येक के लिए एक गाडी हाजिर थी। पटना से उनके एक और मित्र राजा कामेश्वर सिंह अपनी पत्नी रानी ललिता देवी के साथ आये हुए थे। ये लोग हमारे साथ कुमारप्पा पार्क स्थित भव्य सरकारी भवन मे ठहरे हुए थे। चारो तरफ खूब आनन्द व उल्लास का वातावरण था—चिट्टी बाबू व रामनाथन् का सगीत, दक्षिण भारतीय खान-पान, भोज समारोह आदि। दूसरे दिन चार बजे अपराह्न हमे विवाहस्थल पर पहुचना था, अत: कुछ समय पूर्व हम लोग तैयार होकर लाउज मे राजा व रानी साहिबा के आने का इतजार कर रहे थे। चार बजने वाले थे। उनके कक्ष से सरगर्मी की आवाजें तो आ रही थी, पर उन दोनो का बाहर निकलना नहीं हो रहा था। आखिर हम लोग उनके लिए संदेश छोडकर अकेले ही चले गये। विवाह की रस्म, बाद मे भव्य स्वागत समारोह, फिर सगीत की महफिल, रात्रि को बारह बजे सोने आये।

दूसरे दिन पिता चला कि राजा व रानीजी विवाह मे शरीक ही नहीं हो सके क्योंकि उस दिन रानी ललिता का पाच लाख का हीरों का हार गायब था। सज धज कर जब वे अपना हार निकालने लगी, तो कहीं भी नहीं मिला। सारे

कपड़े, बक्से, आलमारियां, पलग के गद्दे, बाथरूम आदि उपर से नीचे देख लिये गये, कहीं भी पता न लगा, चुनावो के कारण पुलिस कमिश्नर, आई० जी० पी० वगैरह बाहर दौरे पर थे। रामकृष्ण हेगड़े की कामचलाऊ सरकार थी। राजा साहब टेलिफोन, पुलिस के चक्कर मे उलझे रहे।

इस बात को आज कई महीने हो गये, हार का पता नही लगा इश्योरेंस था नहीं, सो राशि बेकार गयी।

इस तरह की छोटी मोटी घटनाए कई परिवारों मे हुई हैं। भारत म तो शुरू से ही सोने-चादी का मूल्य ऊचा रहा है और घर-घर मे अपनी सामर्थ्य के अनुसार गहने और बर्तनों को रखा जाता है। हीरो का लालच तो सभवत पश्चिमी अनुकरण की देन है। हम लोग वैसे हर खरीद फरोख्त मे तो अपनी बनिया बुद्धि की परख इस्तेमाल करते हैं पर सोने व हीरो के मामले मे अहभाव और प्रदर्शन का। दक्षिण अफ्रीका मे जोहान्सबर्ग के आस-पास हीरे की बहुत सी खानें हैं, विश्वव्यापी नियंत्रण वहा की डे बियर्स कम्पनी करती है।

19 वी सदी की शुरुआत तक सारी दुनिया को हीरे भारत से ही जाते रहे। व्यापारी काफिले भारत से ले जा कर अदन व काहिरा में यहूदी व्यापारियों को बेचते और सोना-चादी वापस भारत लाते, धीरे धीरे एमस्टरडम हीरो का केन्द्र बन गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के दस्तावेजो से जाहिर होता है कि करीब 1860 तक भारत के प्राय समूचे हीरे निकल गये। उसी समय भाग्य से दक्षिणी अफ्रीका मे खानें मिल गयी। वही उस समय डे बियर्स के एकाधिकार की स्थापना लदन के दस यहूदी व्यापारियो ने की।

सौ वर्षों से फैला मायाजाल

एडवर्ड जे० एफ्स्टाइन ने 1982 मे अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द राइज एण्ड फाल ऑफ डाइमण्डस" मे इस विश्वव्यापी फरेब का भडा फोड किया है। हीरे रखने व खरीदने वाले हर परिवार को इसे पढना चाहिए। इस लेख के तथ्य उसी ग्रथ से उद्धृत हैं—फरेब इसलिए कि डे बियर्स ने पिछले 100 वर्षों से हीरो के बारे मे मायाजाल, विज्ञापनबाजी से फैलाया है, जिसमे प्रत्येक धनी परिवार बुरी तरह फस गया है, उनका दावा है कि हीरे का मूल्य शाश्वत है—'ए डायमड इज फोरएवर"। कभी आपने अपनी पत्नी का हार या अगूठी बेचने की कोशिश की है ? जिन जिनको घर में आर्थिक सकट के कारण बेचना पडा है, उन्हें तो परिस्थितिवश मन मार कर आधे से भी कम दाम मे हीरे-जवाहरात बेचने पडते हैं, पर बिना दबाव के कोई बेचने नही निकलता और जाता भी है तो बेवकूफ बनने के कारण खिसिया कर किसी को कहता नहीं।

कुछ वर्ष पूर्व अमरीका मे स्टेनली रिफकिन नाम के एक कम्प्यूटर सुरक्षा विभाग

23

क्या महिलाएं अपनी परिस्थितियों के लिए स्वयं जिम्मेदार नहीं हैं ?

बम्बई मे एक कुशल व योग्य महिला डाक्टर हैं। उनकी उम्र करीब 28/30 वर्ष की होगी। वह अभी तक अविवाहित हैं। रात दिन क्लिनिक, घर, अस्पताल के बीच चक्कर लगाती रहती है। उनका व्यक्तित्व आकर्षक है। उनके सौम्य चेहरे से आत्मविश्वास झलकता है। रग सावला है। उन्हें अगर सुन्दर नही तो आकर्षक अवश्य कहा जाएगा।

पार्टियो मे लोग उनके इर्द-गिर्द जमा रहते हैं। इन गुणो के अलावा बातचीत की कला मे भी वह काफी दक्ष हैं। समय मिलने पर वह समाज के सेवा कार्यों मे भी रुचि लेती है। दूसरी ओर अस्पताल मे आए डाक्टरो के प्रशिक्षण कार्यों मे भी खूब दिलचस्पी लेती है।

मैं उनको पाच-सात सालो से जानता हू। हमारे घर अकसर आती रहती हैं। हमारे कई मित्रो के यहा भी अकसर इलाज या डाक्टरी सलाह के लिए आना-जाना लगा ही रहता है। एक दिन बातो ही बातो मे मैंने उनसे पूछा, "आपने अभी तक शादी क्यो नही की ?"

कुछ झिझक के बाद बोली, "आपका यह सवाल मुझे अपने बचपन व यौवन की याद दिलाता है। मैं अपने नगर के कालिज से इन्टर पास कर चुकी तो उस समय मेरा रूप रग जैसा भी रहा हो, पर मेरी विवाह योग्य अवस्था देखकर मेरे माता-पिता का चिंतित होना स्वाभाविक ही था। दोनो मेरी ही चिन्ता मे डूबे रहते थे। पिता एक साधारण से कारखाने मे प्रबन्धक थे। कुल मिलाकर 850/- वेतन मिलता था। इसी मे पूरे महीने परिवार का खर्च चलाते थे।"

"मेरे विवाह के लिए कई जगह दौड़-धूप की थी, पर नतीजा कुछ नही निकला। आखिर निराश हो गए। कोई भी परिवार दहेज के रूप मे

50,000 रुपए से कम रकम लेने का तैयार नही था और इतनी बडी रकम जुटा पाना उनके लिए सम्भव नही था।

"इस प्रकार उनको हताश देखकर मुझ से नही रहा गया। एक दिन साहस जुटा कर उनसे कहा, 'पिताजी, मुझे आप पढने की इजाजत दें। शादी मे मेरी रुचि नही है और यदि हो भी तो ऐसी शादी किस काम की जिसमे आप अपमानित हो और मेरी आकाक्षाओ का खून होता हो।"

उनकी इस बातचीत से पता चला कि वह राजस्थानी परिवार की थी। उस समय उन्होंने क्या कह कर विवाह न करने के लिए अपने परिवार को राजी किया होगा, उसकी चर्चा प्रासगिक नही।

सक्षेप मे यह बात सामने आई कि उन्होने अपनी विकट परिस्थितिया का बडी खूबसूरती से सामना किया और पढ-लिखकर एक कुशल डाक्टर बन कर अपने परिवार का पालन पोषण करने लगी। साथ ही उन्होने अपने बूढे मा बाप को यह आश्वासन भी दिया कि वह जीवन मे कभी कोई ऐसा काम नही करेंगी जिससे उन्हें अपने समाज मे अपमानित होना पडे। अपना यह सकल्प भी वह बखूबी निभा रही है।

आज वह एक कुशल डाक्टर है। समाज के पढे लिखे सुसस्कृत युवको के उनके पास विवाह के प्रस्ताव भी आते हैं। फिलहाल वह इस बारे म कोई निर्णय लेना नही चाहती।

एक मध्यम परिवार म विवाहित करुणा बेन असमय ही 25 साल की आयु म विधवा हो गई। उनके सास-ससुर रूढिवादी नही थे। इसलिए उन्होने करुणा बेन को अपनी बेटी की तरह पाला पोसा।

अकसर परिवार म ऐसी स्त्रियो को कुलटा समझा जाता है। उनके साथ इस तरह से व्यवहार किया जाता है कि उन्हें आत्मसम्मान के साथ जीने मे पग पग पर कठिनाइया होती हैं। इस तरह न वह घर की ही हो पाती हैं और न पीहर की। केवल सामाजिक विषमताओ मे उनकी जीवन-यात्रा समाप्त हो जाती है।

करुणा बेन को तो उनके जागरूक सास-ससुर ने यह एहसास नही होने दिया, पर हर एक के साथ तो ऐसा नही होता। अकसर विधवाओ मे ऐसी हीन-भावना घर कर जाती है कि उनकी सारी रचनात्मक क्षमता ही नष्ट हो जाती है। उनका जीवन ही समाज मे भार हो जाता है।

ऐसी विधवाओ के मा-बाप जब तक जीवित रहते हैं, तब तक तो पीहर मे कुछ सहारा मिलता है। बाद मे तो वहा भी कोई नही पूछता। खैर, करुणा तो पहले ही से ही बी० ए० पास थी उसने साल भर मे ही कम्प्यूटर का

पाठ्यक्रम पूरा कर लिया। फिर अपने ससुर के ही मित्र के कार्यालय मे काम करने लगी। इस तरह उसने जीवन की नई राह स्वीकार कर ली। उसकी गाडी तो चल निकली। अब उसकी इस जीवनचर्या से परिवार के लोग भी प्रसन्न थे।

कुछ इसी तरह का एक किस्सा दिल्ली की एक अन्य विधवा बहन के बारे मे पढने को मिला। पति की मृत्यु के बाद परिवार के लोगो ने उसे कुछ इस तरह पीडित किया कि वह घर छोडकर लडकियो के एक छात्रावास मे जाकर रहने लगी। हिम्मत जुटा कर उसने कपडो की सिलाई-कढ़ाई का काम सीखा और वह इस काम मे काफी दक्ष हो गई।

बाद मे उस ने बैंक से ऋण लेकर सिले सिलाए कपडो की अपनी दुकान खोल ली। अब उस के पास काम का अबार लगा रहता है। उसके काम व उचित दाम देखकर लोग उसे छोडकर दूसरी जगह भी काम नही करवाते। आज समाज मे उसकी अपनी प्रतिष्ठा है।

इन्दौर की एक लडकी थी, सीमा ठाकुर। एक दुर्घटना मे पैर की हड्डी टूट गई। पर इस हड्डी के गलत जुड जाने से कुछ लगडा कर चलने लगी। वैसे तो वह ऐसी चप्पल पहनती थी कि जिससे उसके दोष का पता न चल सके, पर विवाह के पूर्व ही न जाने कैसे उसकी ससुराल वालो को पता चल गया।

फिर क्या था उन्होने दहेज मे 20,000 रुपए की अतिरिक्त रकम की माग की। लडकी के बाप के पास जो कुछ था वह पहले खर्च हो चुका था। 20,000 रुपये और कहां से लाता ? आखिर विवाह न हो सका। लडकी को इस घटना से काफी पीडा पहुची।

सीमा ठाकुर अपने इस जीवन से कुछ इस तरह से उकता चुकी थी कि उसने अपने दिमाग मे आत्महत्या तक की योजना बना डाली। उसकी एक सहेली को जब इस बात का पता चला, तो वह सीमा को अपने घर ले गई। उसे समझाया और एक नए जीवनपथ पर चलने की प्रेरणा दी। आज वह बी० एड० करके इन्दौर के एक स्कूल मे अध्यापिका है। उसकी गणना स्कूल की सबसे कुशल अध्यापिकाओ मे की जाती है।

ऐसी आत्मसम्मानी महिलाओ से ही समाज को कुछ उपलब्ध हो सकता है। अब प्रश्न उठता है कि अन्य महिलाओ मे इसी तरह की प्रेरणा व आत्म-सम्मान का भाव क्यो नही पैदा होता, जिससे समाज को भी लाभ हो। केवल रोने-धोने और मौके-बेमौके अपना दुखडा सुनाते रहने से तो समस्याए सुलझने से रही।

हमारे समाज म दहेज को लेकर हत्याकाडो व दूसरे प्रकार के अन्यायो की खबरें आए दिन पढने को मिलती हैं। तो महिलाए ऐसा मार्ग क्यो न खोजें, जिससे परिवार पर भी आच न आए और वे समाज के लिए भी एक आदर्श प्रस्तुत कर सकें।

यदि 17 18 साल की आयु मे सहज और साधारण ढग से विवाह हो जाता है तो ठीक अयथा किसी शहर मे 10-20 लडकियो ने इस तरह का कदम उठाया नहीं कि सभी लडके वालो व सास-ससुरो की आंखें अपने-आप खुल जाएगी।

मैं नही जानता कि सामाजिक मचो पर प्रस्ताव पास करने से यह समस्या कैसे सुलझेगी ? अथवा महिलाए अपने सामाजिक सगठनो के जरिए कहा तक सफल होगी ? आज आवश्यकता है स्वावलम्बन व स्वाभिमान के उदाहरणो की। देखिए पाच-दस सालो मे कितना अन्तर आता है ?

यह त्याग और तपस्या आने वाली पीढियो को कहा तक प्रेरणा देगी, यह तो भविष्य ही बताएगा। स्वय महिलाओ को अपने मे आत्मशक्ति जाग्रत करनी होगी। उन्हे अपना मार्ग स्वय चुनना होगा।

आज जगह-जगह नारियो के शोषण के विरुद्ध आन्दोलन चल रहे हैं। कभी बम्बई मे मजुश्री सारडा को लेकर तो कभी दिल्ली में बहुओ को जलाए जाने के खिलाफ। कभी नेल्लोर (आन्ध्र) मे महिलाए समाज से पूछ रही हैं कि क्या हम केवल दिखावे व उपभोग की वस्तु भर हैं ?

नागपुर का आम्रपाली समाज वेश्याओ के पेशे को समाप्त करने के लिए श्री राजीव गाधी से मुआवजे की माग कर रहा है। जगह-जगह इस तरह की अनेक घटनाए हो रही हैं ?

जब इस तरह की आत्मनिर्भर महिलाओ के उदाहरण मौजूद हो तो समूचे महिला समाज को मात्र अपाहिज व बेसहारा कहना कहा तक उचित है ? इससे नारी समाज म एक हीनता की भावना पैदा होती है। फिर प्रश्न उठता है कि हम उद्धार की माग करते किससे हैं ? क्या वह वाकई कुछ कर सकने की स्थिति मे है भी ?

समाज में व्याप्त अधविश्वासो ने भी हमारे नारी समाज का काफी अहित किया है। समाज (की पढी लिखी) महिलाए ऐसा करें, तो क्या कहा जाएगा ?

अभी कुछ दिन पहले पूना के अखबारो मे छपा था, जिसके अनुसार दर्जनो पढी लिखी महिलाओ के साथ एक ढोगी साधु ने दुर्व्यवहार किया और उन्हें

ठगा भी। अब इसे क्या कहा जाए। हमारे समाज मे इस तरह की न जाने कितनी घटनाए हो रही है।

जब तक हमारा नारी समाज इन समस्याओ को एक चुनौती के रूप मे स्वीकार नही करता, तब तक इनसे मुक्ति मिलने वाली नही। प्राय देखने मे यही आता है कि आधुनिकता के नाम पर, गलत प्रदर्शनो की होड मे स्वय नारिया इसका शिकार बनी है। परिणाम यह होता है कि प्रकृति ने उन्हें प्रजनन की जो सबसे बडी शक्ति दे रखी है वही उन के पतन का कारण बन जाती है।

समाज के ढोंगी लोग हमेशा इसका फायदा उठाने की कोशिश करते हैं। सवाल यह है कि वे अपने को इतना अक्षम और पुरुषो की तुलना मे "हेय" क्यो महसूस करती है ? यदि वे खुद आत्म-सम्मान के साथ जीना नही सीखेंगी, तो दूसरा उन के लिए कर ही क्या सकेगा ? केवल कायदे-कानून कुछ भी नही कर सकेंगे।

अत जरूरत है कि सब स पहले वे अपन को अन्धविश्वासो, हीन मनोवृत्तियो से मुक्त करें। वर्तमान समस्याओ को चुनौतियो के रूप मे स्वीकार करें। अपने मे एक नई शक्ति भरें, तभी कुछ हो सकेगा। घुट-घुट कर जीने या आत्महत्या जैसी गर्हित बातो से समस्याए हल नही होगी।

समाधान वही है जो करुणा बेन, सीमा ठाकुर या राजस्थानी महिला डाक्टर ने प्रस्तुत किया अर्थात् आत्मनिर्भर होकर जीवन के पथ पर आगे बढते रहना।

24

मनमानी करने की आदत भी . एक रोग है

हम अपने समाज को मोटे तौर से दो भागो मे विभाजित करते हैं । कुल 25 प्रतिशत जो पढा लिखा है और बाकी अनपढ । महज पढाई-लिखाई की योग्यता आ जाने भर से कोई भी व्यक्ति समझदार नही बन सकता, हालाकि इसके व पैसे के बूते पर हर कोई यही दावा करने लग गया है। देखत देखते पिछले 50 वर्षों मे हमारे मोल-तोल के आकडे इतने बदल गए हैं कि सहसा समझ मे नही आता कि हमे हो क्या गया है ? लेन-देन, व्यावहारिकता, शालीनता, सज्जनता, प्रदर्शन आदि के मूल्यो मे इतना भेद-भाव हो गया है कि 'अनुकूल सम्प्रदाय' नामक रोग ने हमारे जीवन को इतना ग्रस्त कर दिया है कि जो बात हमारे मन के मुताबिक व मतलब को सिद्ध करती है, वह शास्त्रोक्त हो गई है और सनातन मूल्यो को म्यूजियमो मे सजाकर ताला-बन्दी की गई है कि कोई उसके दर्शन करने भी पास नही फटकता ।

पहले तो तत्काल सुख बनाम दीर्घजीवी उपायों को देखें । आज का युग सैरीडोन नीद व ब्लड प्रेशर की गोली, विडियो फिल्म व शराब का हो गया है । सर दर्द होते ही न तो हम सोचते है कि क्यो हुआ । (ताकि भविष्य मे पुनरावृत्ति न हो) और न उस रोग को समूल निकालने की फिराक होती है, दो गोलिया चाय के साथ लेते ही सवेदनशील मस्तिष्क का वह भाग जो सिर-दर्द से सम्बन्धित है, उसे कुछ समय के लिए शून्य कर दिया जाता है । रोग व उसका प्रतीक दर्द तो वैसे का वैसे कायम है, हां, उसका आभास नहीं होना, यह तो ऐसी ही बात हुई कि हम कमरे मे पडे कूडे-ककंट को दरी के नीचे दबा दें, ताकि किसी को दीखे नही । ब्लड प्रेशर जिन्दगी मे एकाएक नही होता, किसी को पुश्तैनी तौर पर यह विरासत मे मिला भी हो, तो सजग रह, अपने मन व शरीर को सुनियन्त्रित रख उस पर भी काबू रखा जा सकता है ।

यह प्रेशर कई वर्षो के गलत रहन-सहन व मनोवेगो के कारण बनता है। शरीर की इतनी अच्छी गठन के उपरान्त हम वर्षो तक उसके व अपने मन पर आघात व बलात्कार करते रहें, तो आश्चर्य क्या है कि आपका प्रेशर 180/100 रहने लगे। यहा भी लोग इस आसार व सकेत (प्रेशर) का उपचार करते हैं, यह रोग क्यो हुआ और उसे कैसे कब्जे मे लाकर निकाल बाहर किया जाय, उस ओर ध्यान नही देते, इसीलिए भोजन के साथ नमक बन्द करना, पेशाब अधिक हो एव अन्य एक दो गोलियो से व्यक्ति को शेष जीवन-चर्या बितानी पडती है। इस मर्ज मे मन के डाक्टर के पास जाना अधिक आवश्यक है, जो हमे यह बताने मे सहायक हो कि हम किस पद्धति से मन को सतुलित रख सकते है और दुनिया मे निरन्तर चलने वाले सुख-दुख व थपेडों से अपने को कैसे बचा सकते है।

इसी तरह अब आप वीडियो पर फिल्म उतारिए और उसी क्षण देख भी लीजिए। कोई भी इस तकनीक के विरोध मे नही हो सकता, हा, यह जमाने के तत्काल सुख के सकेत के रूप मे उल्लिखित है। हमे एक बात सदा के लिए लक्ष्य मे रखनी होगी कि मन्दी आच मे सेकी रोटी सबसे अधिक लाभदायक है न कि आजकल धडाधड निकलती डबल रोटी या रेडीमेड चपातिया (जिन्हें गरम कर खालें)।

मनुष्य के सारे कार्यकलाप उसके मन के अनुसार चलते है। मानव मन का गुलाम है, स्वामी नही। जब तक मन अपनी मनमानी करता है तो बुद्धि व विवेक को स्थान नही मिलता। जिस तरह ताबें या पीतल का लोटा पडा-पडा मटमैला लगने लगता है और उस पर खासो की मालिश रगड-रगड कर करने से उसका असली स्वरूप सामने आता है, उसी प्रकार मन की भावनाओं को किसी और पवित्र लक्ष्य की ओर उन्मुख करने से ही उस पर नियन्त्रण किया जा सकता है, बहरहाल, कुछ नमूने देखें।

भारत मे शिक्षित व अशिक्षित दोनो का ही व्यवहार इस क्षेत्र मे समान है। काई टी० बी० का मरीज हो और उसने डाक्टरी सलाह के मुताबिक स्ट्रेप्टोमाइसिन का कोर्स चालू किया हो तो पहले ही महीने के बाद बुखार उतर जाता है एव खासी-कफ मे फायदा हो शरीर मे बल-वजन की बढोतरी होने लगती है। डाक्टर पूरे साल भर इस दवा व पथ्य के लिए बहुत जोर देते हैं एव सलाह के दौरान रोगी व घर वाले इसे मजूर भी करते हैं, पर 2-3 महीने बाद ही मन सिर उठाने लगता है कि अब तो ठीक है, इन सब बन्धनो मे क्या लाभ है? अत दवा व आराम को अनदेखा कर रोगी 'सामान्य' जीवन बिताने लगता है। अक्सर ऐसे लोगो को मौका मिलते ही वापस टी० बी० का आक्रमण हो जाता है और उन्हें इसका नतीजा भुगतना ही पडता है।

रोजमर्रे के रोग को ही लें, अक्सर ऐसे लोगो को जो व्यायाम नही करते व खान-पान मे कोई सयम नहीं रखते, सर्दी, जुखाम, नजला, खासी सर्दियो का मौसम अथवा मौसम बदलते समय हो जाता है। डाक्टर के पास परेशान से भागे-भागे जाते हैं, बुखार व सर्दी देख डाक्टर एरिथ्रोमिन व अन्य दवाइया देता है। पथ्य के मामले मे तो दुर्भाग्यवश आज के डाक्टरो को न कोई जानकारी है, न ही वे उस पर वजन देते हैं। किसी भी एण्टीबायटिक को कम से कम 3-5 दिन तक लिया जाना होता है। पर साथ मे क्रोसिन (पेरासिटामॉल) देने मे दूसरे ही दिन बुखार टूट जाता है और कफ अन्दर सूख जाता है। दवा दूसरे दिन बन्द, घूमना-फिरना चालू और कुछ दिनो मे बीमारी का वापस धावा।

एक बार नागपुर सरकारी अस्पताल मे सिविल सर्जन से मुलाकात मे एक अत्यन्त दिलचस्प पर हैरतअगेज बात मालूम हुई। एक वृद्ध पुरुष का माथा दगे मे साइकिल की चेन द्वारा फूट गया था, मस्तिष्क की नस पर दबाव पडने के कारण उसका दाहिना अग बेकार हो गया था। घाव साफ कर मस्तिष्क पर दबाव डालती झिल्ली को ज्योही उन्होने यथास्थान किया, उनके हाथ पाव म सचार होने से लकवा तत्काल हट गया। उन्होने खोपडी मे हुए छेद का नाप लिया एव उस पर काम चलाऊ ढक्कन लगा कर सात दिनो बाद स्थायी ढकनी लगाने बुलाया। सभी घर वालो को भी कहा गया कि वैसे रोगी को जब कोई परेशानी नही होगी पर ढकनी के अभाव मे कभी भी जरा सा दबाव पडते ही उसे फौरन लकवा होने की पूरी सभावना है।

जब बार-बार वे उन्हें समझा रहे थे, तब उन लोगो के जाने के बाद मैंने इसका सबब पूछा। सर्जन ने कहा कि इस तरह के जख्म वाले लोग सौ मे से 5-7 ही वापस आते हैं, बाकी सोचते हैं कि अब इस झझट मे क्यो पडा जाय? हुआ भी यही। दुनिया मे इस तरह के बहुत लोग हैं जो अपना काम 'भगवान भरोसे' चलाते है।

एक बार मेरे मित्र के वृद्ध पिता, जो करीब 70-72 वर्षों के थे, की आख मे मोतियाबिन्द का आपरेशन हुआ। वे सारी जिन्दगी हुक्म चलाने के आदी थे, अत अब भी किसी क्षेत्र मे किसी भी प्रकार के बन्धन के लिए तैयार न थे। साथ ही पुरातन कर्मकाण्ड मे विश्वासी, अत आपरेशन के दो घण्टे बाद ही बेड-पैन लेने के बदले बाथरूम मे गए और रोज की तरह 20-25 मिनट सडास पर बैठे रहे। नित्यकर्म की माला भी बैठकर फेरी गई। डाक्टर व नर्सों की बात पहले से ही अनसुनी कर दी गई थी। दूसरे दिन सुबह वे घर चले आए और बिस्तर पर अधेरे कमरे मे आराम करने की बजाए कुर्सी पर बैठकर आने जाने वाले लोगो मे बातचीत करते रहे। कोई 5-7 दिनो

बाद किसी आवश्यक कार्य से दफ्तर भी गए, हालांकि सभी ने मना किया था। 20 दिन बाद दोपहर को भी काली ऐनक लगाकर एक अन्य बोर्ड मीटिंग मे गए। नतीजा वही हुआ जो होना था। वह आख जाती रही और दूसरी पर मोतिया अभी पका नही। अत मायूस हो जबरन घर पर बैठा रहना पड़ता है।

वैसे भारत मे बीमार होना भी एक गुनाह है और यदि अस्पताल मे भर्ती होना पड़े, तब तो वहा तबियत पूछने वालो का ताता लग जाता है। जो जितना 'बड़ा' आदमी होगा, उतने ही लोग मुह दिखाने जाएंगे। बम्बई के अस्पतालो मे मैंने एक-एक बीमार के पीछे पचासो लोगो की भीड़ देखी है। वे न रोगी के आराम का खयाल करते है न ही अन्य रोगियो की सुविधा का। शोर-गुल के लिए हम भारतीय मशहूर हैं। जहा हसी का ठहाका लगाना चाहिए, वहा तो धीरे से मुस्करा देते हैं ताकि पान के मटमैले दात दिख न जाए और जहा शान्ति रखनी चाहिए, वहा जोर-जोर से गप्पें करेंगे।

बीमार पड़ने का एक लाभ है। एक बार मुझे पीलिया हो गया था। आस-पास के नेक-नीयत मित्रो-सम्बन्धियो व अन्यो से भी करीब 20-25 नुस्खे मुफ्त मे मिले। प्रत्येक का यही दावा था कि उनकी ही दवा या पथ्य से शर्तिया रोग विदा हो जाएगा। इसी तरह घर-घर मे यह बात देखी जाती है।

संस्कृत मे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण शब्द है 'धृति'। किसी भी नियम अथवा परम्परा की उपयोगिता ठीक से समझ लेने के बाद नियमित रूप से श्रद्धापूर्वक पालन करने की प्रवृत्ति को 'धृति' कहते हैं। हम नित्य होने वाले रोगो मे भी इनका पालन नही कर सकते, तो व्यापार मे प्रगति कैसे होगी? बिना इस लगन के न माया मिलती है न राम।

25

अब जीवन में वह मजा नहीं आता

प्रमोद खण्डेलवाल दिल्ली के एक प्रतिष्ठित उद्योगपति हैं। नई दिल्ली का जब कोई विशेष प्रभुत्व नहीं था एवं पुरानी दिल्ली के दरियागंज व चांदनी चौक क्षेत्रों का दबदबा व बोलबाला था, उन दिनों भी उनका परिवार लाट साहब (गवर्नर जनरल) व अन्य साम्राज्यीय पार्टियों व समारोहों में बुलाया जाता था। प्रमोद से मेरी बम्बई में एलफिस्टन कॉलेज में साथ-साथ पढ़ने के कारण अच्छी मित्रता थी, फिर वह दिल्ली जा बसा। पहले-पहले तो खत किताबत और मिलने-जुलने का काफी सिलसिला रहा, बाद में आधुनिक जीवन की भाग-दौड़ एवं व्यस्तता से रास्ते अलग-अलग हो गए। कभी कभार बम्बई, दिल्ली एयर पोर्ट या किसी पार्टी में मुलाकात हो जाती थी।

इसीलिए पिछले वर्ष प्रमोद का आग्रह भरा निमन्त्रण, हम लोगों को मसूरी उसके साथ गर्मी बिताने का, आने से कुछ आश्चर्य जरूर हुआ। कई टेलिफोन व चिट्ठियां आईं, उसकी व्यग्रता समझ में तो नहीं आई पर मैं व मेरी पत्नी अपना महाबलेश्वर का रिजर्वेशन कैंसिल करा मसूरी पहुंचे। दिल्ली से प्रमोद व उसकी पत्नी भी साथ थी। मसूरी में उनका भव्य बंगला खूब अच्छे स्थान पर बना हुआ था, बगीचा सुन्दर, व्यू खूबसूरत। तीन-चार दिन बाद डाइनिंग टेबल पर प्रमोद ने अपना राज उदासी के स्वर में सुनाया। उनका यह भव्य पुश्तैनी बंगला अब वीराना रहता है क्योंकि न तो प्रमोद के बच्चे, न उसके भाइयों के परिवार और न ही कोई रिश्तेदार अब मसूरी आना चाहते थे। बात यह थी कि इतने वर्षों तक इनका सारा परिवार गर्मी में बंगले की वजह से केवल मसूरी की यात्रा करते। अब बच्चे तो मसूरी के नाम से नफरत करते हैं। वे दिल्ली की गर्मी बर्दाश्त कर लें, नैनीताल, शिमला, दार्जिलिंग चले जाएंगे, पर मसूरी से उन्हें नफरत हो गई थी। ठीक ही है, परिवार के हर सदस्य ने बरसों तक मसूरी एवं आस-पास के स्थलों का कोना-कोना देख डाला था। अब उन्हें बोरियत हो गई थी। अब प्रमोद बंगले

को बेचना चाहता था । बम्बई व अन्य स्थलो पर मेरा सम्पर्क देख उसने कहा कि किसी कम्पनी या बंक को होलीडे होम के लिए दे दिया जाए ।

मैंने प्रमोद को बताया कि आजकल सभी लोगो का मानस कुछ इस कदर बन गया है कि वे अच्छी चीज से कुछ दिनो मे ही ऊब जाते है, सबको नित-नवेली चाहिए । आज कल के बच्चो को ही लीजिए । हम लोग जो आज 50 से ऊपर है, उनके मुकाबले आज के 18-25 वर्षों के लडके-लडकिया कही अधिक चचल, प्रबुद्ध और मेधावी है । उन्हें पढने मे दिलचस्पी नही हैं और परीक्षा के दस बीस दिन पूर्व ही रट कर पास हो जाते हैं । जिस तरह की हमारी शिक्षा प्रणाली है, अध्यापक हैं और रेट-रेस हैं, उसमे इन लोगो की रुचि न हो तो इनका क्या दोष ? विडियो गेम्स, टी०वी० प्रोग्राम, अंग्रेजी वेश-भूषा व चाल-चलन, रोज के बढते-घटते फैशन, रोमान्स की किताबें आदि मे वे लगे रहते है । आज आप उन्हे कोई विडियो गेम या इलैक्ट्रोनिक खेल दे, दो दिन मे उसे निचोड कर फेंक देंगे । अब कुछ और चाहिए ।

इसके अलावा हर मनुष्य की ऐसी प्रवृत्ति हो गई है कि जो सुख, सुविधा, सहूलियत व सत्कार जीवन मे उसे हासिल है, उन्हे तो वह अपना हक मानकर चलता है और उसके बाबत अपने को किसी का ऋणी या आभारी नही समझता । ऑक्सीजन प्रभु ने सारे विश्व मे प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध करा दी है, समय पर सूर्य उगता है, समय पर मौसम बदलता है, अपने शरीर के कल-पुर्जे भी अहर्निश—किसी-की देखरेख मे बराबर चलते है—फिर भी हम इतने नमक हराम हैं कि जीवन मे कभी इसके लिए किसी को धन्यवाद तक नही देते । कोई पानी मे डूब रहा हो, उसे हवा का मूल्य पूछिए, किसी ने दोनो नेत्र खो दिए हो, उससे दृष्टि का महत्व पूछें । किसी गरीब को पैसे की कीमत पूछें । वही मनोभावना सर्वत्र काम करती है ।

खैर, प्रमोद ने बगला बेच दिया और बात आई-गई हो गई । अब वे अलग-अलग स्थानो पर जाते हैं । अच्छे से अच्छे होटल-बगले मे ठहरते है, फिर भी मसूरी के वार्षिक व्यय का एक-चौथाई खर्च भी नही होता । बच्चे व परिवार वाले खुश है—वह अलग से ।

हम लोगो की एक पुरानी मडली है जो तकरीबन हर रविवार को बम्बई के *विलिंग्डन क्लब मे मिला करती है । बियर और जिन के बीच,* हसी-ठहाको के माध्यम से सबसे मिलना हो जाता है । हमारे गंग के लीडर नानाभाई जवेरी है । एक दिन उन्होने बातो ही बातो मे पूछा,—यार, अब शराब मे वह मजा नही आता । पहले तो एकाध जिन मे ही जी हल्का हो जाता था, अब तो दो पैग मे भी तरग नही—सभी ने इस बात की दाद दी । मैं उन दिनो तीन

महीनो से 'वेगन' पर था, सो मौसम्बी, सतरे का रस या नारियल पानी खूब चुस्कियो से पीता था।

"दुनिया की हर चीज, हर मजे को हम अतिरेक के कारण खो देते हैं, उसका अवमूल्यन कर बैठते हैं। दरअसल हम सभी को किसी भी वस्तु का उपयोग करना या आनन्द लेना आता ही नही। वही चीज अच्छी लगती है जो इन्स्टन्ट (तत्काल) सुख दे सके जैसे सिगरेट, व्हिस्की, अफीम, औरत आदि"— मैं बोला।

नानाभाई प्रतिवादी के रूप मे बोल उठे— उसमे हर्ज क्या है ? लिफ्ट होनी इसीलिए है कि हम दस मजिल चढ कर सीढी से न जाए। हवाई जहाज ताकि बैलगाडी-रेलगाडी मे समय न बर्बाद हो, एस्प्री-सैरीडॉन अगर सिर दुखने पर न लें, तो क्या माथा पकडकर बैठे रहें ?"

"नाना, तुम विषय से हट गए हो। सुविधाए जैसे लिफ्ट, प्लेन, कैमरा, फोटोकापी मशीन आदि जो है, उनके इस्तेमाल के लिए कौन इन्कार करता है ? पर जहा तक तत्काल सुख का सवाल है, उस पर गौर करना जरूरी है। सुख-दुख मन की सवेदना है। यदि मन को बुद्धि की लगाम से कसे रहो, तो फिर असली मूल्य समझ मे आने लगें। किसी भी आनन्द के उपभोग के लिए कोई मना नहीं करता पर वही सुख यदि लगातार आदत के रूप मे भस्मासुर बन जाते तो कौन उपभोग करने वाला रह जाता है ? तुम या तुम्हारी आदत ?

जीवन मे तत्काल सुख देने वाली वस्तुओ के बारे मे दो अकाट्य एव अक्षुण्ण नियम हैं, जो बदले नही जा सकते। एक तो यह है कि हम उसके घेरे या जाल के शिकार जल्दी हो जाते हैं क्योकि शुरू-शुरू मे बडा मजा आता है, पर धीरे-धीरे उतने ही मजे के लिए हमे उस वस्तु की मात्रा बढानी पडती है। मसलन आपने कालेज के दिनो मे एक-दो सिगरेट शौकिया पीनी शुरू की; ग्रेजुएट होते-होते दिन भर मे आधा पैकेट तो हो गया। कुछ बडे नही हुए कि तथाकथित परेशानियो का सामना करने हेतु मन को समझाते हुए वही बढकर दिन भर मे एक पैकेट हो गया। वित्त मत्री को हर साल कोसने व गाली देने वालों में सिगरेट व व्हिस्की पीने वालो की सख्या सर्वाधिक है और सरकार को भी तो आपकी जेब ही कतरनी है, शिक्षापूर्ण वातावरण तो बनाना नहीं।

पहले नियम का एक विशेष अधिनियम यही है कि जो मजा आपको शुरू-शुरू मे अच्छी लगने वाली चीज के सभोग से आता था, उसी मजे के लिए मात्रा लगातार बढानी पडती है, चाहे वह सिगरेट-बीडी हो अथवा दारू-दवा। इसे अंग्रेजी मे ला आफ डिमिनिशिंग रिटर्न कहते है। अत हमें ही सोचना

है, बुद्धिबल द्वारा कि जिस वस्तु के प्रति हम आकर्षित होते हैं, इसके लिए हम कितनी कीमत देने को तैयार हैं। इस जेल के फन्दे का दूसरा अधिनियम यह है कि पूरी तरह मजा दे न दे, पर इच्छित वस्तु की अनुपस्थिति में हम इतने व्यग्र व विचलित हो जाते हैं कि बुद्धि-विवेक-व्यक्तित्व ताक पर रख अपना सामान्य व्यवहार तक बदलने को बेबस हो जाते हैं।

दूसरा कानून यह है कि जो वस्तुए तत्काल सुख देती हैं शुरू मे, वे ही अन्त मे विषैली नागिन बन हमे डस लेती हैं। गीता के अठारहवें अध्याय के हवाले की आवश्यकता क्यो पड़े, आप चारो ओर भुक्तभोगियों को देख लीजिए। इस प्रसग मे वर्णित अन्य मादक वस्तुओ के अलावा अन्य सभी चीजो पर यह लागू पडता है। करेला, तुरई, पालक-परवल, लौकी कितने लोगो को पसन्द हैं? आजकल के बच्चे तो आलू-मटर के अलावा कुछ खाएगे नही। यही सब्जिया हमे स्वास्थ्य प्रदान करती हैं। प्रात जल्दी उठकर नियमित व्यायाम करना सबको दु खदायी लगता है पर ढीले-ढाले सुस्त, अपाहिज, कदम-कदम पर नजले, जुखाम, सग्रहणी के रोगियो की सख्या दिन पर दिन बढती जा रही है। अब तो गाव वालो को भी तबियत ठीक करने के लिए एस्प्रो-सैरीडॉन व सुई (इन्जैक्शन) के बिना चैन नही। जरा बुखार, दर्द हुआ कि सबको एन्टीबाइटिक व पेन किलर चाहिए जिससे फौरन आराम मिले। डाक्टर बेचारे क्या करें, मर्यादा मे रहना चाहें तो रोगी किसी और डाक्टर के पास पहुच जाएगा। यही बीसवी सदी की विज्ञापनबाजी व मनमोहक प्रचार का मायाजाल है। इसके साथ ही, जो वस्तु प्रारम्भ मे जहर (स्वाद व रुचि स) लगती हो, वह अन्त मे अमृत का फल देती है।

आइए, अब इन दोनो कानूनो के मातहत, जिन्दगी का लुत्फ, आनन्द कैसे बनाए रखा जाए, उस पर गौर करें। यह तो सबको मालूम है कि जीवन के सभी विभागो मे—अति सर्वत्र वर्जयेत्—लागू पडता है, अत गुलामी व आदतो से बचना हो तो प्रत्येक वस्तु को अपने उचित स्थान पर ही रख उसे हौसला व आमन्त्रण देकर हावी न बनाया जाए।

सबसे पहले इसे हमेशा ध्यान मे रखा जाय कि स्वादिष्ट एव मादक वस्तुओ से केवल क्षणिक आनन्द मिलता है। मन को कभी, किसी लोभ से सतुष्ट सदा के लिए नही किया जा सकता। मन तो सुरसा व बकासुर दोनो का बाप है। हमने कभी बैठकर ह्विस्की पी, तो पीने के बाद उसकी मादकता व मजे पर मन को न टिकने दें, नही तो दूसरे दिन फिर बुलावा देना होगा। हर अनुभव का प्रसग उसी समय समाप्त कर देना चाहिए। मेरे एक मित्र बम्बई के हापुस, कलकत्ते का लगडा, उत्तर भारत का दशहरी आम, दिल्ली के चादनी चौक की चाट मद्रास के इडली-डोसा, हिमाचल के सेब व

मशरूम, अमृतसर की गुच्छी, बीकानेर की नमकीन सेव, जयपुर के कलाकद जमनाजी की ककडी, लखनऊ के तरबूज आदि इतने के आदी हैं कि आधी जिन्दगी उनके मैनेजरो की इन वस्तुओ को यथासमय जुटाने मे लगती है। स्वय मे यह गुण ग्राहकता खराब नही है, पर सबसे पहले अच्छी-से-अच्छी किस्म का एव भरपूर मात्रा मे जब तक हासिल न हो जाए, उनके चेहरे पर सतोष नही टपकता। कभी-कभी हर चीज का उपयोग करिए, खूब आनन्द लेकर। उसके बाद पटाक्षेप कर देना होगा। हर समय पारखी बन कर रहें कि दुनिया के ये मिर्च मसाले मजे के लिए बने हैं। हम उनके लिए नहीं। जब किसी से अधिक ससर्ग के कारण मन मे कमजोरी आती दिखे और मन यह कहे कि—एक बार और यार, क्या फरक पडता है—तो इसे लालबत्ती समझकर उस वातावरण से फौरन दूर होने मे भलाई है। तभी तो प्राचीन भारतीय ज्ञान यही कहता है कि आग और ईन्धन को एक साथ न रखें। कभी क्लब भी जाए रम्मी खेलने, तो कभी मन्दिर भी। कभी मधुशाला के चक्कर लगाए तो कभी तीर्थों के भी।

प्रकृति के ये कायदे-कानून इतने सख्त व बेरहम हैं कि यहा देर भी नही, अधेर भी नही और घूस व चापलूसी भी नही।

भर्तृहरि ने अपने वैराग्य शतक मे लिखा है कि—भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता, तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा—इसके अनुसार हम सासारिक सुखो को क्या भोग सके, ये ही हमे भोगते है। हमारी तृष्णा कभी थक कर चूर नही होती, हम थक जाते हैं।

अब मजा पाना है कि आजीवन सजा, आपके हाथो है।

26

शहरी प्रदूषण से कैसे बचें ?

कोई 5-7 वर्षों पूर्व तक तो वातावरण के प्रदूषण की चर्चाएं महज बहस के तौर पर हुआ करती थी, सभी लोग यह सोचते थे कि इससे हमारा क्या लेना देना ? मेक्सिको, लौस एन्जलिस व कलकत्ते की घुटन व गदगी तो बरसो से प्रख्यात थी, पर सब इसी मनोवृत्ति के वशीभूत थे कि यह तो और किसी का मामला है, हम तक इसका आगमन नही होगा। पर पिछले एक दशक मे सरकारी नीतियो व व्यवस्था की बुजदिली व दिवालियेपन के कारण बम्बई, कलकत्ता, बगलौर, पुणे इत्यादि कई शहर अब इस हालत मे हो गए हैं कि अब प्रदूषण की विभीषिका साक्षात हरेक के सिर पर नाचने लगी है। आबादी बढ़ती रही, झुग्गी-झोपडियो व गन्दी बस्तियो का पूरा लाभ राजनीतिक एवं गैरकानूनी स्तरो पर भरपूर लिया गया। इन बडी-बडी बस्तियो मे अमरीकी माफियानुमा गुण्डा सरदारो का राज्य हो गया है। ये दादा अपनी-अपनी जागीरो मे खुलेआम विचरते हैं, उन्हीं का कानून है, उन्ही की व्यवस्था। मजाल है पुलिस की अथवा म्यूनिसिपैल्टी की कि उनकी इजाजत के बिना किसी के कत्ल की डायरी दर्ज हो जाय या बिजली, पानी का बिल वसूल न होने पर भी कोई कार्यवाही की जा सके। खैर, बहरहाल माहौल ऐसा बन गया है कि लाखो लोग पेट भरने, नौकरी या रोजी की तलाश मे हर साल इन शहरो म आते हैं और सुरसा के पेट मे समा कर शहर के बहुरगी व्यक्तित्व मे एकाकार हो जाते है। जाहिर है कि बीस सीट के रेल-डब्बे में 80 या 100 लोग ठूस ठास कर भर जाएगे ही, महज गदी सास के और किसी हरकत के लिए न जगह होगी, न ही गु जाइश।

हमारे शहर अग्रेजो जमाने मे बसाए गए थे, सरकारी कार्य-व्यवस्था एव व्यापार की दृष्टि से बबई की बनावट इतनी सुन्दर थी एक जमाने मे (करीब 40-50 वर्ष पूर्व ही, कोई युग नही बीते हैं) कि उस समय के जन-जीवन के चित्र देखते ही बनते हैं। हरे-भरे मैदान, हर मकान-बगले के इर्द-गिर्द बगीचा, साफ

सुथरी सडकें, गरीब बस्तियो मे भी मनमोहक मकान व साफ सुथरीलापन। दादर, माटुगा, गिरगाव, कालबादेवी मध्यम श्रेणी के सभ्रान्त परिवारो के केन्द्र जहा साहित्य-सगीत, नाट्य, पुस्तकालय, स्वाध्याय आदि की मडलिया बरावर गोष्ठिया किया करती। ऐसी ही तुलना कलकत्ते से की जा सकती है। पूना, बगलौर, बेलगाव, रांची, ग्वालियर, जयपुर, मद्रास आदि तो अपने-अपनी विशेषता लिए मनमोहक वातावरण की बस्तिया थी।

पिछले 25 वर्षों मे गावो की बेकारी व दरिद्रता के कारण ये शहर चुम्बक की नाई लोगो को अबाध गति से खीचने लग गए। पहले कलकत्ते का सर्वनाश हुआ, अब अव्यवस्था एव गन्दगी मे बबई कुछ ही पीछे रह गया है। मानव जीवन की कीमत केवल उ० प्र० और बिहार मे ही कम नही हुई है हमारे शहरो मे भी वह नही के बराबर हो गई है।

आज बबई की आबादी करीब 90-95 लाख के बीच मानी जाती है। सही आकडे तो हमारे यहा जनगणना के अधिकारी भी नही बता सकते। 25-30 लाख की आबादी लायक हुआ शहर अब जल्दी ही 1 करोड मानवो के बोझ को झेलेगा। कही शहर की नाली को चौडा किया गया है, कही फुटपाथ को, कही बस सेवा बढाई गई है और कही पुलिस चौकी, पर ये सब नक्कारखाने मे तूती के बराबर है। लिहाजा हर वर्षा ऋतु मे यहा सडकें नियमित रूप से भर जाती हैं। बिजली के तारो मे शार्ट सरकिट से हजारो छोटी-मोटी आग लगती है और जन-जीवन नितान्त अस्त व्यस्त हो जाता है। वैसे भी और दिनो मे शहर के अधिकाश भागो मे लाखो की सख्या मे लोग सडको-फुटपाथो पर मल-मूत्र विसर्जन करते हैं, ऐसी परिस्थिति मे म्यूनिसिपैल्टी करे भी तो क्या ? वह तो घरो का कूडा-करकट भी हटाने मे असमर्थ है।

इसके अलावा शहरो के प्रदूषण के दो प्रमुख गुनहगार हैं। एक तो लाखो की सख्या में लॉरी, टैक्सियो, बसो व मोटरो के जरिए व दूसरे हजारो की तादाद मे फैक्टरियों से निकलते धुए व बहते हुए रासायनिक अवशेष। इन सब को ठीक करने के लिए जिस राजनीतिक सकल्प व व्यवस्था की आवश्यकता है, वह अब तक तो दिखाई दी नहीं। अब नई सरकार ने दिल्ली मे वन-विभाग एव वातावरण को स्वच्छ रखने के लिए अलग मत्रालय की स्थापना की है, देखें कितना काम होता है!

—

हर सर्दी की मौसम मे प्रदूषण की विभीषिका आख को नजर भी आने लगती है। कोहरे (स्मॉग) के रूप में एव गर्म हवा न होने के कारण वह शहरी सतह से ऊपर भी नहीं जा पाती। इसीलिए लाखो की तादाद मे नागरिको को जुखाम, नजला, बुखार, सास का रोग, आखो मे दर्द, गला खराब रहना आदि भुगतना पडता है।

इन सबसे बचने के लिए वातावरण विशेषज्ञो ने बार-बार चेतावनी सार्वजनिक स्तर पर दी है। उनकी राय में यदि शीघ्र कोई लघु एव दीर्घसूत्री कार्यक्रम हाथ मे नही लिए गए, तो शहरो मे बीमारियो के कारण कोई रह नहीं पाएगा। कुछ वर्षों पूर्व टोकियो मे लोग बाहर घूमते समय ऑक्सीजन के सिलिन्डर अपने साथ रखते थे ताकि उन्हें ऐसी हवा अन्दर न लेनी पड़े।

विशेषज्ञो के अनुसार सर्दियो मे घर के खिड़की, दरवाजे बन्द रखने चाहिए ताकि बाहर की जहरीली हवा अन्दर न आने पाए। रेलो व बसो मे घूमने वाले नागरिको को अपने साथ एक गीली तौलिया रखना चाहिए ताकि मुह-हाथ दिन मे 4-5 बार अच्छी तरह साफ किया जा सके। नमक के गुनगुने पानी से 2/3 बार गरारे भी करने होगे।

मुख्य बात यह है कि चोर घर मे तभी घुस सकता है जबकि हमारे ताले दरवाजे मजबूत न हो। गरीब की जोरू, सबकी भाभी के मुताबिक जिन लोगों का स्वास्थ्य ठीक नही रहता, उन्हे प्रदूषण एव ऋतु सम्बन्धी सभी रोग आ घेरेंगे। अत मुनासिब यही है कि हर व्यक्ति को प्रतिदिन थोडा व्यायाम, प्राणायाम एव धूप-स्नान करना चाहिए। व्यायाम से शरीर स्वस्थ व मजबूत होगा, प्राणायाम से फेफडे सशक्त होंगे (प्रदूषण का अधिकाश भाग गले के जरिए फेफडो पर ही वार करता है) और सूर्योदय के समय का धूप सेवन हमारी चमडी व छिद्रो के लिए लाभदायक है। अत जीवन का प्रथम सूत्र नीरोगी काया हमे हमेशा निभाना होगा।

जहा तक दीर्घसूत्री कदम हैं, जो काम सिगापुर, लॉस एन्जलिस, लन्दन टोकियो आदि मे सफलतापूर्वक किया जा सका है, कोई असभव नही है हमारे लिए भी बशर्ते इस विषय मे जनमत बने और आगामी विधान सभाई चुनावो मे सभी उम्मीदवारो से इस क्षेत्र मे आश्वासन हासिल किया जाय।

27

आइए घूमने चलें

पिछले कुछ वर्षों मे यह देखा गया है कि बडे शहरो मे लोग सुबह-शाम घूमने या हवा खाने निकलने लगे हैं। करीब 10 वर्षों पूर्व पश्चिम मे जब जॉगिग (धीमी अथवा मध्यम गति से दौडना) का प्रचलन शुरू हुआ, तब से देखा-देखी हमारे यहा भी रोज सौ-पचास नवजवान युवतिया आधे पेंट अथवा ट्रैक सूट मे दौडते दिखाई देने लगे। बहरहाल, हकीकत यह है कि अभी भी यदि आप नियमित रूप से प्रात अथवा सध्याकाल घूमने जाते हो, तो देखेंगे कि काफी लोग या तो 60 वर्ष के ऊपर है जो सेवानिवृत्त होने के बाद अपने समवयस्को की मडली बनाकर समय बिताने हेतु सैर करते है अथवा वैसे लोग जिन्हें डॉक्टरो ने वजन कम करने अथवा हार्ट सम्बन्धी किसी अनियमितता को काबू मे रखने हेतु घूमने को कहा है।

हम तीन मित्र, हबीब, किशोर और मैं बम्बई मे कॉलेज से पढाई समाप्त कर तकरीबन एक साथ काम मे लगे। यह लगभग 30-32 वर्षों पूर्व की बात है। तब पश्चिमी आधुनिक चिकित्सा पद्धति इतनी मशीनवत् नही हुई थी। आप किसी भी समस्या को ले डॉक्टर के दवाखाने जाते, वह पूरे धीरज व सन्तोष से काफी सवाल करता और सोच-समझकर एकाध मिक्स्चर अथवा गोली तो देता पर खाने-पीने, आराम तथा व्यायाम के बारे मे अवश्य सलाह देता। एण्टीबायटिक व दर्द के एहसास को रोकने वाली गोलिया आ तो चुकी थीं, पर उनका उपयोग आज की तरह हर बुखार (जिसे अब फ्लू या वाइरस का खिताब दिया गया है) अथवा गले खराब होने पर बेबाक नहीं होता।

'हबीब मिया को हम लोग शुरू से अपनी धुन का पक्का व मूडी कहते। जो उसके दिमाग मे बैठ जाता, उसे नियमित करते। उनके वालिद बडे मिया को अधिक वजन व बेसब्री की जिन्दगी के कारण करीब 60 वर्ष की आयु मे भयकर हार्ट अटेक आया। बडे-बडे डाक्टरो से सलाह-मशविरा होकर उन्हें डेढ-दो महीने पूरा बिस्तर मे आराम करने के बाद आगे के लिए रोज 5 कि० मी० घूमने व खान-पान, रहन-सहन मे नियमितता लाने के लिए कहा गया।

हबीब की कुशाग्रता देखिए, उसने उसी दिन से स्वय के जीवन को नया मोड दे दिया। *हम लोग सभी सुबह 7 00—7 30 के पहले* बिस्तर नही छोडते, गिरते-पडते तैयार होकर किसी तरह दफ्तर पहुचते। निशाचर तो थे ही, शाम महफिलों मे गुजरती और सोना बदस्तूर आधी रात से दो बजे के बीच होता। हबीब अब 6 00 बजे उठकर 3-4 कि०मी० घूमते, लेट नाइट बन्द कर 10 00 बजे सो जाते, खाने-पीने मे भी अब स्वाद के स्थान पर गुणो को वजन देने लग गए। किशोर और मैं अब उससे हार कर बिछुडने लगे। जब भी हबीब से मजाक किया जाता तो फटाक कहते, "डाक्टर कहे हार्ट अटेक के बाद, वह पहले ही कर लें तो मुसीबत आवे ही क्यो ?"

उन्ही दिनो मे अमेरिका के जगत् प्रसिद्ध डॉ० चार्ल्स कुजलमैन, जिन्हें अपनी विशेष चिकित्सा पद्धति के कारण वहां की मेडिकल सोसाइटी का सर्वोच्च मान-पत्र मिला था, भारत मे एक एशियाई कार्फ्रेंस के लिए आए। अब उनकी *देख-रेख मे लम्बे व गम्भीर शल्य चिकित्सा से उठे व्यक्तियो को थोडे ही दिनो* मे पलग से उठा कर खडा कर दिया जाता। उससे पूर्व हार्ट की बीमारी वालो को 30-40 दिन से लेकर, प्रसव वाली महिलाओ को 4-6 दिन आराम के लिए अस्पतालो की शय्या पर रखा जाता था। एण्टीबायटिक व दर्दनाशक गोलिया बेखौफ मुट्ठी भर दी जाती। डा० कुजलमैन ने दवाइया न्यूनतम व शारीरिक पोषण प्रकृति पर छोड रखा था। वे कहा करते कि जवानी से लेकर बुढापे तक की सारी बीमारियाँ-विकृतिया रोज 3-4 कि०मी० घूमने से पास मे भी नही फटकती।

भारत आगमन के दौरान डा० कुजलमैन ने एक तीन घण्टे का सेमिनार सामान्य नागरिको के लिए किया जिसमे उनके अनुसार नियमित सैर करने के अनेक गुण हैं जैसे पाचन-शक्ति, शारीरिक स्वास्थ्य, चर्बी व वजन का सतुलन, अच्छी नीद आना आदि।

आजकल मध्यम व उच्च वर्गों के व्यक्तियो की समस्याएं मोटापे व चर्बी से शुरू होती हैं। शारीरिक परिश्रम रहा नही, अगडम-सगडम खाना-पीना बराबर चलता रहता है। यदि आपने दिन भर मे 2200-2400 कैलरी खुराको से *अन्दर ली है, तो दिन भर मे या तो इतनी ही खर्च कर लें, अन्यथा शेष बची* हुई मात्रा से चर्बी तो बढेगी ही। एक किलो चर्बी मे करीब 7000 कैलरी का अनुपात भरा है। यदि आप अपनी सामान्य दिनचर्या मे 20-25 मिनट का तेज घूमना जोड लें तो वर्ष मे 6-7 किलो तो वैसे ही कम हो जाएगा। मेरे मित्र किशोर को भ्रम है कि यदि वे सैर के जरिए खुली हवा का व्यायाम शुरू करें तो उन्हें भूख अधिक लगेगी और खाना बढने से करा-कराया गुड-गोबर हो जाएगा। आप व्यायाम करें तो भूख व पाचन-शक्ति तो अच्छी होगी ही, पर

न करें तो भूख तो करीब उतनी ही खुराक मागेगी, हा आलस्य व पाचन-शक्ति मे फर्क आएगा। उसी तरह केवल डायटिंग से आपका काम नहीं चलेगा, जो आजकल खासतौर पर महिलाओ के सिर पर भूत जैसा सवार है। किशोर का वजन 75 किलो हो गया है और उसे डाक्टरो की सलाह कई बार मिल चुकी है, लेकिन 'महूरत' नही हुआ है।

यदि आपकी रफ्तार 4 मील प्रति घण्टे है (6 कि०मी०) और वजन 100 पाउण्ड तो एक घण्टे घूमने मे 240 कैलरी खर्च होगी, 140 पाउण्ड वजन वाले के 325 कैलरी। अब आप अपनी दूरी व चाल दोनो तय कर सकते हैं। लेकिन सप्ताह मे कम-से-कम 6 दिन तो अवश्य नियमित घूमे, चाहे सुबह अथवा शाम।

आजकल देखो जिसे मूड खराब लिए मिलता है। जीवन एक पहाड़ हो गया है। लोग समझते हैं कि शेषनाग की तरह विश्व का सारा बोझ उन्हीं पर है ! हर व्यक्ति का कण-कण तनाव मे है क्योकि एक ता हर कार्य 'डेडलाइन' के मुताबिक किया जाना होता है और दूसरे तनावरूपी इस कढाई के तेल को ठण्डा होने का मौका मिलता ही नही, इसीलिए जो प्रसग इसके सम्पर्क मे आया, वही तल-जल कर बर्बाद हो गया ! आधुनिक सभ्यता हमें भद्र व्यवहार के तौर पर सिखाती है कि गाली का जवाब गाली से और गोली का गोली से नही देना है। सो स्नायुतन्त्र पर आक्रमण तो होते रहते हैं पर प्राचीन काल का विवेक नही और मध्ययुगीन प्रवृत्ति नहीं जिससे व्यक्ति अपनी भडास तत्क्षण मार-पीट या शिकार के जरिए पूरी कर ले। सो देखो जिसे सफारी सूट व शिफान की साडी मे चलते फिरते बारूद के गोले की तरह रहते हैं, चिनगारी जो हो, विस्फोट अवश्यम्भावी है।

ऐसे आधुनिक जीवन के लिए प्रात: साय सैर करना अत्यन्त लाभप्रद माना जाता है। जो तनाव शरीर मे जमा हो जाता है वह तेज गति से खुली हवा मे घूमने से कम-से-कम थोड़े समय के लिए गायब हो जाएगा। घूमने के साथ गौर से सोचें कि आप कितने भाग्यशाली हैं कि चाहे जब अग-प्रत्यग चल रहा है, हवा में ऑक्सीजन मिल जाती है, गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त बराबर अबाध गति से काम कर रहा है, फिर अपने-आपको मायूसी व हताश भावना में डालने से क्या मतलब ? विश्व के सारे सूर्यास्त-सूर्योदय, प्रकृति का विलास, फूलो व हरे-भरे पेडो के रूप मे व धरती की उपज दूध-सब्जी, फल-फूल के रूप मे आपको हासिल है, इससे अधिक शाही भाग्य क्या हो सकता है ? प्रफुल्ल मन से आधे घण्टे घूमकर देखें, मनोदशा कैसे बदलती है।

अमेरिका मे बेथेस्डा (मेरी लैण्ड) के नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ हेल्थ मे हुए त्रिदिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन मे सारे आकडों व अन्वेषण के आधार पर कुछ समय पूर्व आधुनिक जीवन को स्वस्थ व स्फूर्त रखने हेतु कहा गया

1 पैदल घूमना मन व शरीर के लिए सबसे लाभप्रद व कारगर प्रक्रिया है। इसे हर कोई किसी भी उम्र मे शुरू कर अन्त समय तक बिना किसी डर के निभा सकता है।

2 लोगो की उम्र जैसे-जैसे बढती है, उनकी हड्डियो से खनिज पदार्थ कम होते जाते हैं जिससे प्रौढावस्था तक घुटनों व अन्य जोडों मे दर्द व गठिया की सम्भावना बढती रहती है। यदि नियमित सैर की जाए, तो ये समस्याए आपको अपना मुह भी नहीं दिखायेंगी।

3 दूषित वातावरण व सिगरेट आदि के कारण हमारे फेफडो की जो दुर्गति होन लगती है वह खुली हवा की सैर से दूर हो जाती है। जैसे हम अपना घर रोज साफ करते हैं, उसी प्रकार फेफडे घूमन से व पेट खाने पीने की नियमितता से साफ करने होगे।

4 हार्ट तक खून पहुचाने वाली नसो व धमनियो मे उम्र के साथ चर्बी व कोलेस्टरोल की परत जमने लगती है, जो बढकर हार्ट अटेक का रूप लेती है। रोज घूमने वालो को इसका खतरा नगण्य होता है, क्योंकि दिन मे एक बार वे रक्त सचालन की त्वरित क्रिया कर लेते हैं।

5 उम्र के साथ हम लोगो के मोटापे बढने की प्रवृत्ति रहती ही है, क्योकि शारीरिक स्फूर्ति व यौवन का बल क्षीण होता रहता है। इससे पैदा होने वाले विकार भी हमसे दूर रहेंगे। डायबीटीज व गठिया निष्क्रिय जीवन के ही उपहार हैं।

नित्य की सैर (आधे घण्टे की ही सही) के अलावा यदि 20 मिनट योगासन का अभ्यास रखा जाय, तो सोने मे सुहागे का काम करेगा। ये दोनो प्रक्रियाए एक-दूसरे की पूरक है और आज के जीवन मे दोनो ही आवश्यक। हम कभी सोचते हैं कि अभी बहुत समय शेष है, यह सब काम 'किसी और दिन" के लिए छोड देते हैं। बहुधा लोग सोचते हैं कि यह सब तो रिटायर होने के बाद करेंगे, उस समय टाइम ही टाइम है। पर किसका टाइम कब आ जाए, यही तो एक हकीकत हमारे हाथ मे नहीं है। फिर भयकर पश्चात्ताप होता रहता है।

हबीब व किशोर के प्रसग के बाद अपनी आपबीती भी सुनानी होगी। पिछले दस वर्षों मे 'स्पोण्डिलोसिस" व "स्लिप डिस्क" (दोनो रीढ की हड्डी के भयकर दर्द) के जरिए यातना भुगत चुकने के बाद अब प्रात सैर व योगासन जीवन के अभिन्न अग बन गये हैं। स्विटजरलैण्ड मे बरफ गिरता हो अथवा उत्तरकाशी की बर्फीली हवा, सैर किए बिना मेरा दिन शुरू नही होता। लोग कहते हैं सैर-सपाटे के साफ-सुथरे स्थल दिल्ली जैसे और कही नही है, सो यहां मन नही करता। जब लाचारी अकस्मात आ जाएगी, तब तो मन करने पर भी तन को इजाजत नहीं मिलेगी।

28

भले लोगों के साथ अन्याय क्यों होता है ?

हमारा देश मेले ठेलो का कुनबा है। करोडो की आबादी है। अब शायद आपके जीवन काल मे 100 करोड की सख्या हो जाय। लेने वाले अनगिनत हाथ हैं, पर दुर्भाग्य से सामाजिक व आर्थिक परिस्थितिया ऐसी बना दी गई हैं कि चारो ओर छीना-झपटी, भीड-भडाका, चोरी-डाका, घूस आदि का बोलबाला है। किसी भी सुविधा की योजना की जाती हैं, खिडकी, चाहे किरोसीन की हो अथवा पकाने के तेल की, रेल की यात्रा हो या झुग्गी-झोपडियो के प्लाटो की, बैंक के कर्ज की हो अथवा बिजली के तार को खेतो मे पहुचाने की, खुलने के पहले ही सारे सौदे तय हो जाते हैं, जिनकी पहुच है, उनमे यथोचित 'दक्षिणा' मिलने के बाद, सुविधा हासिल हो जाती है, बाकी निन्यानवे प्रतिशत हाथ मलते रह जाते हैं। सदियो से चुपचाप जुल्म सहते सहते हमारी पीढिया हतप्रभ व नपुसक हो चुकी हैं। सबके मन मे यही टीस है कि बदमाश-उचक्को का काम कैसे हो जाता है और हमारी जनसख्या का अधिकाश भाग जो निरीह तो है ही, भला भी है, उनका भला क्यो नही होता ? कोई आसमान मे बसे भगवान को ताकता है, कोई सुमरनी फेरते माला के नीचे मद गति से धडकते हृदय को समझाता है कि हमारा भाग्य ही ऐसा है, क्या करें ?

रत्नप्पा कोडाजी कुभार सागली के पास के गाव मे एक वृद्ध किसान है। घर म अपाहिज बहन, चार लडके व उनके परिवार हैं। सबके नाम कुल मिलाकर 30 एकड पथरीली जमीन का खेत है। यही उनकी पुश्तैनी धरोहर हैं, हालाकि लिफ्ट इरीगेशन इस इलाके मे कई बरसो पहले आ चुका था और प्राकृतिक न्याय के लिहाज मे तो रत्नप्पा को सिंचाई का पानी पिछले ही साल मिल जाना चाहिए था पर सब फार्म भरने और तहसीलदार व सिंचाई विभाग के पचासो चक्कर लगाने के बावजूद उसे नही मिला। आस-पास

के और उससे भी दूर-दराज बडे किसानों को हाथो-हाथ पानी बिजली मिल गए, क्योंकि सभी ने पाच से आठ हजार रुपए देकर अपना-अपना काम बना लिया था। रत्नप्पा की हिम्मत नही हुई कि गाव के साहूकार या बैंक से कर्ज लेकर काम करा लेता। आज वह केवल ज्वार, बाजरे की खेती कर पाता है। वह भी वर्षा के आसरे, जबकि लोग गन्ने, मेस्टा व तिलहन की दो-तीन फसलें कर लेते हैं।

विनय बसल को फरीदाबाद मे आटोमोबिल एन्सीलरी (मोटर गाडियो, बसो व स्कूटर के कल पुर्जे) की फैक्टरी लगानी थी। मारुति कार वालो ने ऐलान किया था कि जो अगले साल भर मे उनके नक्शो के मुताबिक सतोषजनक फैक्टरी लगा सकेंगे, उन्हें नियमित आर्डर मिलेगा। कई लोग इस फैक्टरी के लाइ-सेन्स की फिराक मे थे क्योंकि सन् 1982-83 के बाद भारतीय सडक वाहनो की बनावट व आधुनिकीकरण रातो रात सरकारी नीति के परिवर्तन से आ गया था। विनय ने दिल्ली मे जहा-जहा बटन दबाने से काम होता, उनका पता लगाकर 'साम-दाम व भेद' से पचास-साठ हजार लगाकर अपना लाइसेन्स निकलवा लिया। पावर की कमी होने के उपरान्त अपनी तिकडम व आवश्यक घूस देकर काम कराया गया। एक बार व्यवस्थित सेम्पल निकाल मारुति कम्पनी मे *पास कराने के बाद विनय को अब घूस-चापलूसी की आवश्यकता नहीं है, न* ही उसका वैसा स्वभाव है। पर यदि विवश होकर वह अपनी स्कीम को पूरा न करता तो कोई और उसकी जगह होता और विनय भी अन्य मायूसो की तरह अपना जी जलाता रहता और नौकरियों धन्धो की तलाश मे भटकता रहता।

पिछले दिनो लोनावला से लौटते वक्त दादर (बम्बई) मे असगर अली की टैक्सी की वेस्ट की बस से भयकर दुर्घटना हुई। बस वाला तो भाग निकला, टैक्सी ड्राइवर और असगर बुरी तरह घायल हुए पडे थे। पुलिस के डर के कारण बम्बई मे कोई एक्सीडेंट के शिकारो की परवाह नहीं करते। घायल व्यक्ति खून बहाता दम तोडता हो तो कोई बात नही, पैदल लोगो *की भीड बात की बात मे* जुट जाएगी; पर कोई टैक्सी गाडी रोक कर उसे अस्पताल या पास के डाक्टर के यहा नही ले जाता, कई लोगो की जानें इससे जाती होगी, पर पुलिस व कचहरी के चक्कर मे कोई आना नही चाहता। बहरहाल उस दिन दैव योग से माधव पाटणकर अपने तीन मित्रो के साथ उधर से गुजर रहा था। उन्होने दुर्घटना देखते ही आव देखा न ताव, असगर को उठाकर गाडी मे लिया और सीधे जे० जे० अस्पताल ले गए। वहा एकदम सन्नाटा छाया हुआ था, दफ्तर मे केवल रेजीडेंट डाक्टर मिले, जिसने बताया कि एक दिन पहले से ही डाक्टरो की हडताल हो चुकी थी। एक दो मिन्नत करने के बाद भी जब वह टस से मस नही हुआ तो माधव ने डाक्टर का

गरेबा पकड कर उसे धमकी दी कि अगर उसने फौरन घायल को फर्स्ट एड नही दिया तो वह उसके दात तोड देगा। डाक्टर ने फौरन घाव साफ कर मरहम पट्टी की और एक लिटर खून चढाया। उसके बाद मरीज को उन लोगो ने उसके रिश्तेदारो को फोन कर सुपुर्द किया और खुद चलते बने।

सुन्दरम् आयगर मद्रास मे थियोसोफीकल सोसाइटी मे रजिस्ट्रार का काम करता था। एक दिन सुबह ही पाच बजे फोन आया बम्बई से कि सोफिया पोलीटेकनीक मे पढती उसकी लडकी जया के एपेण्डिक्स का एमर्जेन्सी ऑपरेशन हुआ है और उसे फौरन बम्बई आना होगा। उन दिनो इण्डियन एयरलाइन्स गर्मी की छुट्टियो की वजह से 15-20 दिनो के लिए फुल जा रहे थे और सीट मिलने की गरज-मिन्नत करने के बाद भी कोई गुजाइश नही दिखाई पडी। सुबह 7 बजे प्लेन जाने वाला था, एयरपोर्ट पर वह व्यग्रता से चहलकदमी कर रहा था। इतने मे उसके दूर के रिश्तेदार अपनी लडकी (सात वर्ष की) के साथ बम्बई जाते मिले, उसकी जरूरत सुन उन्होने लडकी की आधी टिकट उसे देने को राजी हो गए। वे समझे कि आधी टिकट पेश करने से उनकी लाज भी रह जाएगी और सुन्दरम् के इन्कार करने से काम भी बन जाएगा। सुन्दरम् ने आधी मिनट सोचकर उनसे कहा कि वे तीनो सीट स्वय चेक इन करा दें और बाद मे वह बोर्डिग कार्ड ले लेगा। बेईमानी तो हुई, पर मरता क्या न करता, सुन्दरम् इसी के सहारे बम्बई पहुच गया।

ऊपर साम, दाम, दड, भेद के कुछ काल्पनिक प्रसग आपने पढे। ऐसी घटनाए हरेक के जीवन मे पग-पग पर होती हैं। हम मे से अधिकाश लोग मन मसोस कर हाथ मलते रह जाते हैं और जो मुट्ठी भर लोग (भारत की जनसख्या का ऊपरी 15 प्रतिशत भाग) अपनी तिकडम, चालाकी व हर सभव तरीको से काम निकाल लेते हैं, उन्हे कभी कोई कमी नहीं महसूस होती चाहे उन्हें अपने रुपये व्हाइट करने के लिए रेस के जैकपाट की जरूरत हो या मारुति कार के अलाटमेंट की।

हमें यह नही सीखना है कि हम हृदय से कुटिल बनें और बिना वजह बेरहमी और अन्याय करें। जमाने के वातावरण को देख यथोचित साम, दाम आदि की वजह से अपना काम बना लें जिससे दूसरो की विशेष हानि न हो, तो ऐसी दिशा मे कोई पाप नहीं है।

दुनिया मे दो तरह के लोग स्वभावत होते हैं, सक्रिय एव मुस्तैद जो हमेशा हर काम में बुद्धि व तर्क से व्यवहार करते हैं और बाकी नब्बे प्रतिशत ऐसे होते हैं जिन्हें निष्क्रिय व निढाल कहा जा सकता है जो राम भरोसे भाग्यवादी होकर जीवन-यापन करते हैं। ये लोग बुद्धि नही मन के अनुयायी होते हैं। मन में जची तो सिनेमा हाल पहुचे। पता चलेगा कि हाउस फुल है।

सोचा कि शिमला चलना चाहिए तो रिजर्वेशन के बिना, गिरते-पड़ते, तकलीफ पाते पहुचेंगे, ऐन मौके पर टैक्सी, होटल वाले सभी उनका फायदा उठाएगे। कई लोगो को प्लास्टिक की फैक्टरियो मे कमाते देखा-सुना, खुद ने भी बिना मार्केट के अध्ययन-विश्लेषण के लगा दी। साल छ महीनो मे पता लगता है कि इस व्यापार मे तो जरूरत से ज्यादा उत्पादन होने से मुनाफे की गु जाइश कम है। दस-पन्द्रह लाख रुपये की पू जी साफ हो जाती है तो अपना अनुभव सबको कहते फिरेंगे कि उद्योग मे कोई चाल नही है, वे तो बुरी तरह फस चुके है, अब किसी को इण्डस्ट्री मे जान की सलाह नही देंगे। ऐसे लोग स्वभाव से भले होते हैं, पर आवश्यक चतुरता मे चौकन्नेपन न होने से हमेशा मार खाते हैं।

निष्क्रिय भले लोगो के अनुपात म सक्रिय बुरे लोग कम तो हैं पर अपनी कुटिलता व तीसमारखाई की वजह से हमेशा दूध का मक्खन व मलाई हड़पने मे सफल होते हैं। सभी लोग अपने को मायूसी से कोसते रहते है कि अब भले लोगो का जमाना ही नही रहा, अपना दामन साफ रख कर रहे तो ही बहुत है। वृद्ध और रिटायर लोग इस तरह की चर्चा करें तो कोई बात नही। शुरू से ही लोगो की इस भावना को देख सुन मुझे आश्चर्य होता है। सक्रिय बुरे लोगो से कही कम (लाखो मे कुछ) सक्रिय भले लोग होते है और वे ऐसे बुरे लोगो को नेस्तेनाबूद करने मे सक्षम व सफल होते हैं। इसी के कारण आज बुरे व चालाक लोगो का बोलबाला है और स्वय को व औरो को उबारने वाले अच्छे लोगो के नितान्त अभाव से ये लोग बेरोक-टोक अपना साम्राज्य व मनमानी चलाते हैं।

कृष्ण साथ न होते तो निष्क्रिय भले पाण्डवो को कही न पनाह मिलती और न विजय, कौरव न केवल कुटिल व क्रूर थे, साथ ही साथ अत्यन्त सक्रिय थे, तभी मन से काम करने वाले युधिष्ठिर को जुए म हारना पड़ा और बाद मे पाच गाव मागने पर भी नही दिए गए। कई लोग कहते हैं कि कृष्ण की चालाकी से अश्वत्थामा की मृत्यु का सन्देहात्मक सन्देश दे द्रोणाचार्य को मरवाने, कर्ण के रथ के पहिए को ठीक करते अर्जुन से मरवाने और अन्य कई घटनाओ मे तथाकथित 'अन्याय' का सहारा लिया। लोग भूल जाते हैं कि धर्म के नियम धर्मयुद्ध मे ही लागू होते है। जो दूसरो के राज्य को हड़पने, बारह वर्ष के बनवास मे शिकारी की तरह निहत्थो का पीछा करने वाले एव द्रौपदी को रजस्वला अवस्था मे भरे दरबार मे निर्वस्त्र करने की चेष्टा वालो के साथ कैसी दया, नियम या शास्त्रोक्त विधि अपनाई जाय ? श्रीकृष्ण ने इसी कारण पाडवो का साथ दिया और उन्हें जिता कर फौरन द्वारका लौट गए।

कस के साम्राज्य से लेकर महाभारत के युद्ध तक वे कई राज्य अपने अधीन कर सकते थे, पर उनके मापदण्ड कुछ और थे।

चाहे दिल पसीजने पर बिना सोचे समझे भिखारियो को भीख देना हो या मन्दिरो के महन्तो को दान, पति के स्वास्थ्य की परवाह न कर भारतीय स्त्रियो का उनको ठूस-ठूस कर खिलाना हो अथवा नेक-नीयती के दबाव मे किसी कीमत पर येन-येन प्रकारेण अपने हक को हासिल न करना—ये सब सक्रियता बनाम निष्क्रियता के क्षेत्र मे अवस्थित है। हमें भले-बुरे की पहचान बुद्धि द्वारा करनी होगी न कि महज ऐसे तौर पर कि लोग क्या कहेंगे। हमारी उन्नति या अवनति बहुत कुछ हमारे ही हाथो मे है बशर्ते हम जीवन कला को सीखें एव आजमाए।

29

जीवन के नये सहारे

नरेन्द्रनाथ अब 63-64 वर्ष के हो गए है। 17-18 साल की उम्र मे ही उनके पिता ने उन्हे काम पर लगा दिया था। बीस वर्ष के होते-होते दूसरा विश्वयुद्ध छिड़ चुका था जिसका प्रभाव भारत पर भी पडा। हर चीज के दाम दिन दूने रात चौगुने होने लगे।

उन दिनो सभी बडे-बडे व्यापारी बमबारी के डर से कलकत्ता छोड कर बम्बई जा बसे थे। नरेंद्रनाथ ने यहा कपडे की एक मिल खरीदी और तब से उन्होंने व उनके भरे-पूरे परिवार ने पीछे मुड कर नही देखा।

देश मे शायद ही कोई चलता पुरजा व्यापारी ऐसा होगा जिसने उस दौरान लाखो-करोडो न बनाए हो। नैतिक आदर्शों, सिद्धातो का तो किसी के लिए महत्व ही नही रहा था। लिहाजा नरेन्द्रनाथ भी 25 साल के होते-होते एक अच्छे करोडपति आसामी कहलाने लगे।

रात-दिन भाग दौड, परेशानी, उद्योग-धन्धो की समस्याए, दिल्ली के रोज के चक्कर, करोडो का वार्षिक लेनदेन है। बेटे, पोते, नाती, सगे सबधियो का बडा कुनबा है। समाज मे ऊचा नाम है।

नरेन्द्रनाथ ने अपने जीवनकाल मे कभी काम से अवकाश या छुट्टी नही ली। तीर्थयात्रा भी जाते तो तूफान मेल की तरह और लौटते तो राजधानी एक्सप्रेस से भी तेज।

कही से विमान पकडा तो कही से टैक्सी। तिरुपति मे नीचे वाले मन्दिर मे माथा टेक आंधी की तरह ऊपर चले जाते। वेंकटेश्वर को हमेशा एक-दो लाख से रिझाते और वापस बम्बई भाग आते।

घर के सभी प्राणी इनकी इस चाल से परेशान थे, पर काम का नशा शराब से भी अधिक होता है। न बच्चे कहीं घूमने जा पाते, न और लोग।

मसूरी, शिमला, नैनीताल, कश्मीर की तो बात ही और है, माथेरान व

महाबलेश्वर भी पिछले 40 सालो के प्रयास मे एकाध बार ही गए होगे और वह भी उसी गति और उधेडबुन मे। 'आराम हराम है' का नारा जब से उनका तकियाकलाम बना तब से तो वह और भी गतिशील हो उठे।

कोई तीन-चार वर्ष पूर्व उनको दिल का दौरा पडा। दफ्तर जाने के लिए गाडी से निकले ही थे कि गश खा कर गिर पडे। अस्पताल मे पहुचाए गए तो रक्तचाप 240-140 और नब्ज एक दम अनियमित। 72 घण्टे तो किसी भी केस मे डाक्टर कुछ नही कह सकते, बाद मे धीरे-धीरे जाकर स्थिति काबू मे आ सकी।

तीन हफ्ते अस्पताल मे रहने के बाद अनेक हिदायतो के साथ घर लाए गए। जिन्दगी का पूरा ढाचा ही बदल गया। अब वह पूरी नियमितता से चलने के लिए बाध्य हो गए। शाम को शीघ्र हल्का भोजन, प्रात एक दो किलोमीटर घूमना, खाने पीने, काम व आराम की पाबन्दी और जीवन की रफ्तार एकदम धीमी।

जैसे सब को श्मशानी वैराग्य लगता है, वैसे ही धीरे-धीरे नरेन्द्रनाथ ने घर वालो के बहुत कहने सुनने के बावजूद अपनी गतिविधिया फिर से तेज कर दी। बहुत हुआ तो यहा वहा नाती पोतो के साथ कभी वीडियो देखने बैठ जाते।

पर मन काम किए बिना माने तब न। बात आई गई हो गई और दिल ने दोबारा जवाब दे दिया। वापस अस्पताल, फिर से डाक्टरो के गम्भीर भाषण और नरेन्द्रनाथ को लगा जैसे वह वीराने मे एक चौराहे पर खडे हो।

नरेन्द्रनाथ को पता नही कि हाथ-पाव मे हथकडी और बेडिया लगने के बाद जिन्दगी कैसे गुजरती है। उन्होने न कभी ताश के पत्तो की शक्ल देखी, न एलिफेंटा व जुहू की सैर की। क्लब जाने या व्यापार उद्योग के अलावा जिन्दगी मे कभी कोई दोस्त नही बनाया जिसे जरूरत पडने पर दिल का सुख-दुख कह सकें।

अब दफ्तर का आधा काम करने दिया जाता है वह भी घर पर। किताबें पढ़ने का सब्र नही। जीवन बोझिल बन गया है। अब रात को सोने के लिए व दिन मे खून का दबाव ठीक रखने के लिए गोलियां लेनी पडती हैं। स्वभाव पहले से ही उग्र व चिडचिडा था, अब और भी हो गया है।

इदिरा के विवाह को कई बरस हो गए हैं। अब 52-53 की उम्र है। अच्छे खानदान मे एक वकील से विवाह कर वह सुख व सतोष से जीवन बिता रही थी। कमलनाथ सर्वोच्च न्यायालय मे एक मशहूर वकील थे। मुवक्किलो व किताबो से ही कभी फुरसत नहीं मिली।

वह हमेशा इस मामले मे दोषी भावना के कारण इंदिरा को क्लबो मे ले जाते, उसे सभा सोसायटी की सदस्य बनने व अपनी रुचि की गतिविधियों को बढाने को कहते, पर इंदिरा अपने घर मे ही मस्त व सतुष्ट रहती थी।

लडकी का विवाह हो चुका था। पति की समाज मे अच्छी इज्जत थी, अत इंदिरा को घर गृहस्थी सभालने व पति के मेहमानो की देखभाल के अलावा कभी कोई कमी महसूस नही हुई। हालाकि वह स्वय बी० ए० पास थी, फिर भी बाहर की दुनिया से कभी विशेष सम्बन्ध नही रखा।

कमलनाथ किसी केस के सिलसिले मे बम्बई गए हुए थे। होटल के कमरे मे ही रात को एकाएक दिल की धडकन बन्द हो जाने से सुबह बिस्तर पर मृत मिले।

मृत्यु के करीब दो-तीन महीने तक तो इंदिरा एकदम गुमसुम रही, मानो उसे किसी चीज का आभास ही नही था। इतने बडे व आकस्मिक धक्के को बरदाश्त करने की न उसने कभी कल्पना की थी, न ही उसमे शक्ति थी।

लडका अब 24-25 बरस का था। उसे किसी दफ्तर मे नौकरी मिल गई थी, पर इतने मे गुजारा चलना मुश्किल था। वह चार-छ महीने बाद विवाह कर के अलग मकान मे रहना चाहता था, क्योकि पिता की इतनी बडी कोठी की देखभाल करना अब सभव न था।

इंदिरा ने न तो कोई शौक पाला था और न ही कोई सहेलिया बनाई थी। आत्मनिर्भरता नाम की चीज का तो कभी विचार नही आया था, न ऐसी उम्र व सस्कार ही थे कि दोबारा विवाह की कल्पना कर सके?

लडका विवाह के बाद अपनी बीबी की दुनिया मे रहने लगा था, लडकी तो पराई हो ही चुकी थी, इंदिरा को चारो तरफ अन्धेरा ही अन्धेरा नजर आने लगा।

जिन्दगी तो हर इन्सान गुजार लेता है, जानवर भी, पर हम मे से बहुत कम लोग सोचते हैं कि जब दफ्तर या व्यवसाय के काम से मुक्ति मिलेगी या 58-60 साल की उम्र मे हमारा निर्वाह कैसे होगा?

निर्वाह केवल रुपए-पैसे से नही होता, ग्रेचुटी, भविष्यनिधि, पेंशन आदि तो बहुतेरे पा लेते हैं, पर एकाएक बदली परिस्थिति को हम सभाल नही पाते।

सेवा निवृत्त होने के बाद महीना बीस दिन तो चैन से कटते हैं, क्योकि सुबह आठ नौ बजे दौडते भागते दफ्तर नही जाना पडता, न ही दफ्तर की जिम्मेदारी होती है। अब तो मन के राजा हो गए, पर मन निगोडा चैन नहीं लने देता। सुबह मे ही समय काटने दौडता है। काम धन्धे के दिनो मे जिन

मित्रों से मिलना नही होना था, वे भी अब मिलने से कतराते हैं। कब तक सग्रहालय, आर्ट गैलरी व मन्दिरों के चक्कर लगाए जाए ? शुरू से ही जीवन मे आत्मनिर्भरता व स्वावलबन पर जोर दिया जाना चाहिए। हम दुनिया मे भाई, बहन, पिता, पुत्र, मित्र आदि नाते रिश्ते ले कर आते है, कुछ बनाते हैं, कुछ बिगाडते हैं, लेकिन एकाकीपन व अकेले रहने की क्षमता के भेद को नही जानते।

भारतीय परिवारों मे बच्चा जरा रो द, मा-बाप तो बाद मे, ताई, दादी, नानी, फौरन उठाकर बच्चे को अक मे लगा लेती है, उसे फौरन चुप कराया जाता है, मीठी गोली चाकलेट मुह मे भरी जाती है। इस तरह पूरी तरह दूसरो पर आश्रित बन जाता है। हर माता-पिता अपने बच्चो की हर इच्छा पूरी करने की कोशिश करते है, यह सोचे-समझे बिना कि आगे जाकर बच्चो को स्कूल व कालिज व दुनिया मे न जाने कैसी स्थितियो से मोर्चा लेना पडे।

कभी हमे नितात अकेले रहने का मौका पडे तो जी घबराने लगता है। अपना घर भी काटने को दौडता है। बिना वजह काफी हाउस, सिनेमा घर या अन्यत्र भटकते रहते है, ताकि रात को थक कर चूर हो फौरन नीद आ जाए।

यह सब इसलिए होता है कि शुरू से ही हम आत्मनिर्भर होना नही सीखते, न ही अवकाश के क्षणो मे पुस्तकें पढन, सगीत सुनने, नए-नए विषयो की जानकारी करते है। आवश्यक है कि हम शुरू से ही बिना किसी सहारे के सुखपूर्वक जीने की कला सीखें। हर व्यक्ति अपने अन्दर कोई न कोई शौक पैदा कर सकता है। यह कला सेवानिवृत्त होने अथवा अकस्मात ओले पड जाने पर बडी काम आती है।

यह जरूरी नही कि यदि आप मे अभी तक किसी विषय मे रुचि पैदा न हुई हो तो अब कुछ नही हो सकता। पूरी जिन्दगी नए-नए अनुभव, ज्ञान व दिशाए देती है, फिर आज से ही क्यो न कुछ शुरू करें।

30

इन सबसे कैसे छुटकारा मिले ?

समय-समय पर हमारे देश में 'श्रद्धालु' वर्ग में से कोई न कोई सद्भावना व अल्प जानकारी के आधार पर एक न एक विवाद खाने-पीने व रहन-सहन के बारे में उठाता रहता है। कुछ दिन बात का बतगड़ बनता है सोई हुई भावनाएं जगती हैं और समयोपरान्त वापस शान्ति। इन सभी विवादों का एक मात्र यही कारण है कि हम भारतीय पुरातन साहित्य की असली यथार्थता व तत्व से अनभिज्ञ हैं और प्रामाणिक शास्त्र व अन्य सामयिक-पुराणों के युगानुकूल भेद को जानना नहीं चाहते।

उदाहरण के लिए पिछले वर्ष भारत के हिन्दू समाज में उस वर्ष के तीज-त्योहार, दशहरा-दीपावली को लेकर अधिक मास होने के कारण पशोपेश व वाद-विवाद बना हुआ था। *ज्योतिषियों, कर्मकाण्डियों, पण्डितों, नक्षत्र वेध-*शालाओं के संचालकों से लेकर शंकराचार्यों तक ने इस विषय में भाग लिया, पर फिर भी साधारण हिन्दू को समझ नहीं आया कि 27 सितम्बर को दशहरा मनाया जाए कि 27 अक्तूबर को। उसका असर दीवाली पर भी पड़ेगा। स्पष्टतया पण्डितों के दो मत थे और यह भी हमारे इतिहास से स्पष्ट है कि हम लोग आपस में सदियों से इन बातों के विचार-भेद व शास्त्रार्थ पाण्डित्य को मुख्य मानते हैं, जीवन के मौलिक व मूल स्वरूप को नहीं। तभी तो आक्रामक हमारी धरती को अपनी सेना के आगे गायों को रखकर हमें जीत सके हैं। इतिहास ऐसी घटनाओं से भरा पड़ा है।

बहुत से घरों में एकादशी व पूर्णिमा का व्रत (उपवास) रखा जाता है। परम्परा के अनुसार घरों में उन दिनों 'विशेष सामग्री' बनती है अतः आसानी से काम चलता है। यह सामग्री क्या है, इसके बारे में न पूछें तो ही अच्छा है। खैर, कुछ दिनों पूर्व 'एकादशी माहात्म्य और व्रत-विधि' नामक फरवरी 1973 के 'कल्याण' के अंक में एक लेख में ही दो श्लोक आए, जिससे फिर शंका उठ खड़ी हुई।

"एकादशी सदा पोष्या पक्षयों शुक्लकृष्णयो" (सनतकुमार)
याने शुक्ल पक्ष हो अथवा कृष्ण, एकादशी हमेशा करनी चाहिए। कुछ पंक्तियो के बाद आया है :—

विधवाया वनस्यस्य यतेश्चैकादशीद्वये ।
उपवासो गृहस्यस्य शुक्लायामेव पुत्रिण ॥ (कालादर्श)

याने पुत्रवान् गृहस्थ केवल शुक्ल एकादशी करे और वानप्रस्थ, सन्यासी और विधवा दोनो, अब कौन निर्णय करे कि इन दोनो ऋषियो मे कौन बड़ा न्यायाधीश है ? कुछ पण्डितो से शका की तो कहने लगे कि जो काम आपके बाप, दादा, पितामह करते आए हैं, उसी परम्परा का पालन करना चाहिए।

मैंने विनोद किया कि महाराज हमारे पूर्वजो के पास तो इतना साधन नही था कि वे पूजा व कर्मकाण्ड के लिए ब्राह्मण, पण्डित, पुजारी के रूप मे घर मे रखें, वे तो सारा काम स्वयं हाथो करते थे—तो क्या वैसा ही किया जाए ? "अरे नहीं-नहीं, यह मतलब नही है—सामर्थ्य के हिसाब से यह सब तो होना ही चाहिए।" अब सामर्थ्य, रुचि, शास्त्राज्ञा, निर्णय, पवित्रता, ज्ञान आदि की परिभाषा कौन करे ?

पुजारी जी (हमारे समाज मे हर घर मे ठाकुरवाडी व पुजारी धार्मिकता व पवित्रता की धरोहर व परम्परा है) से फिर पूछा गया कि उपवास के दिन यह जो निरन्न सामग्री बनती है वह मालताल तो अन्य दिनो की अपेक्षा और गरिष्ट व भारी है—फिर कैसा व्रत ? "उपवास" का अर्थ तो यह है कि उस दिन मन-वचन-कर्म से मेरे पास बैठो—भूखे रहना अथवा तले माल-ताल खाने का विधान कहा लिखा है ? गीता मे स्वय श्रीकृष्ण ने कहा है कि मनुष्य को न भूखो मरकर शरीर को कष्ट देना चाहिए न अधिक खाकर। पुजारीजी बोले, "श्रद्धावान् लभते ज्ञान". . ..आप मुझ मे श्रद्धा रखिए—बाकी विवाद बेकार है।

मेरी एक ममेरी बहन है जो अत्यन्त धार्मिक व श्रद्धालु है। नित्य उनके यहा सत्सग, भजन, साधु-समाज का आगमन, नवरात्रि आदि का भव्य उत्सव याने जीवन की सारी वृत्तिया अब उसी मार्ग पर हैं। सौभाग्य से उनके पति भी उनके साथ हैं, अत जीवन उनका आनन्दमय है। कुछ दिनो पूर्व उन्हें किसी ने बताया कि स्विटजरलैंड मे केवल एक ही कम्पनी है (लिन्ट) जो कि चाकलेट आदि पदार्थों मे अण्डे का प्रयोग नही करते, फिर क्या था, पतिदेव को अगली यात्रा मे स्विटजरलैंड केवल इसी के लिए जाना पड़ा (उनका काम अन्यत्र यूरोप मे था) कि बच्चों के लिए भरपूर 4-6 महीने तक चलने वाली चाकलेटो का पार्सल लाए। उनके व हमारे आस-पास के सैकडो घरो में चाकलेट, केक, पेस्ट्री, आइसक्रीम, पिज्जापाई आदि इसीलिए नही लाए जाते क्योकि उनमें

अण्डे या चीज का प्रयोग होता है। ऐसे परिवारों के लिए अब अनेक कुशल महिलाओं ने शिक्षण वर्ग खोल रखे हैं ताकि बिना अण्डे के पकवान घर में बन सकें।

अण्डों के बारे में अब सर्वविदित है कि जिन अण्डों से बच्चा पैदा होगा, वे बिजली की मशीन द्वारा अलग कर दिए जाते हैं, क्योंकि छोटे मुर्गे के दाम अण्डे की बजाए बहुत अधिक होते हैं। जो अण्डा फर्टिलाइज नहीं हुआ उसी को बाजार में खाने के लिए भेजा जाता है। वैसे अपने देश में प्रोटीन का साधन केवल दाल व अन्य ऐसे पदार्थ हैं—जो कि अभाव में काफी महंगे हैं। पर मैं दाम के क्षेत्र में नहीं जाना चाहता। जो वस्तु किसी के लिए बहुत महंगी है, वह किसी के लिए कोई मायने नहीं रखती।

पिछले दिनों संसद में चीज को लेकर प्रश्नावलि हुई। मन्त्री महोदय ने एक प्रश्न के उत्तर में बताया कि हालांकि चीज दूध से बनता है उसके फर्मेंटेशन के लिए बहुत छोटी मात्रा में एक पदार्थ का प्रयोग किया जाता है जिसका उद्गम जानवरों से होता है। मेरी बहन के मन में गुस्से की खलबली मच गई। दिल्ली से संसदीय सूत्रों से सारे कागजात आदमी भेजकर मंगाए गए। इस अस्त्र को ले मेरे पास पहुंची, इस आशय से कि भारत भर में चीज के बहिष्कार हेतु हर जगह विज्ञापन छपना चाहिए। मैंने पूछा उनसे चीनी खाती हो चाय-दूध मिठाई या किसी रूप में? जानती हो कई चीनी की मिलों में अब भी सफाई के लिए किस वस्तु का उपयोग किया जाता है? आप रेशमी वस्त्र—साड़ी पहनती हो—क्या रेशम हत्या के आधार पर नहीं बनता? सुगन्ध व प्रसाधन की करोड़ों रुपयों की तस्करी सामग्री हमारे देश में आती है—देश की आर्थिक व्यवस्था तो हम लोग सोचेंगे नहीं, पर इन सेन्टों परफ्यूमरी की 'सुगन्ध' कायम रखने के लिए जानवरों के तत्व का उपयोग किया जाता है। अधिकांश साबुनों में चर्बी रहती है, और क्यों जाएं, गांधी जी गाय का दूध इसलिए नहीं पीते थे कि उसमें बछड़े के प्रति बड़ा भारी अन्याय है। वैसे दूध दही व वातावरण में कीटाणु न हों तो दुनिया चले ही नहीं।

मेरे इतने लम्बे भाषण के बाद बोली, 'आज से मेरी चीनी व सेन्ट-फुलैल बन्द, मैं और कुछ नहीं जानती, पर रेशमी वस्त्र हमारे शास्त्रों में पवित्र माना गया है। पूजा यज्ञ, हवन विवाह आदि शुभ कार्यों में इसी का विधान है।'

"कौन सा विधान और कौन सा शास्त्र? पहले तो रेशम भारतीय ईजाद व प्रयोग की वस्तु ही नहीं है, यह चीन से हमारे यहां आई। गीता में वल्कल, सूती वस्त्र व मृगचर्म को पूजा के लिए माना गया है अंध परम्परा बिना विचार किए

"ठीक है आज से रेशम भी बन्द।"

बात रेशम की या अण्डे की नही है, मन, वचन, कर्म की पवित्रता व सात्विकता की है। हम इन्कम टैक्स मे लाखो करोडों की चोरी करते हैं, उसमे शास्त्र परम्परा चुप है—लेकिन बद्रीनाथ के पण्डे को 11 रु० दक्षिणा न दें तो महत्पाप, हम तस्करी माल व जमाखोरी करेंगे पर श्राद्ध मे ब्राह्मण को भोजन का न्यौता न दें तो रौरव नरक व पूर्वजो को कष्ट, हमारी रसोई का कमरा कितना ही गन्दा हो, महाराज (रसोइया) छींक लेकर अपने अगोछे मे नाक साफ कर रोटी बेलता हो, पर किसी ने रसोई छू दिया तो रसोई बर्बाद व बेकार। हमारे बाथरूम व कचरे डालने की जगह बदबू व गन्दगी से भरे हो, पर जल पिएगे चादी के गिलास मे। खाएगे ब्राह्मण के हाथ की, छुआछूत रखेंगे। स्टील व चीनी मिट्टी के बर्तन म्लेच्छो व शूद्रो के लिए हैं।

ये रूढियां व परम्परागत कूपमण्डूकता हमे कहा ले जाएगी ? पहले विदेश यात्रा से प्रतिबन्ध शुरू हुआ था जो अब निवृत्त होकर वेश-भूषा, आचार-विचार, सस्कृति आदि सबको ले डूबा है। इन अन्ध विश्वासो व व्यर्थ के ढकोसलो द्वारा हमने भारतीय जीवन के मूलभूत दर्शन व सिद्धान्तो को झुका दिया है। कुछ वर्षों पूर्व वैष्णवो के दो प्रमुख सम्प्रदायो (बडगल तिंगल) मे तिलको को लेकर मार-पीट, हिंसा, तनाव व सम्भवत कोर्ट-कचहरी हुई थी। अब भी हिन्दू समाज के सैकडो मठाधीश, गुरु, आचार्य, महन्त, सन्त आदि सज्जन कुभ मेले जैसे अवसर पर केवल अपनी शान-शौकत व भव्यता के स्वरूप के लिए अखाडो मे उतरते है। मठ-मन्दिरो मे देश का करोडो रुपया व्यय-अपव्यय होता है। आशय यह कदापि नही है कि सन्तो व आचार्यों का समुचित आदर न हो या मन्दिरो मे विधिवत् पूजा अर्चना न हो।

कुछ समय पहले रायपुर के हमारे एक रिश्तेदार अपने एक छोटे बच्चे को लेकर बम्बई आए। बच्चे के जन्मजात हृदय का 'मर्मर' था, जिसे बम्बई अस्पताल के सीनियर डाक्टरो ने फौरन आपरेशन का केस बताया। इससे हार्ट की गति सुधरने एव आगे कोई समस्या न होने की सभावना थी।

पैसे वाले होने के नाते उन्होने लन्दन मे आपरेशन करने की कार्यवाही की। महीने भर बाद की मेयो क्लिनिक मे भर्ती की सूचना भी आ गई। पास-पोर्ट, विदेशी मुद्रा आदि की सरगर्मी चली।

चूकि जाने मे थोडे दिन थे, अत वे मपरिवार रायपुर लौट गए। सारे कामो की व्यवस्था की लिस्ट मुझे थमा गए। काम शुरू किया गया।

करीब दस दिन बाद वहा से फोन आया कि परिवार के पुराने ज्योतिषी ने बच्चे की कुण्डली देखकर अगले 6-8 महीनो के ग्रहों को खराब बताया एव

यही तय करवाया कि आपरेशन इस नक्षत्रकाल टलन के बाद ही कराया जाय।

बडी बेबसी व खिन्नता से मुझे सारे इन्तजाम केन्सिल कराने पडे।

जब-जब देश मे हरिजन-सवर्णों मे संघर्ष होता है, खून-खराबा होता है, तब-तब मन मे तीव्र वेदना उठती है कि हमारे सम्मानित पण्डित व धर्माचार्य आग लगने पर दमकल का काम क्यो नही करते ? केवल पुलिस पहुचती है देर-सबेर से एवं वातावरण की घृणा, ईर्ष्या, आक्रोश, तनाव, हिंसा का कोई स्थायी इन्तजाम नहीं किया जाता। मेरी जानकारी मे किसी भी बड़े सन्त अथवा महात्मा ने भगवान श्रीकृष्ण के दावे का उल्लेख समय-समय पर नही किया है कि गुण व कर्मों के अनुसार मैंने चारो वर्णों की स्थापना की है। सत्व, रजस् व तमस् के आधार पर ये गुण हममे से प्रत्येक मे प्रतिलक्षित होते हैं। जो सात्विक होगा वह ब्राह्मण, जिसमें सात्विकता व राजसिक गुणो का कम बेशी सम्मिश्रण है वह स्वधर्म के मुताबिक क्षत्रिय या वैश्य एव जो आलसी, क्रियाहीन व समाज का बोझ बनेगा वह शूद्र। ये श्रेणिया विश्व की हर जाति व समूह मे पाई जाती हैं, इन वर्णों के नामो से जन्मजात क्या मतलब ?

यह विषय अत्यन्त विवादास्पद है परन्तु इस लेख का उद्देश्य उस ओर जाना नही है। उपरोक्त सन्दर्भ मे आज की आवश्यकताओ को देखते हुए सुझाव प्रस्तुत हैं —

(1) हमारे राष्ट्र की थाती मे पुरातन ग्रन्थ, वेद, उपनिषद, श्रीमद्भगवद् गीता, ब्रह्मसूत्र, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत आदि के सर्वप्रामाणिक ग्रन्थ सरल भाषा मे अर्थ व टीका सहित उपलब्ध होने चाहिए ताकि उनके मूलभूत व मौलिक व दार्शनिक सिद्धान्तो की पुन स्थापना हो सके।

(2) धर्म असहिष्णुता व राग-द्वेष नही सिखाता, अत इस क्षेत्र के नेताओ (शकराचार्यों समेत सभी वर्गों के धर्मगुरु) की एक उच्च न्यायालय के समकक्ष एक 'धर्मालय' की स्थापना की जाए जहा सामाजिक व धार्मिक विवाद व प्रश्नो पर निर्णय हो।

(3) धार्मिक मूल्य इस धरती पर मानवीय प्रेम व सद्भावना से ही प्रतिलक्षित होंगे, रूढिगत मूर्तिपूजा से नहीं, इसका सभी धर्मों के आचार्यों द्वारा खुलासा।

काश ! आज गुरु नानक व कबीर फिर स होते हमारे बीच !

31

नये युगधर्म के फिसलते पांव

"तुम अभी तक तैयार नही हो ? मैं दिनभर थके मादे होने के बावजूद क्लब मे नहा धोकर आ भी गया। पहले टॉक ऑपन दी टाऊन मे डिनर खाएंगे, मैंने चिक्न मक्खनी का आर्डर दे दिया है 6 लोगों के लिए—वहा से डिस्को 84 मे चलेंगे।" राकेश खीज मे उलाहने के स्वरो मे बोला।

रागिनी ने धीरे से कहा, "अपनी कई दफे बातें इस मामले मे हो चुकी हैं। मुझे न बाहर रेस्टोरेन्ट का खाना पसन्द है और न ही तुम्हारे दोस्तो के साथ नाचना। मेरा जाने का मूड नही है।"

"यह भी कोई बात नही हुई, मैंने बैंक के मैनेजर और एक मोदीनगर के सेल्स मैनेजर को बुलाया है, अब तुम 9.30 बजे कहोगी, तो मेरी इज्जत क्या रहेगी ? मुझे धन्धा करना है, तुम्हारी तरह स्कूल मे टीचरी नही, सारी दुनिया नाचती गाती है और एक मेरी बीबी।"

राकेश-रागिनी की यह जिरह छोटे-छोटे तौर पर पिछले साल भर से चली आ रही थी। राकेश 40 वर्षों का एक सफल व्यवसायी था और कई तरह की एजेन्सिया ले रखी थी। रागिनी 36 की, स्वभाव की गम्भीर, भारतीय सस्कृति व मनोभाव, आवश्यकता न होने पर भी एक स्थानीय स्कूल मे प्राइमरी विभाग मे बच्चो को पढाती थी। अच्छा खासा रहन-सहन था, पर राकेश के मन मे कभी सन्तोष हुआ ही नहीं। उसने अपना काम प्रभादेवी (बम्बई का एक उपनगर) मे खोला था, उन दिनो मिया-बीबी शिवाजी पार्क रहा करते थे। अब पेडर रोड पर रहते हैं और दफ्तर दुकान लैमिग्टन रोड पर। एक सैकन्ड हैन्ड टोयोटा गाडी, घर मे अमूमन सारा विदेशी साजो-सामान, पर हवस ऐसी कि दिन रात चैन नही लेने देती।

राकेश रेडियो क्लब मे अक्सर अपनी शामें बिताता। यार, दोस्त वही जुट जाते, जिन, व्हिस्की, रम नौ-साढे नौ तक चलती, फिर थका मादा घर आकर

कभी खाए, कभी बिन खाए पड़ जाता। बड़ी मुश्किल से रविवार को अपने दोनो बच्चो से एकाध घण्टे मुलाकात होती। बच्चे पिता का स्नेह सम्बल चाहते, होम वर्क की कठिनाइयां पूछते, पर 'तुम्हारी मम्मी होशियार टीचर है, होमवर्क उसी को पूछा करो' कहकर टाल देता। परिवार क्या होता है, सगे-सम्बन्धियो के साथ सम्पर्क रखना, पति-पत्नी की आपसी अनुकूलता, बच्चो का लालन-पालन इन सभी मुद्दो के लिए राकेश के पास तनिक भी समय न था। गरज यह कि पति-पत्नी समाज की दृष्टि मे होते हुए भी दाम्पत्य का कोई भी सुखद अंग इस जोड़ी के पास इन दिनो फटका नही।

खैर, उस रात तो राकेश पाव पटककर चला गया। मूड तो खराब था ही, खूब गहरी शराब पी गई, बाद मे डिस्को मे रात के 2-30 बजे गए। वहां नाचने के पार्टनरो की क्या कमी? वैसे भी भारी शोरगुल के अन्धेरे वातावरण मे बदलते रगों की रोशनी मे सभी लोग अपना-अपना ताडव ही करते हैं, पुराने बॉलरूम डान्सिग की पद्धति व गुण तो कभी से गायब हो चुके थे। नशे, सिगरेट की बू व पसीने मे चूर आकर बेसुध पलग पर कपड़े पहने ही लेट गया।

रागिनी साड़ी का पल्ला नाक के आगे रख बच्चो के कमरे मे जा लेटी। दो चार दिन तो राकेश गुस्से मे रहा, अगले रवि को नाश्ते के बाद रागिनी ने उससे कहा, "देखिए, इस प्रकार की जिन्दगी तो कोई काम की नही। न आपको मुझसे सन्तोष है और न मुझे कोई सुख। क्या हम वयस्को की तरह अपनी डगमगाती नौका को सभाल नही सकते? क्या काम आएगा यह पैसा और दिखावटी शोहरत—जब हम लोग एक मिनट के लिए भी सुख-चैन से नही बैठ सकते।"

राकेश, 'तुम अगर अठारहवी सदी की बीवी का रूप रखना चाहती हो, तो मेरा काम नही चलेगा। क्लब मे कभी आकर देखो, सब मेम्बर अपनी-अपनी बीबियो के साथ बार मे आकर मौज-मजा करते हैं। उनका सब रग, ड्रेस, फैशन, पीने की अदा, बातचीत के तौर-तरीके—देखते ही बनता है। मैं घर मे टाइम मेगजीन लाता हू, तुम खोलती तक नही। क्लब मे परवीज रुस्तमजी आती है, वह न्यूयार्क टाइम्स और टाइम के बिना बात नही करती। मैं धन्धा कैसे कर पाऊगा?'

'तुम्हारे व्यापार मे अधनगा लिबास, शराब की बोतलें, नाच-गाने—ये सब शामिल हैं? किस मैनेजमेन्ट की किताब मे लिखा है कि तुम अपनी सस्कृति छोड विदेशी तौर-तरीको की अंधी नकल करो? यहां जितने विदेशी आते हैं, खादी का हैन्डलूम का कुर्ता पाजामा पहनते हैं। भरत-नाट्यम्,

मितार, योग-प्राणायाम व असली संस्कृति की बुनियाद जानना चाहते हैं और एक हम लोग हैं कि अपनी अक्ल को ताक पर रख पैरिस, न्यूयार्क, लन्दन की नकल करते हैं।'

'तुम क्या जानो, बिजनेस की बारीकियां ?' राकेश सण्डे आबजर्वर की प्रति लेकर अलग लेट कर पढने लगा। अध्याय समाप्त।

अब प्रताप व रुक्मिणी की कथा पढिए। ये भी बम्बई के वार्डन रोड पर रहते है। रुक्मिणी अपने पहले विवाह को तलाक दे पिछले 14 वर्षों से पुर्नविवाह कर व्यापार-उद्योग जगत मे पूरी छाई हुई है। प्रताप शान्त, संतोषी व धैर्ययुक्त है एव वह पल भर के लिए भी धमाचौकडी नही जानता, इस विवाह से एक बच्चा है, पिछले विवाह का लडका बगलौर होस्टल मे रहता है। उम्र कोई इन लोगो की 42 व 35 की होगी क्रमश'।

रुक्मिणी आई जब स प्रोपर्टी (जमीन, मकान, फ्लैट, आफिस) की एजेण्ट के रूप मे काम कर रही थी। पिछले 10 वर्षों मे म्युनिसिपैलटी, राज्य सरकार, नक्शे पास कराना, एन० ओ० सी० निकालना, इन्कम टैक्स से मजूरी दिलाना आदि के चक्कर मे ऐसी माहिर हो गई कि बम्बई का हर मन्त्री, एम०एल०ए०, कार्पोरेटर, निर्माण विभाग के अफसर, इन्कम टैक्स कमिश्नर—कोई ऐसा न था जिसे रुक्मिणी का कृपा कटाक्ष कभी हापुस आमो की टोकरी, कभी सूखे मेवे की डाली, कभी स्मगल की हुई ब्लैक डॉग, कभी सोनी का विडियो के रूप मे न मिला हो।

उसकी शामे—ताज-ओबेराय मे कटती, बगल मे कभी कोई वी० आई० पी० होता तो कभी कोई, कभी-कभी तो एक मेहमान को ओबेराय मे सुलाकर ताज जाती, दूसरे की सेवा-शुश्रूषा कर वापस ओबेराय आती। रात को कभी कभी तो 3, कोई न कोई माई का लाल उसे घर पर 'गुड नाईट, डार्लिंग' का किस करके छोडता।

प्रताप अपने काम से काम रखता। उसकी रेडियो-ट्रान्जिस्टर आदि की लोहार चाल मे दुकान थी। स्वय के काम व आय से वह सतुष्ट था, पर पति पत्नी के बीच दरार बढ रही थी। न जाने कितने लोगो को रुक्मिणी अपना तन अर्पित कर चुकी थी। यह प्रताप से छिपा नही था। वह स्वाभिमानी होने के नाते अपने लडके, मित्रो व दायरे मे रहता, महीनो बीत जाते, लेकिन पति-पत्नी की बातचीत 'हाय, बाय' से अधिक नही होती।

पिछले साल, जब प्रताप-रुक्मिणी का लडका 8 वर्ष का हुआ, तो एक दिन हैदराबाद-बगलौर की ट्रिप से आकर मेम साहब बोलीं: 'मैं ऋषि वैली स्कूल मे राहुल को दाखिल करा आई हू। एडवान्स के दो हजार भी दे

दिए है, अब तुम एक दो दिन मे उसकी इण्टरव्यू करा उसे वहीं छोड आना।'

प्रताप हक्काबक्का रह गया। 'क्यो, राहुल तुम को बोझ लग रहा है ? यहा तीसरी क्लास मे हिन्दी विद्या भवन मे है। कभी तुम्हे तग करता नही, फिर क्यो ?'

'तुम समझते नहीं। ऋषि वैली जाकर देखो, कितने वी० आई० पी० लोगो के बच्चे पढ रहे हैं। दून स्कूल के बाद अब इसी का नाम आता है। मुझे राहुल को तुम जैसा दकियानूसी नही बनाना है।'

'रुक्मिणी, लडका केवल तुम्हारा नही। फिर देखभाल तो मैं करता हू। कभी मुझे या राहुल को पूछा है कि हम लोगो का क्या मन है ? इस उम्र मे बच्चे को मा-बाप के आश्रय व प्यार की जरूरत होती है। अगर यह सामान्य व सुखी परिवार मे बडा हुआ होता, तो भी और बात थी। अब तो यह केवल मुझ पर आश्रित है और मैं इस परिस्थिति मे इसे भेजने की सोच भी नही सकता।'

'तुम इसे केवल अपने पर ढालना चाहते हो ?'

'देखो रुक्मिणी, 3 साल पूर्व तुमने पश्चिम की देखा-देखी बडी चौडाई की प्लेयर की पैन्टें बनवाई, बालो की कलमे नीचे तक रखी। अब वे फैशन कहा हैं ? यूरोप अमेरिका के लोग अगर अपनी समृद्धि व जीवन के खोखलेपन से ऊब कर नित नया साग रचाते हैं तो हमें उनकी नकल की क्या जरूरत ? इसके बाद लडका अफीम-कौकीन का शिकार होगा, फिर लडकी व फ्री सेक्स का। यह अधेरी गली हमे कहा ले जाएगी ? अब पश्चिम मे पतलूनें वापस सकडी हो गई हैं, हेयर स्टाइल बदल गया है, लोग लाखो की सख्या मे अपने अस्तित्व को ढूढने कभी रजनीशधाम तो कभी महेश योगी के पास हताश होकर जाते हैं। हम भारतीयो को अपनी जड-जमीन छोडने की क्या आवश्यकता है ?'

'खैर, आज चैंबर मे डिनर है, डिपार्टमेन्ट का सेक्रेट्री आ रहा है, मुझे जल्दी जाना है। एक फाइल कल तक न निकले तो हाथ से एक लाख का आसामी छूट जाएगा।'

'मैं तुमसे नॉन-वेजिटेरीयन खाने पर भी बात करना चाहता था। आज प्रसग मिला है। मैं कोई धर्म-वर्म की बात नही करूंगा। पर अमेरिका के सर्वश्रेष्ठ डाक्टरो ने हार्ट ट्रबल, ब्लड प्रेशर, कालेस्टराल एटेक आदि के लिए मास भक्षण को जिम्मेदार ठहराया है। विशेष कर तला हुआ रेड मीट। हजारो की सख्या में इस जानकारी के आधार पर पश्चिमी लोग शाकाहारी हो रहे हैं, शराब छोडकर बियर और वाइन पर आ रहे हैं, जॉगिंग छोड

योगाभ्यास मे रुचि ले रहे है और एक हमारे हम-उम्र लोग लकीर के फकीर। सिगरेट की तो बात क्या हम 'मम्मी-पापा' तो नही छोड सकते।'

'मुझे कुछ नही मालूम, मैं जा रही हूं। बाई'। दूसरा अध्याय समाप्त।

आज के हमारे युवक-युवतिया सोचते क्यो नही ? देखा-देखी भेड-धसान हो रहा है। व्यक्तिगत तौर पर आज की जवान पीढी जानकारी व कुशाग्रता मे 40 वर्ष पूर्व की पीढी से कही आगे है। पर नई धन दौलत की चमकती रोशनी मे उन्हे तत्काल सुख के अलावा कुछ नही सूझता। जिस पेय में इन्स्टेन्ट सुख मिले उसे पीओ। जिस एन्टी-बायटिक की सुई से दस्त लगने बन्द हो जाए वह इलाज कराओ, बोरियत दूर करने वीडियो, टी० वी०, डिस्को, सस्ते सेक्स की पुस्तकें, लिबास मे कसी बन्धी जीनस् व तीन बटन खुले कमीज या ब्लाऊज, मजे के लिए शराब व मेरीवाना, अफीम, कोकीन आदि रात को 2 बजे सो सुबह 10 बजे उठना।

पुराने सास्कृतिक, सभ्य एव गुणी परिवारो का तो कुछ नही बिगडेगा पर चारो ओर नए रईसो के फैलते एपिडेमिक हमारे देश को कहा ले जाएगें, इसकी कल्पना से जी घबरा जाता है।

32

हाथ सुमरणी, पेट कतरणी

पिछले दिनो मुझे कलकत्ते मे एक पुरान रईस धार्मिक, श्रदधालु परिवार के यहा दो-तीन दिन रहने का मौका मिला। अच्छा खासा बगला था अलीपुर मे, बगीचा-बागवान ड्योढ़ी पर गुरखा टेलीफोन आपरेटर, पूजा के लिए पुजारी—*याने आज के जमाने का राजसी दरबार ही समझिए।* परिवार अतिशय धार्मिक व पुराने सस्कारो वाला था। घर म छुआछूत का पूरा खयाल रखा जाता। यू तो दूर के मेरे रिश्तेदार थे, पर उनके यहा पोते के जन्म की बधाई के सिलसिले में उन्ही के यहा ठहरना पडा, वरना अक्सर मैं कलकत्ते मे अपनी ससुराल या ग्राण्ड मे ठहरता हू। मुझे पहले से ही बता दिया था कि उनके यहा बिना नहाए खाने पीने के किसी बर्तन को छूना मना है। और तो और जिस बालक के उपलक्ष्य म लाखो के खर्च से जशन मन रहा था उसे गोद म भी नही ले सकते थे क्योकि अभी जच्चा बच्चा का न्हावण-जलवा (राजस्थान की एक पुरानी रीत) नही हुआ था। डरते सहमते रहना पडा कि कही भूल से भी परिवार की मर्यादा व शुद्धि भग जाने-अनजाने न हो जाय क्योकि मैं तो मस्तमौला हू और इस श्रेणी के किसी छुआछात व परहेज को मानता नही।

बच्चे के लिए नई नैपाली दैया (दाई) रखी गई थी। अब बडे घरो मे अपने बच्चे सभालना माताओ के बस का नही। डिलीवरी भी अक्सर अनस्थिसीया मे सीजेरियन होती है दैया को घर की मैया ने सारी हिदायतें दे रखी थी, फिर भी अनायास एक दिन सुबह एक हाथ म बच्चे के धुले पोतडे (लगोट) व दूसरे म धोने वाले कपडे लिए देख ली गई, फिर क्या था, उस पर लेक्चर की बौछार शुरू हो गई।

'तूने सारा एकमेक अपवित्र कर दिया। कितनी बार कहा कि साफ कपडो को अलग रखो व धोने वालो को अलग। अब सारे फिर से धुलने होंगे। बच्चे को क्या पहनाओगी। हमारे घर मे यह सब नहीं चलेगा?'

मैं अन्य परिवार के सदस्यों व मेहमानों के साथ, नहा कर, चाय नाश्ता कर रहा था। सुबह ही सुबह इतना आक्रोश देखकर दंग रह गया। अभी तो सास की डांट मिली है, अन्दर कमरे में बहूरानी की अलग से मिलेगी ।

दो दिन बाद बच्चे को डायरिया होने से बड़े चाइल्ड स्पेशलिस्ट को बुलाया गया। वह जूते पहने ही अंदर बच्चे को देखने चला गया। आने पर चाय के बाद सिगरेट लगाई, उसके जाते ही, सारे आंगन को गीले कपड़े से पोंछवाया गया।

हमारे समाज में एकमेक होने से मन में "सूग' (घृणा) होती है। आइए देखें वैसे बाकी पवित्रता का कैसा निर्वाह होता है ?

दूसरे दिन करीब 10 बजे मैं चौके के बाहर से ही ब्राह्मण रसोइए को बोला कि उनके बनाए खाने में घी-मसाला मेरे लिए बहुत है, अतः एक दो सब्जियों को हल्का फुल्का उबालकर बना दे। रसोइए को बड़े जोर से छींक आई, नाक भी भर आया, पसीने में लथपथ व गन्दे कपड़ों में उकड़ू बैठा ही था। अपने तौलिए से मुंह नाक साफ किया और उन्हीं हाथों से आटा साधने लगा। मैं चुपचाप वापस लौट आया।

पता चला कि उन दिनों उनके घर के मेहतर (जो पिछले 40 वर्षों से बाथरूमों की सफाई करता था) को कुष्ठ रोग हो गया था। वह नीचे दरबान के जरिए 200 /- एडवांस मांग रहा था ताकि दवा-दारू करा सके। मुनीम ने सेठाणी को पूछा तो उसे फौरन बाहर निकालने का आदेश दिया गया। "वह बिलकुल ठीक हो जाने तक अपना मुंह भी न दिखाए ।" बेचारा अपना मन ले चला गया।

सेठ दीवानचन्द जिनके यहां जलसा हो रहा था, की एक जूट मिल में पिछले तीन महीनों से तालाबन्दी चल रही थी। कामगार लोग तनख्वाह मांगने व मोर्चा लेकर आते तो पुलिस की मदद व कोर्ट के आर्डर से उन्हें कभी मिलने नहीं दिया जाता। पिछले साल दरभंगा में सेठजी की तेल की मिल में विदेशी चर्बी मिश्रित हजारों टन माल पकड़ा गया, वह केस अलग से चल रहा था। अब खिदरपुर के क्षेत्र में तस्करी का बड़ा सौदा चल रहा था, जिसमें रु० 65-70 लाख मिलने की संभावना थी।

यह कोई एक घर या परिवार की कहानी नहीं है । ऐसे कथानक कमी बेशी सभी लोगों से गुजरते हैं। यदि हमें साफ सुथरे व पवित्रता का दावा करना है तो मनसा, वाचा, कर्मणा करना होगा। यह नहीं कि ऊपरी दिखावा एकमेक का कुछ हो और भीतरी एकमेक की परवाह न करें । मन की मुख्य भावनाओं में प्रेम, अहिंसा, अपरिग्रह व दया (सहानुभूति) है । हम इन भावनाओं को अपने राग, द्वेष के वशीभूत हो ईर्ष्या, हिंसा, धन-दौलत व क्रूरता

के रूप मे व्यवहार मे लाते हैं, तो किसी को सुग क्यो नही आनी ? पराया सुख-वैभव देखकर हम लोगो को जलन होने लगती है । कई माई के लाल तो अपनी एक आख फुड़ाने तैयार हैं यदि दुश्मन की दो फूटती हो । यह एकमेक कहा गया ?

चाणक्य नीति का स्पष्ट कथन है कि अपनी विवाहिता स्त्री अपने कर्म से कमाए हुए धन मे भोजन मे सन्तोष करना चाहिए, पढने, लिखने, परिश्रम एव दान मे कमी नही । बुद्धि के स्तर पर स्थितप्रज्ञता की थाती मिली है धरोहर मे, कब हम मे से कौन उसका परिष्कार करते हैं ? जैन धर्म मे अहिसा के नाम पर तो पट्टी बाधी है, पर अपरिग्रह को कोई क्यो नहीं पूछता ?

"हाथ सुमरणी, पेट कतरणी" शीर्षक मारवाडी कहावत "मुह मे राम, बगल मे छुरी" का पर्यायवाची है । इन दोनो का मेल कभी होगा नही, या तो राम मिलेंगे या छुरी, सुमरणी या कतरणी । रास्ता हमारे ही हाथ मे है ।

33

ग्राहक लुटे सरे बाजार

पिछले साल की बात है। बम्बई का लोहार चाल यहा के बिजली क सामान का सबसे बडा मार्केट है। अपनी जरूरत की सारी चीजें आप यहा पाइएगा, गर्म पानी के बॉयलर से वोल्टेज स्टेबिलाइजर तक। मरीन ड्राइव, मलाबार हिल, कम्बाला हिल में रहने वालो को ये थोक बाजार कुछ दूर और कुछ असुविधाजनक होने से ये लोग बल्ब या साबुन अथवा घर का कोई भी छोटा-मोटा सामान पास के बनिए की दुकान से मगा लेते हैं। दाम भले ही सवाया—ड्योढा लगे, आखिर भारत के सबसे बडे रईस इन्ही क्षेत्रो में रहते हैं।

इससे पहले पत्नी जरूरत की चीजें चर्चगेट से आदमी भेजकर मगा लिया करती थी। मैंने जब एक दिन यह कहा कि रोज खराब न होने वाली चीजें एक साथ 2-3 महीनो लायक थोक बाजार से मगा लेनी चाहिए, तो शाम तक खीजकर एक लम्बी चौडी लिस्ट थमा दी गई। 'कल सोमवार शाम तक ये सभी आ जानी चाहिए। देखती हू कितना सस्ता लाते हो ?' जबरन सोमवार की शाम को बॉम्बे जिमखाना मे किसी से मिलना तय था, उसे कैन्सल करा गाडी क्राफर्ड मार्केट के सामने लगा अपने रामजी बाजार करने लगे। हमारे यहा तो जो सुझाव दे, उसी के मत्थे चीज बाध दी जाती है। खैर......

टीकमचन्द शाह की दुकान सौ बरसो से बिजली के सामान के लिए प्रसिद्ध है, अत और चीजो के अलावा 40, 60, व 100 वाट के 6-6 बल्ब मैंने घर के लिए ले लिए। पत्नी हमेशा हसती है कि मैं कैश-मेमो, गारटी के लिए कागजात व अन्य पुर्जे सभालकर क्यो रखता हू—'कुछ होना जाना तो है नही बेकार का कचरा जमा करने की आदत है।' मैं सामान लेकर घर पहुचा, लक्ष्मीजी को सारा हिसाब देकर बिल-पर्चे अलग रख लिए।

अगले दिन रात्रि को भोजन पर मेहमान आने वाले थे, अत इधर-उधर

के नदारद 3-4 बल्ब लगाए गए। इस घटना के एक दो दिन बाद देखता हू कि नए लगाए बल्बो मे 2 फ्यूज हो गए। अब क्या था ?

लेक्चर तो सुनने को मिला ही, ताने और ऊपर स। मैंने लाए हुए खराब और बाकी के नए बल्ब दूसरे दिन बिल के साथ चपरासी के हाथ वापस टीकम-चन्द की दुकान मे बदली अथवा पैसे वापस लाने के लिए भेजे। 3 घण्टे बाद जब वह वापस आया तो रिपोर्ट मिली कि दुकानदार ने बिल पर छपे हुए नारे को दिखाया कि एक बार बिका हुआ सामान वापस नहीं लिया जाएगा। बड़ी मुश्किल हुई। दुकान पर फोन कर मालिक-मैनेजर से बात की तो असमर्थता प्रकट करने के बाद उन्होने लैम्प बनाने वाली कम्पनी के महाराष्ट्र के वितरक का नाम दिया। पुर्जों की फोटोस्टेट बनवा सारा माजरा उन्हें लिख भेजा गया। दो महीने तक जवाब भी नही। तत्पश्चात् कारखाने के वर्क्स मैनेजर को चिट्ठी लिखी तो उन्होने हैड आफिस का हवाला दिया जो कलकत्ते है।

क्रोध तो धीरे-धीरे बढ ही रहा था। मैंने अपने दफ्तर के वकालत विभाग से कानूनी पत्र बनवाकर कम्पनी के मैनेजिंग डाइरेक्टर को कड़ी आलोचना का पत्र लिखा। साथ मे यह भी इशारा कर दिया कि हमारी कम्प नियो मे लैम्प व ट्यूबलाइट वगैरह लाखो रुपयो के लगते है, अत उनकी कम्पनी के माल को अपने निजी अनुभव मे ब्लैक लिस्ट कर दिया है। प्रतिया भारत सरकार को व लैम्प उत्पादक मण्डल, बगलौर भी।

इसके कोई 8-10 दिन बाद मेरे सेक्रेटरी कुछ परेशान से कमरे म आए और कहने लगे कि कलकत्ते के मैनेजिंग डाइरेक्टर, बम्बई के उसी कम्पनी के स्थानीय मैनेजर व 3-4 व्यक्ति बिना अपाइटमेट ही मुझसे मिलने का आग्रह कर रहे हैं। मेरी व्यस्तता बताने पर उन्होने इन्तजार भी करना स्वीकार कर लिया है। मिलने पर बहुत झेंपे हुए डाइरेक्टर महोदय ने एक लिखित माफी पत्र दिया और मजूर किया कि 'गलत फहमी' से मेरे साथ बेजा व्यवहार हुआ है, आगे मुझे कोई शिकायत नही मिलेगी इत्यादि। मैं मन ही मन मुस्कराता रहा। सारे लौटाए हुए बल्बो के बदले मे नए दिए गए, जो कि दो बार टैस्ट किए गए थे।

मेरे मित्र की पत्नी सुमगला के साथ बम्बई मे बडी-बडी दुकानो मे 1-2 बार ऐसा ही हो चुका है। आनन्द सन्स, ब्रीच कैन्डी फैशनपरस्त नव युवतियो की भीड से हमेशा भरा रहता है। कोई रोज की एक लाख की बिक्री होगी। जब वे बच्चो के लिए सलवार-कमीज लेने गईं, तो अन्दाजे से नाप देखकर ले आई। बेचने वाले दुकानदार ने बडी बेफिक्री से कहा, 'बहनजी, आप लेती जाओ, साइज ठीक न हो तो फौरन बदल दूगा।' इत्तिफाक से नाप तो ठीक बैठा पर एक दो धुलाई के बाद ही कुर्ती का रग उतर गया और दोनो सैट

पहनने काबिल न रहे। लेकर पहुची तो वह सेलसमैन नदारद था। मैनेजर न बदलने से साफ इन्कार कर दिया। 'यह माल हमारी दुकान का हो ही नही सकता।' सौ गरज की, लेकिन दुकानवाले कई ग्राहकों की मौजूदगी का पूरा फायदा उठाते है, अत भले घर की महिला अधिक जिरह नही कर पाती।

एक और चित्र। सेवन्तीभाई मेहता अपन घर मे सभी आराम साधन के कलपुर्जे व मशीन लगाने के लिए प्रसिद्ध है। बाजार मे कोई नई चीज का विज्ञापन आया नही कि, वे ग्राहक बनकर पहुच जाते है। उन दिनो पानी उबाल कर छानने की बडी कम्पनी का एक फिल्टर आया था। हमारे शहरो मे वैसे मिलावट हर खाने-पीने की वस्तुओ म है, पर ताजा व सुरक्षित पीने का पानी कैसे मिले ? शहरों मे 90 प्रतिशत बीमारिया खाने-पीने की वस्तुओ मे गन्दगी व कीडा के कारण होती है। इस फिल्टर कम्पनी ने दावा किया था कि इससे निकले पानी मे कोई कीटाणु बच नही सकता। दौडे-दौडे मेहता साहब ले आए। करीब 6 महीनो बाद घर मे सभी प्राणी गैस्टो-एन्टराइटिस (पतले दस्त, उल्टिया आदि) से एक के बाद एक ग्रस्त हुए। डाक्टरो ने दवा पानी की एक हफ्ते तक कोई विशेष लाभ नही। सारे घर को छान मारा गया, लेकिन वहा कोई दूषित सामग्री मिली ही नही। वैसे भी उनके परिवार के सदस्य फाईव-स्टार होटल मे ही खाते पीते थे, पर करीब 1 वर्ष पूर्व ताज-ओबराय के खाने पीने की वस्तुओं मे भी दूषित कीटाणु पाए गए, तब से यह भी बन्द।

अन्त मे जब फिल्टर खोल उसकी कैन्डिल की जाच की गई तब उसम कीटाणु पाए गए, जिससे पीने का सारा पानी दूषित हो जाता था। मैंने सेवन्तीभाई से बहुत आग्रह किया कि वह कम्पनी मे मामला उठाए और हर्जाने का दावा करे। अरे कौन इस लफडे मे पडे।'

एक बार मुझे स्पोन्डिलोसिस (गर्दन व रीढ की हड्डी का भयकर दर्द) हुआ। हिलना डुलना भी दूभर हो गया। बडी मुश्किल से दिन मे दो बार अस्पताल चिकित्सा के लिए जा पाता। गनीमत थी मेरे एक इन्श्योरेन्स पालिसी थी जिसमे किसी भी बीमारी की वजह से मैं अपने व्यवसाय-दफ्तर के सामान्य कार्य न कर सकू, तो राष्ट्रीय इन्श्योरेन्स कम्पनी, पूरी जाच-पडताल के बाद 1500 रुपये प्रति सप्ताह हर्जाने के देगी। लिहाजा मैंने अपने बम्बई अस्पताल के डॉक्टर का सर्टीफिकेट एव क्लेम-फार्म भरकर भेज दिया। 15 दिन तो कोई आया नही, सोलहवें दिन दशहरा होने के नाते मैं थोडी देर के लिए मन्दिर गया, उसी बीच इन्श्योरेन्स कम्पनी क डाक्टर घर पर आए। उन्होने लौटक रिपोर्ट दर्ज की कि रोगी घर मे या अपनी शैय्या मे नही थे, बाहर गए हुए थे। फिर क्या था नई फाइल बन गई।

दफ्तर आने के बाद करीब 4 महीने लगे मुझे इस सरकारी कम्पनी से अपना बकाया वसूल करने मे। इस 'ऑबस्टेकल रेस' की अधिक व्याख्या करना प्रासगिक नही है क्योकि शायद ही कोई परिवार ऐसा बचा हो, जिसे सरकारी इन्श्योरेन्स कम्पनी के लेन देन मे परेशानी का सामना न करना पडा हो। चाहे किसी विधवा की सारे जीवन की थाती का सवाल हो अथवा दुर्घटना से अपग हुए किसी व्यक्ति का। तभी आए दिन एल० आई० सी० व अन्य राष्ट्रीय कम्पनियो के कर्मचारियो व अफसरो के 'सघर्ष' व 'माग' के मोर्चे देख मन मे कसक भी उठती है और नफरत भी।

पिछले दिनो पैट्रोल स्टेशनो के बारे मे नयी बात का पता चला है कि कई लोग 5 लीटर देते समय करीब 250 मि० ली० पाईप मे रख लेते हैं। मालूम पडने पर भी मोटर स्कूटर का मालिक सोचता है कि इतनी सी बात के लिए कौन झगडा मोल ले। बम्बई की 'कन्ज्यूमर गाइडेन्स सोसाइटी' ने अपनी खोज के आधार पर यह साबित किया है कि पैट्रोल पम्पो के मालिक 150 रु० प्रतिदिन इस चोरी से कमा लेते हैं, जो हिसाब मे दर्ज नही किया जाता। भुगतते आप और हम हैं और मुफ्त की रकम जाती है किसी और की जेब मे। कोई हल्ला-गुल्ला न करे इसीलिए प्राय सभी पम्पवाले पहलवाननुमा कर्मचारी रखते हैं।

भारतीय मोटर गाडियो के लिए प्रसिद्ध है कि हॉर्न के अलावा सारे कल-पुर्जे आवाज करते हैं। भला हो मारुति का कि रातोरात हमारे देश मे इस क्षेत्र का कायाकल्प हो जाएगा। अगले 5-7 वर्षों मे कई प्रकार की अच्छी गाडिया उपयोग हेतु मिलने लगेंगी। पर अब तक तो जो दुर्दशा रही है, वह प्रत्येक गाडी का मालिक जानता है।

हम पूजा कर उमग से नई गाडी घर मे लाते हैं। दो-चार दिन परिवार वालो, मित्रो आदि को शौकिया सैर-सपाटे में ले जाते हैं। कभी सिग्नल का बल्व काम नही करता, तो कभी गियर मे आवाज, कभी रेडिएटर का पानी खौलने लगता है तो कभी स्टार्टर जल जाता है। फ्री सर्विस नाम मात्र है, गाडी के एजेण्ट हर वक्त इस ताक मे रहते हैं कि किस तरह फसी हुई मुर्गी से अधिक से अधिक लूटा जाय।

अक्सर लोग निरीहता से सोचते हैं, अकेला चना क्या भाड फोडेगा। वह कभी भी अपने हको के प्रति लडना नही चाहता। 'कौन करे ?' वाली भावना हर भारतीय परिवार के मानस मे गहरी पड चुकी है। पहले तो सदियो की गुलामी के सस्कार और अब बेरहम सरकारी शासन-पद्धति। व्यवस्थापन (मैनजमेन्ट) के दस सूत्री (टेन कमाण्डमेन्टस) कार्यक्रम मे पहला

उपभोक्ता को सम्राट के रूप में देखता है (कन्ज्यूमर इज किंग)। यह नहीं है कि यह मंत्र पुस्तकों में ही रहे। यह तो हम सब पर निर्भर करता है कि हम अपने हक के लिए कितना समय व मनोबल का उपयोग करना चाहते हैं।

'संभवामि युगे-युगे' के लिए श्रीकृष्ण को स्वयं अपने नाम से जन्म लेने की कोई आवश्यकता नहीं दीखती। जब पाप, दुराचार, कष्ट, अन्याय आदि सीमा के बाहर हो जाते हैं, तो कोई न कोई मसीहा अवतार का रूप लेता है। अमेरिका में जब विज्ञापन के स्वप्नजाल में उपभोक्ता पूरी तरह फंस गए थे तो सत्तर के दशक में राल्फ नाडर के नेतृत्व में उत्पादकों व विश्वव्यापी कम्पनियों के नियन्त्रण के लिए ऐतिहासिक कार्यवाही हुई। पहली बार वास्तव में उपभोक्ता सम्राट है, इसकी स्थापना हुई। नाडर के पास न पैसा था, न ख्याति पर अर्जुन की आंख की तरह उनके आन्दोलन व सत्याग्रह को आशातीत सफलता मिली। अरबों-खरबों डालर कमानेवाली कम्पनियों को उसके सामने घुटने टेकने पड़े।

बम्बई की कन्ज्यूमर गाइडेन्स सोसायटी ने 1981-83 के दौरान जो परीक्षण किए हैं, उसके अनुसार पानी के 9 में से 5 सुविख्यात फिल्टर, 9 में से 8 बिजली की इस्त्रियां, मूंगफली तेल के 18 में से 5 सेम्पल, लाल मिर्च के 16 में से 13 ऐसे थे या तो निर्माताओं के दावों के अनुसार न थे अथवा उनमें इतनी जहरीली मिलावट थी (जैसे मिठाइयों, नमकीन में पीले रंग का प्रयोग) कि वे हमारे खाने-पीने लायक न थे।

राशन की दुकान के बनिये किरोसीन, गेहूं, चावल आदि के तोल-माप में अक्सर चोरी करते हैं। आप पैसा देते हैं दस लिटर का और माल मिलता है साढ़े-आठ पौने नौ। आटे की पिसाई में 8 किलो गेहूं के बदले में 6-7 किलो आटा देना आम बात हो गयी है।

हम या तो लाचारी से इस सब चोरी अत्याचार को सहें अथवा हममें से दस प्रतिशत भी ग्राहक चौकन्ने हो जाएं और मामले को पूरे न्याय तक ले जाएं, तभी सुधार की अपेक्षा है।

हमारी रक्षा न विदेशी करेंगे न हमारी सरकार। हमें स्वयं कटिबद्ध व सावधान होकर हमारे मोर्चे लड़ने हैं। सत्य व हक के मार्ग में कठिनाइयाँ तो अवश्य पैदा होंगी, पर अन्ततोगत्वा हर रावण का वध होना ही है। हैं आप तैयार इसके लिए?

34

भिक्षां देहि, चमचागिरी करिष्ये

नाथू बाबा की उम्र अब करीब 85 के करीब होगी, पुराने लोगों की तरह उसे भी अपनी उम्र का अन्दाजा ही है, वैसे वह मेरे दादाजी (पितामह) की नौकरी म था अत उससे एव प्रथम विश्वयुद्ध की उसकी यादगारो से हम अनुमान लगाते हैं। राजस्थान के जायल तहसील के एक छोटे गाव मे करीब 120 बीघे रेतीले प्रदेश में उसका पुश्तैनी खेत है। सिंचाई के पानी की बात तो सोचना दूर पीने के पानी के लिए भी गाव की महिलाओ को 3 कि०मी० दूर एक तालाब तक जाना पडता है। बिजली तो खैर अभी भी नदारद है। और रेल स्टेशन करीब 40 कि०मी० दूर फिर भी टूटी-फूटी, ऊपर तक लदी बसें रेतीले प्रदेश मे एक गाव से दूसरे गाव तक जाने का साधन है, नही तो लोग छकडे मे ही आया जाया करते हैं।

नाथू बाबा का गाव हमारे यहा से कोई 80 कि० मी० दूर है, फिर भी हम मे से कोई भी घर वाले की खबर उसके पास पहुचते ही वह गिरता पडता सेवा मे पहुच जाता है। 1960 65 के दरम्यान जब ट्रैक्टर हमारे प्रदेश मे आने ही लगे थे उन दिनो बाबा ने एक ट्रैक्टर दिलाने को कहा। तब ट्रैक्टरो की बहुत कमी थी। और डिपोजिट देने के 2-3 वर्षों बाद नम्बर आता था। मैने पूछा—"बाबा, तुम्हारे यहा पानी भी नही, और भूरी रेत ही रेत है इसका क्या करोगे ?"—"आपको क्या बताऊ (दादाजी के समकालीन होने पर एव हम लोगो के बहुत जोर देने पर भी वह हम लोगो को तुम नही पुकारेगा) गाव के सरपच को ट्रैक्टर मिल गया है। अब सेठो का आदमी होने के बावजूद मुझे नही मिले, तो गाव में मुह दिखाना मुश्किल हो जाएगा।"

सरपच ने तो अपने प्रभाव से एक कुआ ऋण लेकर खुदवा लिया था और डीजल इजिन भी आ चुका था। सो उसे तो 3 फसलें मिलने लगी। मैं फौरन समझ गया कि अपने सम्मान हेतु बाबा अपने परिवार वालो को बैठा-कर महीने दो महीने ट्रैक्टर से सैर कराएगा और बाद मे उसे मुनाफे पर बेच

देगा। बाबा इन वर्षों में लखपति बन गया था, फिर भी पुरानी आदत से लाचार था। जब जाना फटे मैले कपड़ों में, एक पोटला लेकर। ट्रैक्टर आया और साल भर के बाद में दुबारा मिला तो बाबा से पूछने पर हिचकिचाते उसने कहा, "क्या करें। खेती में तो काम आया नहीं बहुत कोशिश की। दो बीघा जमीन तो भाड़े में कमाया और अब बेच डाला।" 'अब तो बाबा तुम्हें यहाँ आकर बर्तन मांजने व झाड़ू लगाने की जरूरत नहीं। पहले भी लखपति थे अब तो बीस तीस हजार घर में डाल चुके हो।" पर बाबा की वही आदत। अब उसके खेत में कुआं, इंजन, 2 ट्रैक्टर, पक्का मकान, पूरा परिवार सब कुछ है। पर हर बार बर्तन साफ करने आएगा और 40-50 मेहनताने के लेकर जाएगा।

कानपुर के मेरे एक परिचित हरिहरनाथजी श्रीवास्तव हैं। "कोऊ नृप होय, हमें का हानि"—वाली उनकी नीति है। जिस दल की सरकार हो, जो एम० एल० ए० हो, जो मन्त्री हो उसी को प्रसन्न रखते थे। पूजा की सामग्री उनके गांव में पहुंच जाती और जब लखनऊ/दिल्ली मिलने जाते तो मन्त्री महोदय तपाक से उनका स्वागत करते। "भाई हरिहरजी, इन सब की क्या जरूरत है? आप तो आत्मीय हो, इत्यादि। "अरे सरकार, बच्चों को कुछ भेज दिया, आप काहे परेशान होते हो। हमारा भी तो कुछ हक है। और आप देश प्रदेश का भार रखते हैं। और इन चीजों में·· ·· और हां भाभी को हापुस आम पसन्द है। बम्बई गया था सो छोड़ आया हूं।"

हरिहर दो-तीन वर्षों से एक अच्छे उद्योग का लाइसेन्स लेते हैं। दस वर्ष पूर्व प्लास्टिक के सामान का लिया था, कारखाना लगाकर बीस लाख मुनाफे पर बेच डाला। बाद में प्रादेशिक सरकार से तेल व आटे की चक्की के परमिट निकलवाये और वे भी लाख-लाख की एवज में कहीं और बिक गए। आजकल छोटी पेपर मिल तराई क्षेत्र में खोलना चाहते हैं। उसके लाइसेंस के चक्कर में चौथी बार दिल्ली जाना हुआ। सरकारी बरामदे में मिल गए। पूछने पर यह सब मालूम पड़ा। मैंने कहा, "हरिहर, तुम यह लेना बेचना कब बन्द करोगे? क्या आए दिन चापलूसी और घूस। एक दो कारखाने ले बैठते तो आज यह सब तो नहीं करना पड़ता।"

"—अरे भाई, हम तो मजदूर आदमी ठहरे। तुम्हारी तरह उद्योगपति तो है नहीं, किसी तरह गाड़ी चलाते हैं।"

"—अच्छा पेपर मिल नहीं लगानी हो तो मुझे लिखना। लाइसेन्स के दस पांच लाख कहीं से मिल जायेंगे।"

आए दिन लोग नौकरी की तलाश में मिलते रहते हैं। मुझे भी अपने बेटे की महीने में दस बीस अर्जियां मिल जाती हैं। नौकरियां नहीं हैं। दर

वे लोग मानने को तैयार नही हैं । जब कहता हू—हर कारखाने मे पचासो लोग जरूरत से अधिक हैं तो उत्तर मिलता है एक और सही । इतने मे तो आपका कुछ बिगडेगा नही । लोगो को धधे रोजगार की सलाह देता हू और बैंक मे कर्ज दिलवाने की भी, तो वापस नही आते।

हम लोग सपरिवार हिन्दुओ के सभी तीर्थ कर चुके हैं। वहा सैंकडो बरसो से परिवार के पण्डे नियुक्त हैं। किसी तीर्थ स्थान पर जाने के लिए उन्ही पण्डो को सूचना दी जाती है। फिर वे लोग समय पर उपस्थित हो यात्रा की सारी व्यवस्था हाथो हाथ कर देते हैं। यात्रा के बाद उन्हे यथोचित पुरस्कार दे दिया जाता है। बाद मे उनके घरो मे लडकियो के विवाह पर भी उचित सामग्री भेजी जाती है। यात्रा की सीजन पूरी हुई कि प्रति वर्ष भारत भर के पण्डे पुजारी बम्बई पहुच जाते हैं। "—कहिए कैसे आना हुआ? समाचार ही नही भेजा।"—"सीजन बन्द था सोचा बम्बई हो आऊ, आप लोग यजमानो के दर्शन हो जायेंगे। हा सामान व फैमिली नीचे बैठे हैं। कही रहने को कमरा कर दें तो बडी कृपा होगी।" —"ओ महाराज। बम्बई मे सब कुछ मिलता है। केवल रहने का स्थान नही। आप भी क्या सोचकर आए?" इतने मे पत्नी अन्दर से आती है। श्रद्धालु हैं। पहले तो पण्डाजी को सपरिवार चाय नाश्ता दिया जाएगा, नारायणवाडी मे एक कमरे की खटपट होगी। गाडी उन्हे यथा स्थान पहुचाकर आएगी। मैं पूछता हू तो डांट मिलती है कि मुझे शर्म भी नही आती पुश्तैनी पण्डो का भी सत्कार न हो।—भूल गए क्या? आप गगोत्री गए थे। तो कितनी भाग दौड की थी। हा भाई की थी पर उसके एवज 151) दे दिए थे। अभी अपने आगरे गए थे। टूरिस्ट एजेन्ट ने सारी व्यवस्था की थी जिस व्यक्ति ने ताज व फतहपुर सीकरी इतनी चाव से दिखाई थी उसको बख्शीश दी गई, वह आज आ जावे तो क्या करोगी? जवाब नदारद।" "आपसे बहस कौन करे?"

जब कभी सोचता हूँ तो हमारे देश के प्रत्येक क्षेत्र मे यही व्यवस्था नजर आती है। हम छात्र जीवन मे, स्कूल व कालेज मे मेहनत करने को तैयार नहीं है। परीक्षा के 10 दिन पूर्व पेपरो का पता लगाने की भरपूर कोशिश चलती है। परीक्षा के लिए गाइडो का सहारा लिया जाता है। पर्चे होने के बाद परीक्षक की तलाश की जाती है, मिलने पर उसे प्रभावित करने की कोशिश होती हैं। येन-केन छात्र छात्राए पास भी हो जाए तो न तो वे शैक्षणिक और न ही व्यापारिक जगत के लायक रहते है। न घर का न घाट का। तभी ऊहापोह चलती है और उनके अभिभावको को कही नौकरी लगाने के लिए भिक्षावृत्ति का सहारा लेना पडता है।

भारतीय शिक्षा पद्धति के बारे मे मेरे मित्र स्व० पील मोदी कहा करते थे

कि पश्चिमी देशो के विश्वविद्यालयो से युवक-युवतिया काम (वर्क) की तलाश करते हैं और हमारे यहा सब लोग नौकरी (जॉब) की । यही जीवन दर्शन जाने-अनजाने जनमानस मे इस कदर घर कर गया है कि आत्मविश्वास एव स्वावलम्बन नाम की वृत्ति रही नही है।

और तो और जो नागरिको के अधिकार व सुविधाए भी सविधान मे है, उन्हें भी हासिल करने के लिए खुशामद, चमचागिरी, घूस आदि का सहारा लेना पडता है। आप चाहें इन्कम टैक्स विभाग से अपना रिफण्ड सर्टिफिकेट आर्डर लेने जावें अथवा इन्शोरेंस कम्पनी (जीवन बीमा निगम) से किसी की मृत्यु के बाद रकम, रेल की रिजर्वेशन चाहे अथवा राशन कार्ड बनवाना, बैंक से अपनी पासबुक का हवाला चाहे अथवा यूनिवर्सिटी से मार्क शीट, क्या कही भी हमे एक नागरिक के बतौर सम्मान व ध्यान मिलता हैं ? क्यो हम सब हमारे ही राष्ट्र मे द्वितीय श्रेणी के नागरिक बनना स्वीकार करते हैं ? सारे जुल्म चुपचाप क्यो सहते हैं ?

जब तक इस विषय मे सामूहिक ढग पर सार्वजनिक आवाजें दृढता से नही उठेंगी, हमारी वर्तमान व भविष्य की पीढिया किस किस्म व चरित्र की होगी, इसकी सहज कल्पना की जा सकती है।

35

कामचोरी कैसे रोकें ?

कामचोरी अपने देश मे कैसे फैल रही है और इसके क्या गम्भीर परिणाम हो रहे हैं, आज की व भविष्य की पीढ़ियो के लिए, इनका विवेचन एक अन्य लेख मे किया गया है। इस रोग को फैलने से रोकना होगा। यह किस तरह ?

कुछ वर्ष पहले न्यूयार्क मे विश्व प्रसिद्ध उद्योगपति बैंकर श्री डेविड रॉकफेलर से ससदीय शिष्टमण्डल के एक सदस्य के रूप मे मिलने का मौका मिला। बातचीत के बाद उन्होने बताया कि वे कल इस समय स्विट्जरलेंड मे होंगे, और वे इस छुट्टी का बडी बेसब्री से इतजार कर रहे थे। कोई खटपट नही, टेलीफोन-टेलेक्स से दूर, कोई इण्टरव्यू एपाइटमेंट नही। वे इसे स्वर्ग-समान समझ रहे थे। मैं सोच-विचार मे पड गया कि अरबो की रकम का अन्तर्राष्ट्रीय अधिपति, अपने ही काम से कैसे उकता गया है। स्वय का साम्राज्य है, फिर भी काम से थकान ?

उसी तरह हमारे भारतीय जीवन को देखें। हर व्यक्ति चाहे दफ्तर का चपरासी हो अथवा पत्र का उपसपादक, बैंक का मैनेजर हो अथवा स्कूल का प्रिंसीपल—हम सब प्रतिदिन सायकाल 5 बजे घडी की सुई पर नजर रखते हैं एव साप्ताहिक अवकाश के लिए रविवार पर। *कितना अच्छा लगता है शनि-रवि का आना।*

इसकी तुलना मे छोटे किसानो, छोटे दुकानदारो, निजी पेशेवाले डॉक्टर, वकील, इंजीनियर को देखें। नई दिल्ली मे पचकुइया रोड पर छोटी कुर्सिया टेबुल बनाने वाले कई कारीगर व दुकानदार हैं। एक बार हम लोग एक टेबुल *पसद कर लाए, जो घर आने पर बहुत छोटी लगी। वापस पहुचे। छोटी-सी* दुकान के अहाते पर बढ मालिक ने बडी टेबुल का ढाचा निकाला, बढई ने उसे हमारे सामने ही जोडा और पाच मिनट मे नई टेबुल हासिल हो गई।

धधे-रोजगार की क्यो बात करें, पाच वर्ष पूर्व मद्रास यात्रा के दौरान

विश्वविख्यात गायिका श्रीमती शुभलक्ष्मी के यहा रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनके पति सदाशिवम् और वे, दोनो सभ्यता, सस्कृति व नम्रता की भव्य मूर्ति हैं। प्रात 4 बजे अपने प्रभु के सामने उन्होने गाना शुरू किया जो अन वरत 8 बजे तक चलता रहा। क्या यह समर्पण वह किसी सासारिक वैभद व ख्याति के लिए करती हैं ?

आइस्टाइन व सी वी रमन जब अपनी-अपनी शोधशाला म अकेले विश्व की वैज्ञानिक गुत्थियो को सुलझाने मे वर्षों लगे रहते, तो क्या उनके मन म अपने काम, दौलत, बोनस, हक, हडताल, कुर्सी, ख्याति आदि के विचार आते थे ? माइकेल एजेलो जब रोम के चर्च मे, अथवा अजता-एलोरा के शिल्प चित्रकार अपनी अपनी सर्वश्रेष्ठ अनुकृतिया प्रभु को भेंट स्वरूप देते थे तो वे वेतन भत्ते की कल्पना से कितनी दूर रहे होगे।

यह कोई नही कहता कि काम का मुआवजा न मिले। काम भी मन लगा कर हो एव उसके आर्थिक-सामाजिक अनुपात म पैसे भी मिलें व इज्जत भी परन्तु केवल पैसे पर चलने वाली गाडी ही नही, काम के आज जितने भी आधार हैं, जैसे ओहदा, अधिकार, ख्याति, कुर्सी आदि ये सब कुछ दूरी के मित्र हैं। फिर हम जैसे के तैसे हो जाते हैं।

इस मनोवृत्ति को अग्रेजी मे "लॉ ऑफ डिमिनिशिंग रिटर्न" कहा जाता है। यदि किसी को क्लर्क से अफसरी का ओहदा मिल जाय या आई टी ओ को इनकम टैक्स कमिश्नर का, तो इसका नशा 4-6 महीने रहता है, फिर मन की माग बढ जाती है। मौजूदा परिस्थिति से असतोष, फिर मानव वही का वही।

अत स्पष्ट है कि हम अपने श्रम या हुनर को व्यापारी तौल मे तौलेंगे तो सारे जीवन मे आनद व सुख की उपलब्धि नही मिलेगी। यदि मानव अपने जीवन मे अप्रतिम सुख चाहता है तो क्षणिक व तात्कालिक सुख के साधनो पर निर्भर न रह उसे कर्मयोग की सनातन भूमि पर श्रम के रूप मे साधना-क्षेत्र मे आना होगा।

सुप्रसिद्ध विचारक कार्लाइल ने कहा है कि वह मनुष्य धन्य है, जिसे "अपना" काम जीवन में मिल गया। उसे और कोई वरदान मागने की आवश्यकता नहीं है। यह सिद्धान्त भगवद्गीता के "स्वधर्म" पर आधारित है। स्वधर्म क्या है। कार्यक्षेत्र में इसे कैसे ढूढा जाए ?

मुझे मद्रास के एक विख्यात सर्जन के परिवार की आपबीती याद आती है। उनके एक ही पुत्र था, और वे चाहते थे कि उनका लडका भी डॉक्टर बने। लडके का मन डॉक्टरी में बिल्कुल नहीं लगता था। किसी तरह 2-3

माल फेल होकर, ठोक-पीट कर वे डाक्टर बने । पर मन मोटरगाडी के इंजिन ठीक करने व मैकेनिकी मे अब भी था । जब मौका लगता, तब एबुलेंस के नीचे घुस जाते और उसके कलपुर्जे ठीक करते । एक दफा वे किसी गम्भीर ऑपरेशन मे लगे हुए थे । रोगी की सिलाई बाकी थी । इतने मे उन्हें पता चला कि उनके अस्पताल की ऐबुलेंस खराब हो गई है । फिर क्या था, रोगी को सहायको के सुपुर्द कर वे सीधे गाडी ठीक करने मे व्यस्त हो गए । स्पष्ट है कि उनका स्वधर्म दूसरा था और वे जबरदस्ती डॉक्टरी मे खीचे गए ।

अपने स्वभाव, गुण व रुचि का प्रत्येक व्यक्ति को 15-18 वर्ष की उम्र के दौरान पता चल जाता है । इस बारे मे आजकल "वोकेशनल गाइडेंस" भी मिलता है । इसी गुण व कर्म के आधार पर हमारे यहा चार समुदाय—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नाम से बनाए गए थे जो समयान्तर मे विकृत होकर जन्म पर आधारित हो गए ।

कार्य के क्षेत्र मे जो सबसे बडा गतिरोध होता है, वह काम करते समय बीते हुए अनुभवो और भविष्य मे कार्य के नतीजे के बारे मे ऊहापोह होने के कारण है । यदि डॉक्टर ऑपरेशन के समय इसी चिंता मे रहे कि मरीज ठीक होगा कि नही, उसे शल्य क्रिया मे कितने रुपये मिलेंगे, ये रुपये इनकम टैक्स मे कैसे बचाए आदि, तो निश्चय ही वह ऑपरेशन यमालय मे समाप्त होगा । ठीक यही भाव प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप से सभी लोगो मे रहता है, जिससे वे काम करने मे अपनी श्रेष्ठ कला व प्रतिभा नही लगाते, इसी कारण हमारा हर काम खराब हो जाता है ।

स्वधर्म के क्षेत्र मे पसद-नापसद का सवाल नही उठता । आप किसी औद्योगिक कारखाने मे मैनेजर हैं और रात को डेढ बजे किसी विभाग मे हो-हल्ला हो गया या मशीन टूट गई अथवा आग लग गई तो बिस्तर फौरन छोडने मे देर नही कर सकते । अक्सर हम अगले दिन के लिए काम टाल देते हैं, यह भूलकर कि अभी समय पर की हुई दवा ही रोगी की जान बचा सकती है । अगले दिन सभवत मर्ज लाइलाज हो जाएगा । इसे अग्रेजी मे "इक्वे-निमिटि" और सस्कृत मे "स्थितप्रज्ञ" कहा जाता है ।

कई लोग पूछते हैं कि यदि कार्य के इनाम व फल की आकाक्षा न रखें तो प्रेरणा कहा से मिलेगी ? कौन काम करेगा ? यदि काम करने वाले पर सुपरवाइजर की आख न हो और महीने-वर्ष के अन्त मे बोनस व पदोन्नति न मिले तो काम कैसे होगा ? पश्चिमी विद्वानों व मनोवैज्ञानिको ने पचासो वर्षों के अध्ययन के बाद निष्कर्ष निकाला है कि पेट भरने, रोटी-कपडे-मकान, कुर्सी, प्रसिद्धि आदि के बाद मानव के प्रेरणास्रोत बदल जाते हैं । फिर उसे अधिक रुपये या अधिक सम्मान आदि से सतोष नही मिलता, उसे काम की

प्रेरणा "आत्मोत्सर्ग" से मिलती है। यही सिद्धान्त हमारे शास्त्रो मे सनातन काल से गीता के कर्मयोग मे स्पष्ट प्रतिपादित है—काम करना तुम्हारा कर्म है—फल की आकाक्षा नही। काम करते समय भूत व भविष्य से विचलित न हो, फल तो अवश्य मिलेगा ही।

एक और दानव हमारे अन्दर बैठा है जो देर-सबेर अपना बीभत्स रूप दिखाता है। वह है, काम करना व सफलता हासिल करने मे "कर्तृत्वभाव" यह हमारे अह पर ही आधारित है। एक दिलचस्प सर्वेक्षण के आधार पर भारतीय विशेषज्ञ गौराग चट्टोपाध्याय ने यह पाया कि कच्ची झोपडियो से दिल्ली दरबार तक यह भावना अलग-अलग रूप से मुखरित होती है। गाव का हरिजन हर घर की गन्दगी धोएगा, पर अपनी झोपडो मे घुसते ही वह अपने बीबी-बच्चो पर शासन करता है। सामाजिक असतोष व आक्रोश हर दिल मे इतना भरा है कि हर टैक्सीवाला दूसरे ड्राइवर को गाली देने को तैयार है, हर क्लर्क अपने मातहतो पर राज करता है, हर मन्त्री दूसरे मन्त्री के विरोध मे अपना गुट तैयार करता है। यह गुटबाजी, गाली-गलौज, दूसरो को मजा चखाने व पाठ पढाने की प्रवृत्ति, भारतीय मन्त्रिमण्डल से लेकर गाव की पचायत तक फैल गई है, जो सार्वजनिक कार्य नही होने देती, कल-कारखानो व दफ्तरो मे काम हो तो कैसे ?

हमे गम्भीरता से देश के इस अध:पतन पर विचार करना होगा और "मन की मर्जी" के स्थान पर बौद्धिक स्तर पर हर निर्णय लेने होगे। एक छोटा नक्शा देखें—

इस विश्व के प्रणेता व सचालक ने आकाश, पवन, सूर्य, जल अग्नि-वनस्पति, अनाज फल फूल के रूप मे हमे मुफ्त मे प्रदान कर रखी है, उसके प्रति श्रद्धावनत हो और यात्री के स्वरूप प्रत्येक व्यक्ति, प्राणी, जीव व भूत का सम्मान करें, काम भी उसी को समर्पण करना होगा। हमारा लक्ष्य जितना नि:स्वार्थ व पुनीत होगा, उतनी ही अधिक प्रेरणा मिलेगी।

हर काम "मन से नही, अपितु बुद्धि से करना चाहिए ताकि राग-द्वेष का समावेश न हो सके। "बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय" की भावना प्रत्येक निर्णय मे परिलक्षित होनी चाहिए। सारी दौलत हम भारत के प्रथम दस प्रतिशत निवासी ले जाते हैं (भ्रष्ट राजनीतिज्ञ, सरकारी कर्मचारी, व्यवसायी, सगठित मजदूर और बडे किसान)।

शरीर काम के बोझ से कभी नही मरता। काम करने की भावना, जेब भरने के लालच व उससे उत्पन्न मानसिक सघर्ष से ही ब्लड प्रेशर, अलसर, नीद का न आना, चिडचिडापन आदि मानसिक रोग होते हैं।

36

यह हमारा काम नहीं, तब फिर किसका है?

मेरे एक घनिष्ठ मित्र का, लोहे व इस्पात बनाने का कारखाना बम्बई के एक उपनगर में है। व्यवस्थापन के क्षेत्र में जहां वे एक अग्रणी सुधारवादी माने जाते हैं, वहीं ट्रेड यूनियनों व सरकार में भी उनकी कार्यकुशलता की अच्छी पैठ है। पिछले कुछ वर्षों से अन्य उद्योगों की तरह ही इस इस्पात उद्योग में भी मंदी आयी हुई है। अत व्यवस्थापक लोगों को दिन भर यही कोशिश करनी पड़ती है कि फालतू खर्चों पर कैसे नियन्त्रण पाया जा सके। खर्च कम करने के लिए जहां एक ओर उत्पादकता बढानी जरूरी होती है, वहीं मौजूदा साधनों के अधिकाधिक उपयोग की कोशिश भी आवश्यक है। इसके अलावा मजदूरों व सुपरवाइजरों के बीच पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता रहती ही है, जिससे माल तो अच्छी किस्म का निकले ही, साथ ही काम में अधिक ओवरटाइम या बरबादी न हो।

इस सम्बन्ध में व्यवस्थापकों ने सारे भारत के इस्पात कारखानों के आकड़े एकत्र करवा कर मजदूरों को बराबर यह समझाने की कोशिश की कि औरों की तुलना में उनके वेतन ज्यादा हैं, किन्तु उनके कारखाने का उत्पादन अपेक्षाकृत बहुत कम है।

किन्तु मजदूर इन आंकड़ों को देखकर भी काम बढाने पर सहमत नहीं हुए और कोई न कोई बहाना ढूंढ कर, लगातार धीरे काम करो का रास्ता अख्तियार करते रहे। कम्पनी की आर्थिक मजबूरियों और कर्मचारियों का यह रुख देखकर मित्र महाशय, जो मलाबार हिल में रहते हैं, अपना घर छोड़कर फैक्टरी के ही एक गेस्ट हाउस में परिवार से अलग आकर रहने लगे। वे रात को कभी एक बजे, कभी प्रात काल पांच बजे, अलग-अलग विभागों में खुद जा कर काम का निरीक्षण करने लगे।

कई स्थलों पर उन्होंने देखा कि कभी कोई मशीन किसी वजह से बन्द पड़ी है, तो कभी कोई। कहीं कुछ मजदूर बीड़ी पीते हुए चुपचाप बैठे हैं और

वैसी ही अन्य मशीनो पर बाहर के मजदूरो को बुलवा कर काम करवाया जा रहा है। उन्होंने जब मजदूरो को बुलवा कर पूछा कि अगर उनकी मशीनें नही चल रही हैं, तो वैसी ही दूसरी मशीनो पर स्थाई लोग काम क्यो नही कर रहे हैं, जिससे कम्पनी को नुक्सान न हो ? उत्तर मिला—यूनियन का हुक्म नही है और, अपनी-अपनी मशीनो के अलावा वे दूसरी को हाथ भी नही लगायेंगे।

फैक्टरी के काम के लिए छ अम्बेसडर गाडिया हैं और उतने ही ड्राइवर भी। पर मजे की बात यह है कि बराबर कोई न कोई गाडी सुधरवाने के लिए गई रहती है और अच्छी गाडियो के ड्राइवर किसी न किसी बहाने बराबर छुट्टी पर चले गए होते है। परेशानी उस समय और बढ जाती है, जब अच्छी-भली गाडी का ड्राइवर छुट्टी पर होता और खराब गाडी या सर्विस मे गई गाडी का ड्राइवर काम पर हाजिर होता है। हाजिर ड्राइवर अपनी गाडी को छोड कर दूसरी गाडी चलाने के लिए तैयार नही होता। फलस्वरूप हर महीने बेकार ड्राइवरो को बैठे-बिठाए तनख्वाह और बाकी को ओवरटाइम देना जैसे कि मालिक का आपद्धर्म बन गया है।

एक दिन एक दिलचस्प घटना घटी। किसी मजदूर को पाव फिसल जाने के कारण चोट लग गई। सिर पर टाके लगाने व मरहम पट्टी करने के लिए उसे कम्पनी के डॉक्टर के यहा ले जाना जरूरी था। मेरे मित्र भी वहाँ पहुचे। इत्तफाक से उनका मरहम पट्टीवाला कपाउन्डर व नर्स, उस दिन दोनो अनुपस्थित थे। अत डॉक्टर ने कहा कि वह उपचार करने मे असमर्थ है, क्योकि सिलाई के अलावा मरहम पट्टी का काम उसका नही है। इस बीच 10-20 अन्य मजदूर भी इकट्ठे हो गए। डॉक्टर का यह रवैया देखकर मित्र (जो अमरीका मे फर्स्ट एड की पद्धति के जानकार थे) ने स्वय घाव साफ किया और डॉक्टर के टाके लगाने तक वही खडे रहे। डॉक्टर व मजदूर उनका मुह देखते रहे। घटना आई-गई हो गई। पर तब तक इसकी खबर बिजली की तरह चारो ओर फैल गई।'छोटे-छोटे झुड बना कर लोग इसी की चर्चा करते रहे।

मित्र के यहा के यूनियन नेता को जब इसकी खबर लगी, तो वे तुरन्त फैक्टरी पहुचे। उनके साथ मे आठ-दस पहलवान भी थे। डॉक्टर ने अपने कार्यक्षेत्र के बाहर जाकर मजदूर को मरहम-पट्टी क्यो कर दी, इसे बहाना बनाकर कम्पनी के दवाखाने मे डॉक्टर को पीटा गया, जिससे आगे के लिए लोगो को सबक मिल सके। थोडी ही देर मे पुलिस भी बुलायी गई, पचनामा बना, पर गवाही देने के लिए कोई भी आदमी तैयार नही हुआ। केस गवाहो के अभाव मे आगे नही बढ सका। आज इस कारखाने मे तालाबन्दी हो चुकी है।

कुछ दिन पूर्व एक बड़े सरकारी प्रतिष्ठान के प्रबंध निदेशक से काम करने की अनिच्छा के वातावरण की जब मैंने चर्चा की, तो उन्होंने एक बड़ा दिलचस्प, किन्तु दर्दनाक किस्सा सुनाया। उनके ड्राइवर का मासिक वेतन 4,500 रु० था क्योंकि उसे अक्सर ओवरटाइम देना पड़ता था। गाडी दिल्ली से आए किसी न किसी राजनीतिक वी आई पी के लिए बराबर भेजनी पड़ती। उनके चपरासी की तनख्वाह 2,200 रुपए थी। एक दीवाली कार्डों का एक पुलिंदा देते हुए, उन्होंने अपने चपरासी को दफ्तर के नीचे लगे हुए डाक के डिब्बे में छोड़ने को कहा। चपरासी को जब यह पता चला कि ये कार्ड साहब के निजी खाते के हैं, तो उसने यह कह कर उन्हें पत्र पेटिका में डालने से इनकार कर दिया कि यह काम दफ्तर के काम में सम्बन्धित नहीं है, सो यह उसका काम नहीं है।

कुछ दिनों पूर्व हम लोग आगरा के एक विश्वविख्यात होटल में ठहरे थे। जो व्यक्ति मोटर से कमरे तक सामान लाया, अपनी बख्शीश ले वापस जाने लगा, तब मैंने उसे पास ही में स्थित हाउसकीपिंग से अपने बिस्तर के नीचे लगाने के लिए प्लाइवुड का तख्ता लाने को कहा। उसने कहा यह काम मेरा नहीं है, आप हाऊसकीपिंग में फोन करें।" करीब आधे घण्टे की दौड़ धूप के बाद तख्ता आ सका।

यह सिलसिला गत दस वर्षों में काफी बिगड़ चुका है। अब तो काम करने का सामंजस्यपूर्ण वातावरण कहीं दिखाई ही नहीं देता। हर तरफ बिना काम किए अधिक से अधिक सुविधाएं व हक प्राप्त करने का माहौल बन उठा है। हड़ताल, घेराव, मशीनें तोड़ कर काम ठप्प करने तक की नौबत आ गई है। मिर्जापुर उत्तर प्रदेश के ओबरा बिजली घर की मिसाल सामने है। खर्च बढ़ते जा रहे हैं और कारखानों के उत्पादन की स्थिति यह है कि माल कम तैयार होने के साथ-साथ उसकी श्रेष्ठता बनाए रख पाना असंभव सा होता जा रहा है। किसानों, पेशेवरों एवं छोटी इकाइयों के लोगों को छोड़ कर, बाकी लोग बिना श्रम किए दौलत इकट्ठा करने के पीछे दीवाने होते जा रहे हैं। चाहे वह मैनेजर हो, स्वीपर हो, अधिकारी हो या साधारण वर्ग का कर्मचारी। व्यवस्थित कार्यक्षेत्र में कहीं भी कोई काम नहीं होता। हैदराबाद की एक अर्द्धसरकारी उत्पादकता विषयक संस्था ने अपनी जांच के आधार पर यह बताया है कि हमारे सभी कल-कारखानों में मजदूर लोग मुश्किल से दो या तीन घण्टे का काम करते हैं। पुणे के लब्धप्रतिष्ठ संस्थान बजाज ऑटो में, उनके अनुमार 8 घण्टे की पाली में साढ़े पांच घण्टे काम होता है। यही दुर्दशा व लापरवाही दफ्तरों व अन्य स्थानों पर भी दिखाई देती है।

इसके कारण स्तर से वस्तुओं की कीमतों में अंधाधुंध वृद्धि हो रही है।

जब खर्च बढेगा और उत्पादन उसकी तुलना मे कम होगा, वस्तुओ का मूल्य बढना स्वाभाविक ही है। सरकार या पूजीपतियो को कोसने भर स ही तो महगाई रोकी नही जा सकती। प्रश्न आज सिर्फ वेतन की लगातार वृद्धि से हल होने वाला नही, क्योकि वेतन की वृद्धि से यदि एक वर्ग-विशेष को अल्प समय के लिए थोडा बहुत लाभ मिल भी जाता हो, तो महगाई का तो प्रभाव सारे देश पर पडना ही है। कोई जिस किसी भी सस्था म काम करता हो, उसे यदि अपने गौरव व सतोष के रूप मे स्वीकार नही करता और जितनी देर के लिए उसमे उसकी ड्यूटी हो, उसे ईमानदारी से पूरा नही करता तो वह अनैतिक होने के साथ ही एक राष्ट्रघाती अपराध भी है।

गीता के तृतीय अध्याय "कर्मयोग" के 12 वे श्लोक म स्पष्ट उल्लेख है कि जो व्यक्ति राष्ट्र, समाज एव कार्य करने के स्रोत का ऋण चुकाए बिना खाता है, वह निश्चय ही चोर है। हम गम्भीरता से यह सोचना होगा कि कर्मयोग का सनातन सिद्धान्त देने वाला देश आज अकर्मण्यता या काहिलपने के दलदल मे क्यो धस रहा है? मेरी राय मे पश्चिमी राष्ट्रो, उनकी सस्कृति, कार्यप्रणाली एव प्रेरणा हेतु इनाम (इसेंटिव) के अधे अनुकरण के कारण आज हमारी यह दुर्गति हुई है। पश्चिमी समाजो के किसी भी वर्ग मे आतरिक सुख व आत्मीय सतोष की प्रवृत्ति नदारद है। तभी उनके यहा के भटकते असतुष्ट लोग हजारो-लाखो की सख्या मे भारत व अन्य पूर्वी देशो की ओर झुक रहे हैं। दुर्भाग्य से उन्हें भी तत्काल चमत्कार दिखाने वाले साधु व आचार्य मिल जाते हैं। उस मार्ग पर उन्हें क्षणिक आनन्द तो मिलेगा, परन्तु स्थायी कैवल्य नही।

बम्बई के 4-5 हजार मासिक तनख्वाह वाले ड्राइवरो, स्वीपरो व चपरासियो से मैंने कई दफे पूछा कि इतनी अच्छी कमाई होने के बाद, उन्होने अपने गावो मे मकान बनाए होगे, बूढे मा बाप की परवरिश अच्छे ढग से हो रही होगी, उनके खेतो मे पप मोटर आदि लग गए होगे और अपने बच्चो को वे अच्छे स्कूल-कालेजो मे भेजते होगे। अधिकाश लोग हाथ मल कर कहते हैं कि रुपया तो आज की महगाई मे बचता ही नहीं, घर बनेगा कैसे?

100-150 रु० कमाने वाला गाव का हरिजन भी यही बात कहता है। यदि हमे अपनी तथा अगली पीढी एव राष्ट्र को शक्ति व सहारा देना है, तो उत्तर स्पष्ट है। लेकिन, दुख है कि हम इस उत्तर से आख चुरा रहे हैं। शराब की बिक्री जोरो पर है, जुआ-लाटरी बढ रही है, औरतो के जिस्म के ग्राहक बढ रहे हैं, मुर्ग-मुसल्लम की खपत बढ रही है और देश मुह बाए खडा है। किधर जाए? क्या करें?

37

प्रकृति के साथ यह क्रूर उपहास

मैं जहा भी अपने मित्रो-सम्बन्धियो के यहा मिलने जाता हू, मजाकिया तौर पर, जानते हुए भी भरी सभा मे पूछा जाता है कि मैं आधा गिलास पीने का पानी लूगा या पाव। शुरू से ही यह निश्चय हो गया था कि दुनिया मे किसी भी वस्तु का *अनुचित उपभोग या उपयोग नही किया जाना चाहिए।* और बर्बाद तो यथासम्भव नही। हर जगह आख दौडाइए, माले मुफ्त दिले बेरहम का मन्त्र नजर आता है। आप एयरपोर्ट से शहर लौट रहे हैं, 8 फीट की विशाल म्युनिसिपल पाईप, जो शहर भर के लिए पानी लाती है, टूटने की वजह से तेजी से पानी की बौछारें छोड रही है। न हम घर जाकर टेलीफोन से रपट लिखाते हैं, न ही बस्तियो मे रहने वाले लोग क्योकि हमे कुछ लेना देना नही और उन्हें साधारणतया पानी मिलता नही।

कभी कोई रुक कर यह नही सोचता कि एक गिलास पीने का पानी अपने होठो पर आने तक कितने प्राकृतिक व मानवीय करिश्मो से गुजरता है। हमने तो पानी का गिलास मुह को लगाया, कुछ पिया कुछ फेंक दिया। लोग नहाने मे अक्सर सैंकडो लीटर पानी नल खुली रख कर बर्बाद करते हैं। कई रईस तो दाढी बनाने या दातो मे ब्रश रगडते वक्त पानी चालू रखते हैं। नौकरानी बर्तन माजते वक्त पानी बेतहाशा बहने देती है।

पहले सूर्य की घटती-बढती कला न हो, तो नदियो, तालाबो व दरिया का पानी भाप होकर ऊपर जाकर बादल बने नहीं। और बादल केवल कालिदास के शाकुन्तलम् के सदेहवाहक ही नही हैं, वैसे हर रसिक प्रिय कवि श्रृगार मे इसका उपयोग करते हैं। ये बादल एक अमुक स्थिति मे आकर ही आपके यहा अपना सर्वस्व देते है। हालांकि हमारे देश मे उपलब्ध जलराशि अधिकतर बिना सदुपयोग के दरिया मे ही पहुच जाती है। वर्षा के जल को मानव अपने डैम व तालाबो मे एकत्रित करता है ताकि वर्षा-ऋतु के अतिरिक्त 9-10 महीने मे पानी मिलता रहे। करोडो-अरबो की राशि हमारे देश से अथवा वर्ल्ड बैंक मे

लाकर जल-योजनाओं को जैसे तैसे स्थानीय नगरपालिकाएं चलाती हैं। पानी हमारे घर मे मकान मालिक अथवा टकी के जरिए आता है। पीने के लिए उबाला या छाना जाता है। इतनी प्रक्रिया के बाद आपको पीने लायक पानी मिलता है और नहाने-धोने के लिए। पर चूकि मिलता है, तो उसकी कद्र कहा !

किसी भी वस्तु का महत्व उसकी गैरहाजिरी या अनुपस्थिति मे पता चलता है। एक साल मद्रास शहर मे एक एक लोटे पानी के लिए तरस गए। दो-तीन दिन मे नहाना-धोना, कहा-कहा से बचा कर पानी 5 रु० प्रति बाल्टी लाना, कल-कारखाने नितान्त बन्द—तब वहां पहाडियो व धर्मस्थलो मे यज्ञ हुए। नही तो तन्नि को कौन पूछता है ? पानी की दीर्घसूत्री कीमत जाननी हो तो राजस्थान के रेतीले इलाके मे जाए, जहा आज भी 5-7 कि० मी० से पीने का पानी औरतो के सिर पर ढोकर लाना पड़ता है।

पीने के पानी के बिना भी मानव नही रह सकता, भूखे भले ही दस पाच दिन उपवास मे निकाल लें। पानी को सदा घूट-घूट दूध की तरह पीना चाहिए ताकि उसमे स्थित रस शरीर को सिंचित करता रहे। उसका कीटाणु रहित होना आवश्यक है, जो कि खूब खौलकर ही हो सकता है। भारत से जापान तक के सारे पूर्वांचल मे 90 प्र० श० बीमारिया दूषित जल से ही होती हैं।

भारत जैसे देश मे जलवायु के कारण शुद्ध व प्रचुर मात्रा मे जल पीना अत्यन्त लाभदायक है। वैसे प्राकृतिक चिकित्सा मे रोग निवारण एव स्वास्थ्य के लिए कई पद्धतिया हैं, जिनका नियमित प्रयोग होना चाहिए।

अब हम वायु का उदाहरण लें। पवन भी मुफ्त मे मिलता है। अत: भारत के सारे औद्योगिक नगर इसे बर्बाद करने मे तुले हैं। फ्लोरा फाउन्टेन पर खडे होइए अथवा चादनी चौक मे, कलकत्ते के बड़े बाजार पर हो अथवा मद्रास के अन्नासलै (माउण्ट रोड), कुल दस मिनट मे बसो, ट्रकों, टैक्सियो, गाड़ियो की जहरीली छोडी हुई गैस (एक्जॉस्ट) से आपका दिमाग भन्ना जाएगा। शहरो मे आजकल सास, टी० बी०, खासी आदि के रोग भरपूर इसी वातावरण की गन्दगी के कारण हैं। है किसी को परवाह ?

भारत सरकार मे एक वातावरण को रखने का मन्त्रालय बना रखा है। इस महकमे की आवाज नक्कारखाने मे तूती जैसी है। कुछ समय पूर्व पश्चिमी जर्मनी मे तो वहा के नागरिको ने अपने देश-प्रदेश को शुद्ध, स्वच्छ व विषैली गतिविधियो से रोकने के लिए ग्रीन पार्टी की रचना की, जिसे पहले ही चोटें मे आशातीत सफलता मिली। क्या हमारा देश इस रास्ते मे कोई भी कदम उठाएगा ?

जब गगा यमुना को एक सार्वजनिक मल मूत्र शाला का एव उद्योगो से निकलने वाले सारे रसायन का भण्डार बना दिया है। तब और शहरो का

पूछना ही क्या ? कायदे कानून सब जगह है, अफसर, प्यादे, मंत्री भी, पर जब दंड देने के कदम उठाने हो तो रुपयो के बण्डल इधर से उधर हो जाते हैं। जनता तो निरीह और मूक है ही सस्कारतः।

अब पेड लगाना केवल नारा रह गया है। बजट मे करोडो रुपये उठ जाते है, वन वृक्षो मे बढावा नजर नही आता। आश्चर्य नही कि कुछ समय बाद बम्बई-कलकत्ते मे लोगो को ऑक्सीजन सिलीण्डर के जरिए सास लेना पड़े।

हवा का महत्व तब पता चले, जबकि आपके सिर को कोई स्विमिंग पूल या तालाब मे पानी के अन्दर दबाकर रखे। एक मिनट मे ही आप एक सास हवा के लिए अपना सर्वस्व देने को तैयार हो जाएगे।

हमारे इस सार्वजनिक बलात्कार के कारण आकाश, अग्नि व मिट्टी के तत्व भी दोषी व दूषित हो गए हैं। आग जलाने को ईधन नहीं और साफ सुथरी मिट्टी का तो दर्शन ही दुर्लभ है। इन पचतत्वो की, जिनसे हमारी देह बनी है, यह दुर्दशा हो चुकी है तो व्यक्ति का व समाज का सस्कार सभ्य व सौम्य बनेगा कैसे ? उसी का परिणाम है कि जरा सी बात पर शहर का आम आदमी एक दूसरे से गाली-गलौज पर उतर जाता है, हाथा-पाई होने लगती है। मन की भड़ास व असन्तोष निकले कैसे ?

पुराने जमाने मे प्रत्येक तत्व मे आदर व श्रद्धा के लिए उन्हे देव भाव से देखा पूजा जाता था। अग्नि देव, वरुण, पवन, इन्द्र आदि की कल्पना इसी लिए थी कि हम प्रकृति प्रदत्त तत्वो का आदर करें ताकि ये हमारी रक्षा व सवर्धन कर सकें। अब न श्रद्धा है, न कानून, न ही व्यवस्था। कब तक यह अन्धाधुन्धी चलेगी।

38

हमारे चरित्र का दोगलापन

किसी भी समाज की सभ्यता व सस्कृति का मापदण्ड व्यक्तिगत व सामूहिक प्रतिक्रिया व व्यवहार पर निर्भर करता है। कानून व व्यवस्था के कटघरे व घेरे मे राज्यसत्ता अपने अलग-अलग नागरिको के साथ कैसा बर्ताव करती है, इसे देखने से पता चल जाता है कि हम लोग कितने पानी मे हैं? रोजमर्रा होने वाली या कभी-कभी घटने वाली घटनाओ को हम सरसरी नजर से ही देखें, तो स्पष्ट हो उठेगा कि भारतीय जनता दो वर्गों मे बटी है, मुट्ठी भर वी० आई० पी० एव बाकी बेकार!

आप रेलवे स्टेशन जाए अथवा एयरपोर्ट, वी० आई० पी० की शान व तडक भडक ही निराली है। यदि मेल ट्रेन मे किसी एम० एल० ए० अथवा एम० पी० साहब को समय पर नाश्ता नही मिले, तो बाकी समूची रेल व्यवस्था भले ही पटरी से उतर जाए, हजारो महयात्रियों को कुछ भी असुविधा हो जाए, उनका मनचाहा पेट भरे बगैर रेल आगे कैसे बढ सकती है? यही नही, एयर कडीशण्ड या फर्स्ट क्लास कुपे मे आप व आपकी पत्नी अपने पूर्व निर्धारित रिजर्वेशन के बतौर सोए हुए हैं तो आधी रात को टी० टी०, कडक्टर आदि आकर जोर से दरवाजा भडभडा आपकी जान मुहाल कर देंगे क्योकि किसी राजनीतिक नेता को उस कुपे की जरूरत है! आप सोए हैं तो क्या हुआ?

एयरपोर्टों पर इतनी सुरक्षा होने के बावजूद रोज यह तमाशा देखा जाता है। हम लोग फ्लाइट से ठीक सवा-डेढ घटे पहले पहुच रस्म पूरी कर इन्तजार के कक्ष मे अखबारो/पत्रिकाओ के पन्ने उलटते रहते हैं। जब भी यात्रा का एलान होता है, दो-चार कांग्रेसी नेता, राज्यमन्त्री अथवा कोई अन्य विशेष व्यक्ति अपने-अपने मातहतो को साथ लेकर दरवाजे तक बेखटक आ जाते हैं। न उनकी बैग की तलाशी होती है, न तन-बदन की।

और तो और, अखबार वाले भी इसके जाल व प्रभाव म पूरे छाए हुए हैं। भोपाल के भीषण गैस काण्ड मे कितने हजार व्यक्ति मरे एव हमेशा के लिए

अपाहिज हो गए, इसका सिलसिला थोड़े ही दिन चला। उस अनुपात में बी० बी० करण्ड व विमा मिश्रा काण्ड को प्रेस में इतनी जगह दी गई है, मानो गैस काण्ड को भुला सा दिया गया।

लेखक को अपने ससदीय कार्यकाल में जब दिल्ली में नियमित रूप से रहना पड़ा, उन दिनों सुन्दरनगर, गोल्फ लिंक्स व चाणक्यपुरी जैसी रईस व सुसस्कृत बस्तियों से लोग लिखित शिकायतें वहा बसे हुए विदेशी राजदूतालयों में काम करने वाले अधिकारियों के खिलाफ लाते। एक दूतावास का अधिकारी अपने खूख्वार कुत्तों को बिना बाधे रखता। कई लोगों को काटने व डराने के बावजूद पुलिस थाने वाले उनके खिलाफ डायरी नही लिख सकते थे। एक महाशय तो खुले आम पिस्तौल लेकर आस-पास वालो को धमकाया करते थे। सड़को पर निषिद्ध स्थानों पर उनके व भारतीय वी० आई० पी० गाड़ियों के ड्राइवर मूछों पर ताव देते बेखौफ गाड़िया पार्क करते रहते तो हैं ही आपको गाड़ी निकालनी हो तो उनकी मर्जी से ही। उन दिनों सरदार स्वर्णसिंह भारत के विदेश मन्त्री थे। जब मैं कई शिकायतें लेकर उनके पास पहुचा तो डिप्लोमेटिक की भाषा में सरदार साहब ने मुस्कराकर मुझे टाल दिया। जाहिर है कि इस क्षेत्र में व्यक्तिगत व्यवहार सहिता में अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अभी पूरी चर्चा नही हुई है, तभी तो हम जैसे विकासशील देशो में यह मनमानी चलती है। विदेशी यात्राओं के दौरान मैंने कभी इस प्रकार के व्यवहार को न देखा, न सुना।

अमीरो व उद्योगपतियो के बारे में भी सरकारी व्यवहार कभी-कभी दोगला लगता है। कोई भी अभियुक्त क्यो न हो, जब तक न्यायालय में अन्तिम फैसला न हो जाय, उसे सजा देने का या दोषी करार करने का कोई अधिकार किसी को भी नही है। श्रीमती गाधी के शासन में कुछ चुने हुए उद्योगपतियों को सभी प्रकार की लम्बी छूट थी, इस तथ्य पर शिकायत किसी और प्रसग में की जा सकती है। पर किर्लोस्कर व टाटा जैसे उद्योग-पतियो के साथ दुर्व्यवहार, अखबारबाजी, छीटे उछालना आदि शोभा नही देता जब कि देश में अनेको करल, तस्करी, नशीले ड्रग, डाकाजनी के जुर्म वाले अभियुक्त खुले आम जमानत पर घूमते फिरते नजर आते है।

दोषी कोई भी क्यो न हो, उसे जुर्म सिद्ध करने पर यथोचित सजा मिलनी चाहिए पर जो लोग केवल अपनी इज्जत व प्रतिष्ठा के ही बल पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापार करते है, उनका जुर्म सिद्ध होने के बिना बदनामी करनी नासमझी ही है। इस देश में राजनैतिक कौम ही केवल ऐसी है जिसे चरित्र व प्रतिष्ठा से कोई सरोकार नही। फिर भी ऐसा वातावरण बनाया गया है कि इन्कम टैक्स व अन्य करो की चोरी का इल्जाम एक भी

पर नहीं लग सका है ! क्या यह सम्भव है कि ये खिलाड़ी अपनी दूध की धोई कमाई पर ही जीते हैं ?

इसी तरह की प्रतिक्रिया सिक्खो के विरुद्ध हो रही है। मुट्ठी भर सरदार आतंक फैला रहे है, उसके लिए समूची कौम को क्यों सदेह की या घृणा की दृष्टि से देखा जाय ? किसी प्रतिष्ठित सिक्ख ने इन दिनो एक बड़ी सटीक बात कही है। परमवीर चक्र तो उसी सरदार फौजी अफसर को मिलना है जिसने स्वय वीरता व शौर्य से देश की रक्षा मे जान मुट्ठी म लेकर उदाहरण पेश किया। उसके बूते सारी कौम को तमगा नही मिलता। फिर कुछ सिरफिरे, बेकार, पथभ्रष्ट युवकों के बनाए वातावरण म बाकी सारा देश क्यो बह जाय ?

अपने समाज मे आम तौर पर नौकर के पाव मे ठोकर लग काच का गिलास टूट जाय तो "अन्धे हो क्या ? देखकर चला करो !" का आदेश हर मालकिन की जबान पर तैयार रहता है। वही हम अपने पाव से तोड दें तो फिर नौकर ही पर डाट "समझते नही गिलास रास्ते मे नही रखा जाता है।" बेचारे नौकर की समझदारी तो सुबह शाम कोसी जाती है। उसमे आप जितनी अक्ल होती तो आप जैसे के यहा नौकरी करता ?

39

मुंबई महानगरी : सन् 2001

ऋतम्भरा अपने स्कूटर मोबाइल को दुर्ग के निचले गर्भगृह मे ई० सी० 292-4989 नम्बर के नियुक्त स्थान पर पार्क कर अपने इलेक्ट्रोनिक कार्ड के जरिए लिफ्ट मे घुसी। जो नबर सरकारी अस्पताल मे जन्म के समय दिया जाता था, वही जीवन भर कुण्डली या जन्म नक्षत्र की तरह सारी क्रियाओ मे प्रयुक्त होता। कार्ड पर बच्चे के जन्म के समय के अगूठे की निशानी सदा के लिए मशीन मे अकित की जाती और मृत्यु पर्यन्त दाहक्रिया तक काम मे आती। आपको स्कूल मे दाखिला चाहिए अथवा डॉक्टर मे सलाह, बैंक मे एकाउन्ट खोलना हो अथवा पासपोर्ट लेना सभी कार्य इसी नम्बर के जरिए कार्ड दिखाने व प्रयोग करने से ही सम्भव होता। व्यक्ति के खून की व जीन्स की किस्म भी कोड के रूप मे कार्ड मे भरी होती, अत किसी भी दुर्घटना या आवश्यकता होन पर उसी के अनुकूल सारी व्यवस्था की जाती।

शहरा मे अब दुर्गनुमा विशाल रहन के मकान बनाए गए थे, जिसे एक छोर से दूसरे तक पहुचने मे लिफ्ट व एस्केलेटर के प्रयोग से ही सम्भव था। हर व्यक्ति को तीन मीटर चौड़ा व पाच मीटर लम्बा कमरा राज्य की ओर से दिया जाता, जब वह 15-वर्ष की अवस्था म अध्ययन समाप्त कर माता-पिता के कमरे से निकल अपने स्वय के स्थान पर जाता।

ऋतम्भरा अपनी पढाई समाप्त कर अब कम्प्यूटर के असीम व अनन्त जाल मे किसी विशिष्ट स्थान पर काम करती थी। सन् 2001 आ गया था पिछले 15-वर्षीय योजना काल मे भारत सरकार ने देश भर का खाका व नाक-नक्शा बदल दिया था। अब न घर से निकल पुरानी वेस्टर्न या सेन्ट्रल रेलो के जरिए चर्चगेट या बोरी बन्दर से लाखो व करोडो की सख्या मे काम पर जाने की जरूरत थी, न ही घर पर किसी नौकर या रसोई बनाने वाले की। जो वादा करीब 15-वर्ष पूर्व राजीव गाधी की सरकार ने किया था, अब वह यथासम्भव साक्षात् हो चुका था।

हुआ यह पिछले 10-15 वर्षो मे कि बडे शहरो की नाकाबन्दी कर पूरे 12-महीने हर नागरिक की जाच-परीक्षा की गई। उसका परिवार कब से महानगर मे है ? उसकी आय, शिक्षा, सदस्यो की सख्या क्या है ? उनके गाव (मुल्क) मे पुश्तैनी मकान-धधा-खेती बाडी कुछ है ? उसकी नौकरी/व्यवसाय उस शहर के लिए कितना उपयोगी है, आदि-आदि ?

पूरे "विचार विमर्श" के बाद सबसे पहले "अनावश्यक" वर्गों, समूहो व व्यक्तियो/परिवारो को शहर से निकाला गया। इस कदम के लिए सरकार ने शहरो व महानगरो के जन-जीवन के कल्याण वर्धन हेतु एक अध्यादेश निकाला था और मामला किसी कोर्ट-कचहरी मे नही जा सकता, यह भी उपकरण सरकार ने अपने हाथ मे ले लिया था। बहरहाल, महानगर मे बसने वाले सभी व्यक्तियो को उपरोक्त कार्ड दिए गए, हजारो एकड मे बसे सडे-गले झुग्गी-झोपडियो को बुलडोजर से समतल कर छ महीने मे सरकार ने लाखो नए एक-एक कमरे के फ्लैट के समस्त उपकरण अमेरिका व रूस से आयातित कर बनवा दिए। लोग अब इस बात को भूल गए थे क्योकि देहाती इलाको की खबर शहरो मे और शहरो की देहातो मे ले जाने की सख्त मनाई कर दी गई थी। दोनो क्षेत्रो का जन-जीवन नितान्त अलग था, मानो भारत देश की विशाल नगी-भूखी देह पर 8-10 महानगरो के अलकार पहना दिए गए हो, जिनसे न भूख मिटे न प्यास।

ऋतम्भरा को वैसे तो बाहर जाने अथवा घूमने-फिरने की और नागरिको की तरह जरूरत नही थी पर पिछले महीने भर से अजीब 'वाइरस" के कारण वह सुस्त रहती, भूख भी ठीक से न लगती और हल्का-हल्का बुखार रहता। बम्बई अस्पताल के डाक्टरी पैनल के सामने पिछले दो घटो मे उसके शरीर के एक-एक कण की जाच/तस्वीर आदि खीची जा चुकी थी अन्त मे डाक्टरो ने यही सलाह दी कि ऋता को खुली हवा मे कुछ देर अवश्य घूमना होगा व हल्का व्यायाम भी करना होगा, तभी स्वास्थ्य मे सुधार हो सकता है। और हा, भोजन मे यदि वह ताजे फल/सब्जी/दूध का प्रयोग बढा दे, तो बेहतर होगा।

यह सब हो कहा से ? अब तो खाने-पीने ही नही, नागरिक की आवश्यकता की हर वस्तु टी० वी०—कम्प्यूटर सर्विस के जरिए सुपर मार्केट की शाखाओ से आर्डर की जाती थी। पके पकाए भोज्य पदार्थ डब्बो मे तैयार मिलते थे, डब्बा खोलो, पानी मिलाओ, गर्म करो और बस खाना तैयार। उसी तरह कपडो का केटेलोग, सारे फैशन, डिजायन आप अपनी टी० वी० मे देख उस के जरिए आर्डर कर दें, दूसरे दिन पहुच जाएगे।

ऋता नहा धोकर काम मे लग गई। वह आजकल भारतीय रेलो के फैले हुए जाल की उत्पादकता व कार्यक्षमता बढाने, दुर्घटना बचाने व गाडियो की

रफ्तार तेज करने के कार्यक्रम भी डिजाइन बना रही थी। कही कोई समस्या खडी होती तो वह वीडियो टेलीफोन (जिसमे बात करने वाले के अलावा लिखित समस्या भी दीखती) के जरिए अपने कार्यालय के अध्यक्ष (जो स्वय भी घर से ही निर्देशन करते थे) से पूछ लेती। भारत सरकार ने इन्हें यह समस्या दी थी कि किसी भी यात्री को चटगांव (असम) से बेलगाव (कर्नाटक) जाना होता, तो वह कम्प्यूटर पर सारी जानकारी बटन दबाते ही हासिल कर लेता कि कौनसा मार्ग व नम्बर की रेल सेवा उसे शीघ्र सुविधापूर्वक व सस्ते मे पहुचा देगी। उसी तरह माल ढोने के लिए भी कार्यक्रम बनाया जा रहा था ताकि कही देर न हो और न ही जमघट।

सुपर मार्केट मे आज टी० वी० द्वारा ताजे फलो मे केवल केले व सब्जियो मे भिण्डी थी। ये दोनो ही ऋता को पसन्द न थे, सो फ्रिज से निकालकर अपने खाने की सामग्री गरम की एव उसके बाद आई ढेर सी डाक देखने लगी। आजकल डाक-टपाल मे किसी रिश्तेदार-मित्र का पत्र तो मिलता नही था हा दर्जनो की सख्या मे नए-नए उपकरणो, दवाओ व वीडियो फिल्मो के केटेलोग होते थे। ऋता ने सब के सब लिफाफो के साथ ही कागज भस्म करने वाली मशीन मे डाल दिए और लेट कर सुस्ताने लग गई।

ऋता का मन करता कि लम्बी छुट्टी ले मध्यप्रदेश के रायपुर जिले (जहा से उसका परिवार निकला था) म भ्रमण करे, गाव-कस्बे वालो से मिले, ताजी हवा, फल-दूध सब्जी का सेवन करे, क्योकि महानगर की इस यान्त्रिक यन्त्रणा मे नितान्त ऊब चुकी थी। पर ग्रामीण इलाको मे बिना सरकारी आज्ञा की पर्ची (वीजा) के जाया नही जा सकता और अर्जी का जवाब जब साल-छ महीने बाद आता, तो अकसर नकारात्मक ही। यही नही, आवेदन करन वाले के कम्प्यूटर मे उसके खिलाफ यह रपट अपने आप दर्ज हो जाती कि फला व्यक्ति अपने दायरे को छोडना चाहता है। करे भी तो क्या ?

मित्रता, बन्धुत्व, दोस्तो-हमजोलियो के सैर-सपाटे व हसी ठट्ठे तो बन्द कब के हो चुके थे, शादी-विवाह का प्रचलन भी नही के बराबर हो गया था। जन्म नक्षत्र या कुंडली कौन देखे, कम्प्यूटर—टी० वी० पर आपको मनचाहा साथी मिल जाता, जिसके कद, रूपरग, आदि की सारी सूची चित्र के साथ दर्ज होती। बटन दबाकर 1,500/– रुपये जमा करा दें, ठीक समय पर साथी आपके घर मे मौजूद। आप डास करें या गप्प, रिलेक्स करें या सेक्स—कोई पूछने वाला नही था। साथी सारी रात रह कर प्रात अपने स्थान पर वापस चला जाता और सब अपने-अपने काम मे फिर से...।

धीरे-धीरे ऋता का मन इस कृत्रिम जीवन से नितान्त ऊब गया। वह रात-दिन इसी फिराक मे रहने लगी कि किस प्रकार इस

हुआ यह पिछले 10-15 वर्षों मे कि बडे शहरो की नाकाबन्दी कर पूरे 12-महीने हर नागरिक की जाच-परीक्षा की गई। उसका परिवार कब से महानगर मे है ? उसकी आय, शिक्षा, सदस्यो की सख्या क्या है ? उनके गाव (मुल्क) मे पुश्तैनी मकान-धधा-खेती बाडी कुछ है ? उसकी नौकरी/व्यवसाय उस शहर के लिए कितना उपयोगी है, आदि-आदि ?

पूरे "विचार विमर्श" के बाद सबसे पहले "अनावश्यक" वर्गों, समूहों व व्यक्तियो/परिवारो को शहर से निकाला गया। इस कदम के लिए सरकार ने शहरो व महानगरो के जन-जीवन के कल्याण वर्धन हेतु एक अध्यादेश निकाला था और मामला किसी कोर्ट-कचहरी मे नही जा सकता, यह भी उपकरण सरकार ने अपने हाथ मे ले लिया था। बहरहाल, महानगर मे बसने वाले सभी व्यक्तियो को उपरोक्त कार्ड दिए गए, हजारो एकड मे बसे सडे-गले झुग्गी-झोपडियो को बुलडोजर से समतल कर छ महीने मे सरकार ने लाखो नए एक-एक कमरे के फ्लैट के समस्त उपकरण अमेरिका व रूस से आयातित कर बनवा दिए। लोग अब इस बात को भूल गए थे क्योकि देहाती इलाको की खबर शहरो मे और शहरो की देहातो में ले जाने की सख्त मनाई कर दी गई थी। दोनो क्षेत्रो का जन-जीवन नितान्त अलग था, मानो भारत देश की विशाल नगी-भूखी देह पर 8-10 महानगरो के अलकार पहना दिए गए हो, जिनसे न भूख मिटे न प्यास।

ऋतम्भरा को वैसे तो बाहर जाने अथवा घूमने-फिरने की और नागरिको की तरह जरूरत नही थी पर पिछले महीने भर से अजीब 'वाइरस" के कारण वह सुस्त रहती, भूख भी ठीक से न लगती और हल्का-हल्का बुखार रहता। बम्बई अस्पताल के डाक्टरी पैनल के सामने पिछले दो घटो मे उसके शरीर के एक-एक कण की जाच/तस्वीर आदि खीची जा चुकी थी, अन्त मे डाक्टरो ने यही सलाह दी कि ऋता को खुली हवा मे कुछ देर अवश्य घूमना होगा व हल्का व्यायाम भी करना होगा, तभी स्वास्थ्य मे सुधार हो सकता है। और हा, भोजन मे यदि वह ताजे फल/सब्जी/दूध का प्रयोग बढा दे, तो बेहतर होगा।

यह सब हो कहा से ? अब तो खाने-पीने ही नही, नागरिक की आवश्यकता की हर वस्तु टी० वी०—कम्प्यूटर सर्विस के जरिए सुपर मार्केट की शाखाओ से आर्डर की जाती थी। पके पकाए भोज्य पदार्थ डब्बो मे तैयार मिलते थे, डब्बा खोलो, पानी मिलाओ गर्म करो और बस खाना तैयार। उसी तरह कपडो का केटेलोग, सारे फैशन, डिजायन आप अपनी टी० वी० मे देख उस के जरिए आर्डर कर दें, दूसरे दिन पहुच जाएगे।

ऋता नहा धोकर काम मे लग गई। वह आजकल भारतीय रेलो के फैले हुए जाल की उत्पादकता व कार्यक्षमता बढाने, दुर्घटना बचाने व गाडियो की

रफ्तार तेज करने के कार्यक्रम की डिजाइन बना रही थी। कहीं कोई समस्या खड़ी होती तो वह वीडियो टेलीफोन (जिसमे बात करने वालो के अलावा लिखित समस्या भी दीखती) के जरिए अपने कार्यालय के अध्यक्ष (जो स्वय भी घर से ही निर्देशन करते थे) से पूछ लेती। भारत सरकार ने इन्हे यह समस्या दी थी कि किसी भी यात्री को चटगाव (असम) से बेलगाव (कर्नाटक) जाना होता, तो वह कम्प्यूटर पर सारी जानकारी बटन दबाते ही हासिल कर लेता कि कौनसा मार्ग व नम्बर की रेल सेवा उसे शीघ्र सुविधापूर्वक व सस्ते मे पहुचा देगी। उसी तरह माल ढोने के लिए भी कार्यक्रम बनाया जा रहा था ताकि कही देर न हो और न हो जमघट।

सुपर मार्केट मे आज टी० वी० द्वारा ताजे फलो मे केवल केले व सब्जियो मे भिण्डी थी। ये दोनो ही ऋता को पसन्द न थे, सो फ्रिज से निकालकर अपने खाने की सामग्री गरम की एव उसके बाद आई ढेर सी डाक देखने लगी। आजकल डाक-टपाल मे किसी रिश्तेदार-मित्र का पत्र तो मिलता नही था, हा दर्जनो की सख्या मे नए-नए उपकरणो, दवाओ व वीडियो फिल्मो के केटेलोग होते थे। ऋता ने सब के सब लिफाफो के साथ ही कागज भस्म करने वाली मशीन मे डाल दिए और लेट कर सुस्ताने लग गई।

ऋता का मन करता कि लम्बी छुट्टी ले मध्यप्रदेश के रायपुर जिले (जहा से उसका परिवार निकला था) मे भ्रमण करे, गाव-कस्बे वालो से मिले, ताजी हवा, फल-दूध सब्जी का सेवन करे, क्योकि महानगर की इस यान्त्रिक यन्त्रणा से नितान्त ऊब चुकी थी। पर ग्रामीण इलाको मे बिना सरकारी आज्ञा की पर्ची (वीजा) के जाया नही जा सकता और अर्जी का जवाब जब साल-छः महीने बाद आता, तो अकसर नकारात्मक ही। यही नही, आवेदन करने वाले के कम्प्यूटर मे उसके खिलाफ यह रपट अपने आप दर्ज हो जाती कि फला व्यक्ति अपने दायरे को छोड़ना चाहता है। करे भी तो क्या ?

मित्रता, बन्धुत्व, दोस्तो-हमजोलियो के सैर-सपाटे व हसी ठट्ठे तो बन्द कब के हो चुके थे, शादी-विवाह का प्रचलन भी नही के बराबर हो गया था। जन्म नक्षत्र या कुंडली कौन देखे, कम्प्यूटर—टी० वी० पर आपको मनचाहा साथी मिल जाता, जिसके कद, रूपरग, आदि की सारी सूची चित्र के साथ दर्ज होती। बटन दबाकर 1,500/– रुपये जमा करा दें, ठीक समय पर साथी आपके घर मे मौजूद। आप डास करें या गप्प, रिलेक्स करें या सेक्स—कोई पूछने वाला नही था। साथी सारी रात रह कर प्रात. अपने स्थान पर वापस चला जाता और सब अपने-अपने काम मे फिर से...।

धीरे-धीरे ऋता का मन इस कृत्रिम जीवन से नितान्त ऊब गया। वह रात-दिन इसी फिराक में रहने लगी कि किस प्रकार इस चक्रव्यूह से निकल

भागे। निकलने का मतलब था, हमेशा के लिए "अन्तर्ध्यान" हो जाना, उसके बाद वह कभी महानगरो मे पाव भी नही रख सकेगी। यही नही, भारतीय ग्रामीण समाज मे उसे इस तरह घुल-मिल जाना होगा कि पुलिस को कही उसका सुराग भी न लगे, नही तो कम से कम 5-वर्षों की एकान्त कैद तो मुह बाए खडी ही थी। निकलते ही उसे न केवल अपना नाम, वेश, बोली, रहन-सहन बदलना होगा, पर महानगर की चारदीवारी से वह रुपए पैसे भी अधिक मात्रा मे नही ले जा सकेगी क्योकि बैंकें महानगरो मे तो एक एकाउण्ट से दूसरे मे तत्काल राशि स्थानान्तरित कर सकती, पर न ग्रामीण इलाको से रुपया वहा भेजा जा सकता न शहरो से बाहर। उसका कोड ही अलग था, जो केवल रिजर्व बैंक के जरिए हो सकता।

अन्ततोगत्वा उसने यही फैसला किया कि उसे दीर्घकालीन सुख-शान्ति के लिए शहरो को छोड गाव जाना ही होगा। उसमे सबसे बडी बाधा थी इलैक्ट्रोनिक कोड की जिसके बगैर चहारदीवारी के दरवाजे के बाहर नही जाया जा सकता। वह रात दिन अपने कम्प्यूटर के जरिए उस कोड की तलाश मे लग गई। आजकल शिक्षा मे कोड बनाने, उसका पता लगाने एव बदलने का विशेष स्थान था। हर बार वह कोड के अन्तिम सूत्र तक पहुचती कि उसे चुनौती मिलती "अपना आज्ञा पत्रक बताओ!" एक अमुक सीमा के बाद कम्प्यूटर से उत्तर केवल अधिकृत कार्ड वालो को ही मिलता।

हार कर ऋता ने अपना अन्तिम ब्रह्मास्त्र प्रयोग करने की ठानी। एक दिन साथी उसने ऐसा चुना जो कि कम्प्यूटर प्रोग्राम के डिजाइन मे सबसे अधिक कुशल व अनुभवी व्यक्ति था। रात को दोनो शराब, नाच, धतूरे आदि के नशे मे चूर हो गए तो किसी तरह ऋता ने उससे मास्टर कोड का पता लगाया।

आज ऋता 'रामेश्वरी" बनकर रायपुर के पास के गाव मे नितात ग्रामीण वेश भूषा म वहा के जन-जीवन मे एकाकार हो गई है। उसका पति सामान ढोन के ट्रको का काम करता है, वह स्वय अध्यापिका का काम करती है। दोनो पूरी तरह सुख-चैन से ज़िन्दगी बसर कर रहे है।

40

जितना पकड़ें, उतना छूटे

वेंकटरमन् महाराष्ट्र के सेवा-निवृत्त चीफ इंजिनियर के द्वितीय पुत्र हैं। बड़ा पुत्र अपनी बिजली व निर्माण की वस्तुओ की दुकान किंग्स सर्कल मे चलाता है। वेंकट शुरू से ही अध्ययन मे मेधावी रहा है, छोटा होने के कारण माता-पिता, भाभी भाई आदि का लाड-प्यार भरपूर मिला है। परीक्षा के दिनो मे रात को डेढ बजे कॉफी भाभी बनाकर दे जाती, तो प्रात साढे चार बजे मा दूध। आजकल के युवावर्ग की तरह वेंकट भी परीक्षा के 20-25 दिन पहले रात-दिन जमकर पढ़ना और अपनी कुशाग्रता के कारण अच्छे नम्बरो से पास हो जाता।

गर्मियो की छुट्टियों मे कभी मा-बाप गुरुवायूर ले जाते तो कभी कुनूर। भाई भाभी के साथ ऊटी जाता अथवा त्रिचूर। गरज यह कि वेंकट का छात्र-जीवन खूब सुखदाई था। अब वह साइन्स मे 85-प्रतिशत अक पाकर ग्रेजूएट हो चुका था। डेढ-दो महीनो के विचार-विमर्श के एव दोनो महिलाओ के आग्रह के विपरीत उसे अमेरिका कम्प्यूटर साइन्स के तीन वर्षीय कोस के लिए भेजा जाना तय हुआ। पिता ने अपनी ग्रेच्यूटी, प्राविडण्ट फण्ड व बीमा की पॉलिसी के जरिए पचास हजार रुपये के व्यय से उसे चिकागो यूनिवर्सिटी मे भर्ती करा-कर अश्रु-नम आखो व भीगे मन से बिदा किया।

वेंकट ने बम्बई मे भले सारा जीवन बिताया हो पर 22-वर्षों मे प्रथम बार बिना परिवार की देख-रेख के अमेरिका की चकाचौंध व सवेदनहीन जीवन को सह नही सका। वैसे कैम्पस मे 10-12 अन्य भारतीय विद्यार्थी अवश्य थे, पर न तो क्लास मे कोई जाना-पहचाना चेहरा था और न ही होस्टल मे। उसके कमरे का सहवासी कीन्या का एक लम्बा-चौडा अफ्रीकी हब्शी था। न मद्रासी कॉफी, न भाभी के हाथ का रसम्, न इडली न मेदुवडा!

कॉलेज के आठवें दिन शनिवार को बम्बई से सभी से टेलीफोन पर बातचीत करने से उसका मन फिर हरा हुआ। फिर भी अपने को अमेरिका के यान्त्रिक

वातावरण मे ढाल नही पा रहा था। न आराम की नीद आती और न ही पढने मे विशेष मन लगता। कभी-कभी तो बदहवास व रुआसा होकर अनमने भाव से इधर-उधर भटकता रहता। धीरे-धीरे साप्ताहिक टेलीफोनो पर वह अपनी मनोदशा घरवालो को बताने लगा। माता-पिता के समझाने और स्वय लाख कोशिश करने पर भी उसका मन टिका नही। तीन महीने बाद हारकर घर-वालो ने वापस बुलाने का फैसला कर दिया। वेंकट अब पिता के जीवन भर की बचत व आगे पढने के मौके को लात मारकर बम्बई आ चुका है। भाई की दुकान मे प्रात कालीन कॉलेज के बाद मदद करता है। घर की स्थिति अब नाजुक हो गई है, क्योकि अब बैंक मे कुछ बचा नही था। किसी दिन बीमारी या खर्च का प्रसग आने की कल्पना से ही मा-बाप सहम उठते थे, पर बेटा जो घर आ गया—उसी को देखकर सन्तोष करते। इसी उधेड-बुन मे पिता को दिल का दौरा हो जाने से जे० जे० अस्पताल मे दाखिल कराया गया। डेढ महीने के उपचार व 15,000/– के कर्ज के बाद आज परिवार की डावाडोल गाडी चर्र-मर्र चल रही है।

विनय गुप्ता गोरखपुर मे एक प्रिंटिग प्रेस मे 30-वर्ष की उम्र मे जनरल मैनेजर का पद ले चुका था। परिवार मे नेपाल को माल भेजने का पुश्तैनी काम था, सो कमीशन एजेन्सी के जरिए वे लोग एक प्रतिष्ठित मध्यम वर्गीय परिवार के रूप मे जाने जाते थे। विनय का विवाह फरीदाबाद मे कामिनी से हुआ था। विनय अपनी पत्नी मे इतना आसक्त था कि विवाह के चार वर्षों तक एक दिन के लिए भी कामिनी को अपने पीहर माता-पिता, भाइयो आदि से मिलने या उनके साथ रहने नही भेजा गया। आफिस से रोज 2-3 फोन कर कामिनी से गप्पें व छेडछाड करता रहता। इस वर्ष कामिनी के छोटे भाई की मगनी का दस्तूर था, उसका भी मन पीहर जाने के लिए आतुर था, पर विनय के व्यवहार के सामने वह अधीरता नही जताती। खैर, बडी मुश्किल से 15-दिनो के लिए उसे फरीदाबाद भेजा गया। उसके जाते ही विनय को दुनिया मानो काटने दौडती। न ठीक से खाना खा पाता, न ही नीद ले पाता। पाच दिन तो किसी तरह बेचैनी मे काटे, बाद मे पिता से आज्ञा ले दिल्ली गया, दिल्ली से टैक्सी लेकर फरीदाबाद। फरीदाबाद मे टैक्सी खडी रही, ससुराल वालो की लाख मिन्नत के बावजूद न तो विनय वहा रुका, न ही कामिनी को रहने दिया। घन्टे भर मे दोनो दिल्ली लौट पडे और पहली गाडी से गोरखपुर।

इतने अधिक मोह एव दूसरो की भावनाओ की नितान्त अवहेलना सर्वदा वर्जित है। एक दिन कामिनी रसोई मे टेरीन की साडी पहने काम कर रही थी, चिनगारी पल्ले मे लग गई, शरीर 60-प्रतिशत जल गया, आज जैसे-तैसे ठीक तो हो गई है, पर अब वह कान्ति व सम्मोहन कहा ?

केप्टो मुखर्जी कलकत्ते मे अपनी विधवा माता, पत्नी व बच्चो के साथ, कोयले का व्यापार करता हुआ, बालीगज मे अपनी पुश्तैनी कोठी मे रहता है। पहले तो रानीगज मे चार खानें थी, जिनका कोयला भारत-भर मे मशहूर था। लोगो की भीड केप्टो के पिता के दफ्तर के बाहर एक वैगन कोयले के लिए लगी रहती थी, क्योकि हर वैगन मे कोयले की गुणवत्ता के कारण हजार-डेढ हजार रुपये मिल जाते थे। राष्ट्रीयकरण और मुआवजा न मिलने के कारण केप्टो के पिता तो आघात नही सह सके। उनकी मृत्यु के बाद माता केप्टो को अपने आचल से दूर नही होने देती। घर व दफ्तर व कभी-कभार मित्रो के साथ क्लब-सिनेमा जाता है, तो हर समय उसे मा को फोन कर बताना होता है कि वह कहा है और कब तक घर आएगा। बम्बई-दिल्ली जाता, तो भी होटल मे कमरे मे आकर सबसे पहला काम यही होता कि फोन कर मा को बता दे कि वह राजीन्खुशी पहुच गया है।

केप्टो माता पर इतना अधिक आश्रित हो गया है कि उनसे बिना पूछे व उनकी मर्जी के खिलाफ वह सास लेने की भी कल्पना नहीं कर सकता। केप्टो की पत्नी केतकी हमेशा अपने पति को इस विषय मे उलाहना देती रहती कि वह अब अपनी मा का दूध पीना छोड दें और अपने पावो पर खडा रहना सीखे।

न तो केप्टो अपनी मा के काल्पनिक धक्के को बर्दाश्त कर सकता था, न ही मा का मोह छूटता। यहा तक कि व्यापार मे कोई बडा सौदा भी वह उन्हें बिना पूछे नही करता।

यह प्रवृत्ति स्नेह की नही है, बल्कि मोह व आसक्ति की जजीरें हैं, जो एक दिन अपने को तुडवा कर रहेगी। प्रकृति का विधान है कि ऐसा अप्राकृतिक सम्बन्ध टिक नही पाता। या तो हमारे मन की चाहेती वस्तु गायब हो जाती है या चाहने वाला स्वय। कुछ अरसे के बाद माता 56-वर्ष की आयु में ही एकाएक हृदय के दौरे से चल बसी। केप्टो अपने को नितान्त बेसहारा पाता है, वह सर्वथा चूर-चूर हो गया है, न उसे दिशाबोध है, न ही सुख-शांति।

उपरोक्त तीनो सत्य-कथाओ पर आधारित हैं, केवल नाम व स्थान काल्पनिक बैठाए गए हैं। किसी भी व्यक्ति मे चाहे वह पति हो या पत्नी, बच्चा हो या मां, यदि कोई इस प्रकार की अन्धी आसक्ति रखेगा तो देर-सवेर उसे चीज/व्यक्ति से हाथ धोना ही पडेगा। यह न स्नेह है न प्रेम, बल्कि छोटे पोखर मे पडे पानी की तरह सडने वाली प्रवृत्ति है।

दुर्भाग्य यह है कि इस बारे मे शिक्षा न पुस्तको मे मिलती है, न ही माता-पिता से। मानव-जीवन मे तथाकथित "प्रेम" अपने स्वार्थ के इर्द-गिर्द होता है। जब तक पति/पत्नी एक दूसरे की भावनाओ व इच्छाओं के पूरक हैं,

तब तक प्रेम है, वर्ना पहले तनाव व बाद मे तलाक। पिता को पुत्र में अपना प्रतिबिम्ब मान, सफलता व ठीक रास्ते चलने का दीखता है, तो पुत्र प्रिय है। यदि वही स्वतन्त्र रूप मे अपनी विचारधारा पर चलने को उतारू हो जाय, तो नालायक। यही किस्सा सास-बहू व अन्य सभी रिश्तो का है।

इसके विपरीत मनुष्य को सदा दूसरो की भावना व आवश्यकता को सामने रखना चाहिए। एक मेरे परिचित 65 वर्ष के वृद्ध सज्जन मद्रास मे अपने भरे-पूरे परिवार मे रहते हैं। जिस किसी को भी गाडी की जरूरत पड जाय, वे स्वय बस-साइकल से चुपचाप निकल जाएगे। और तो और यदि बाथरूम के बाहर जरा-सी आहट हो जाय कि खाली है या नही, उसी अवस्था मे लुगी लपेट निकल जाएगे। फिर चाहे पेट साफ हुआ अथवा नही।

लखनऊ मे "पहले आप" केवल मुह दिखाने भर को न था उस युग मे वाकई लोग दूसरो की जरूरत पहले देखते थे। और अब ?

जंजीर खींचें, गाड़ी रोकें

लेखक नन्द कुमार सोमानी, प्रकाशक एस० चांद एण्ड कम्पनी (प्रा०) लि०, राम नगर, नई दिल्ली-110055, मूल्य 36 रुपये

मानव व अन्य प्राणी समूहों के आहार, निद्रा, भय आदि समान रूप से है। पशु-पक्षी पहले दिन से ही अपने जीवन योग्य संस्कारों का सम्बल धारण कर लेते हैं। वे केवल शारीरिक उत्कर्ष कर सकते है, आत्मिक नहीं, जबकि मानव दैवीय तथा आत्मिक उत्कर्ष प्राप्त कर सकता है किन्तु हम मानव देह को लेकर यह समझने लगते हैं कि जीवन की कला विज्ञान और क्या सीखना है, सीखना तो सासारिक कलाबाजियों को है। मानव अहभाव से ग्रमित है। इसीलिए हमे अपना असली स्वरूप दीखता नहीं। हम कभी जीवन की गाडी को जजीर खीच कर रोकते नहीं, मनन व चिन्तन नहीं करते। दुख-सुख क्या है ? इसी अवधारणा के इर्द-गिर्द घूमते कुछ कथानकों को लेखक ने इस पुस्तक मे सकलित किया है।

—'पजाब केसरी', जालन्धर

जीवन के शब्द चित्र

जजीर खींचें गाड़ी रोकें—हमारे समाज की गैर-जिम्मेदार हरकत की तरफ अकारण ही तेज गति से जा रही ट्रेन को रोक कर अपना मन्तव्य पूरा करने की मनोवृत्ति की परिचायिका है।

नन्दकुमार सोमानी ने अभिजात्य उच्चवर्ग मे जीवन जीकर, व्यापार उद्योग के व्यस्त विचित्र वातावरण मे रहकर, ससद सदस्य के रूप मे राजनीति म लिप्त रहकर भी जनसामान्य से एक अतरग सहजता बनाए रखी है उसी का प्रतिबिम्ब मानव जीवन सम्बन्धी कला और व्यावहारिक विज्ञान के इर्द-गिर्द गुथे गये छोटे-छोटे कथानको से सम्पृक्त विवेचनात्मक, आत्मकथ्य परक विश्लेषणात्मक निबन्ध हैं।

पढते पढते आपको लगने लगेगा कि यह सब तो हमारे आस-पास घटित होती रहने वाली रोजमर्रा की घटनाओ की टिप्पणिया ही हैं। लगेगा कि नन्दकुमार सोमानी हमारे सामने ही बैठकर सहज भाव से बातचीत करके समझा रहे हैं। नीति निर्देश हो या सुझाव, सूक्ति हो या सकेत सब बातें सीधी मन में नीचे उतरती लगती हैं, फौरन हजम होने मे सक्षम हैं और उपदेश नहीं करती कुछ करने की राहें बताती हैं। ग्रन्थ की प्रस्तावना 'तुभ्यमेव समर्पये' म वे ठीक ही कहते हैं—"हम कभी जीवन की गाडी को जजीर खीच रोकते नही, मनन व चिन्तन के लिए कि मैं कहा जा रहा हू ? कैसा मेरा जीवन है ? यह दुख सुख क्या है ? क्या मैं दुनिया को वास्तव मे बदल सकता हू ? दुनिया को त्रेता मे श्रीराम व द्वापर मे श्रीकृष्ण नही बदल पाए हम लोग किस खेत की मूली हैं ? हां, केवल अपने आपको बदला जा सकता है ताकि दुनिया को शेक्सपीयर के नाटक के मंच की तरह देखें उस पर होते कथानक का आनन्द ले सकें।"

सकलन के 37 निबन्ध आपका जीवन के विविध पहलुओ से परिचित कराएगे। कई समस्याओ के समाधान भी आपको बताए जाएगे चुपचाप।

'मारवाडी समाज के नये दौर' मे मारवाडी समाज मे दिखावे के अन्तगत बढते प्रभाव पर रोष व्यक्त किया, वे व्यथापूर्वक कहते हैं—"यह तामस चलेगा। एकाध पीढी और—पर इस दरम्यान समाज का क्या होगा, इसकी कल्पना से ही जी घबराता है।"—झकझोर देने वाला है। 'गाड़ी छूटने के बाद' पढकर आपको यह अनुभूति होगी कि ऐसी स्थितिया तो हमारे परिवार मे रोज-रोज आती रहती हैं।

इन निबन्धो के मनन से जीवन की कई उलझनो को सुलझाने मे सहायता मिल सकती है। छपाई, कागज, गेटअप सभी दृष्टि से पुस्तक ठीक है, बस मूल्य कुछ अधिक है। इस कृति का सस्ता सस्करण इसे लोकप्रिय कर सकता है। लेखक इतनी प्रेरक कृति सृजन के लिए साधुवाद के पात्र है। —'राजस्थान-पत्रिका'

जंजीर खींचें गाडी रोकें
रोजमर्रा की जिन्दगी के
कुछ नमूने

सुप्रसिद्ध उद्योगपति एव चौथी लोकसभा मे सासद रहे हुए श्री नन्दकुमार सोमानी ने अपने व्यस्त व्यावसायिक जीवन मे से कुछ क्षण निकालकर साहित्य साधना की है। वे विगत अनेक वर्षों से देश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओ मे लेख लिखते रहे हैं। बम्बई के बजाज इस्टीट्यूट आफ मैनेजमेट मे कई वर्षों तक प्राध्यापक रहे। सोमानीजी ने अपने इर्द-गिर्द, रोजमर्रा की जिन्दगी को लेकर बहुत लिखा है। सोमानीजी का कथन है कि शीशे मे अपना असली स्वरूप हम लोगो को नही दिखता। पशु-पक्षी भी अपने जन्म के प्रथम दिन से अपने जीवन योग्य सस्कारो व सबल को लिए ही आगे बढते हैं, वह केवल शारीरिक उत्कर्ष कर सकते हैं। समस्त प्राणियो मे केवल मानव को ही 'विवेक' बुद्धि प्राप्त है परन्तु हममे से कितने लोग ससार के सुख साधन एव क्षणिक भोगो से ऊपर उठ पाते है?

कुल 37 कथानको के प्रस्तुत सग्रह मे सोमानीजी का आग्रह है कि हम अपने जीवन की गाडी की जजीर को खीचें, मनन और चिन्तन के लिए कि हम कहा जा रहे हैं? प्रत्येक व्यक्ति थोडा रुककर सोचे कि कैसा है मेरा जीवन? यह दुख-सुख क्या है? क्या हम दुनिया को वास्तव मे बदल सकते हैं?

ससद सदस्य रहे हुए लेखक की इच्छा है कि लोगों के जीवन मे मायूसी, अन्धकार व बेबसी का जो आलम है, वह हटे। 'जजीर खीचे, गाडी रोकें' नाम दिया है उन्होने अपने लेखो के इस सग्रह को। इसम उन्होंने समाज के प्राय सभी घटको की समस्याओ की चर्चा की है। इस पुस्तक मे उनका एक लेख 'क्या महिलायें अपनी परिस्थितियो के लिए स्वय जिम्मेदार नही हैं?' हर समझदार महिला के पढने योग्य है। —'नवभारत', नागपुर